इतिहास में भारतीय परम्पराएं

प्रदत्त

भारतीय विज्ञान के आधार पर सृष्टि रचना
काल की वैज्ञानिक गणना
मानव सृष्टि की उत्पत्ति

43
I
0

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
167895

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इतिहास में भारतीय परम्पराएँ

आर्ष साहित्य
Complete Vedic Books Store
Yog, Vedic, Ayurvedic, Relegious
All Yog & Organic Products
(M) 9541317278, 8869821468
Web : aarshsahitya.com

हिन्दी साहित्य सदन
नई दिल्ली - 110005

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

R
089.9143
GUR-I

© सुरक्षित

मूल्य 150.00
प्रकाशक हिन्दी साहित्य सदन
2 बी. डी. चेम्बर्स, 10/54 देश बन्धु गुप्ता रोड,
करोल बाग, नई दिल्ली -110005
Email: hindisahityasadan@gmail.com
फोन 23553624, 23551344, 09213527666
संस्करण 2013
मुद्रक संजीव आफसैट प्रिंटर्स, दिल्ली

Itihaas Mein Bhartiya Parampraen
By : Guru Dutt

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय-क्रम

प्राक्कथन ५–७

अध्याय एक ९–३२

वर्तमान युग के इतिहासज्ञों की धाँधली; भारत में इतिहास लेखन; इतिहास को विकृत करने का उद्देश्य; इतिहास की विकृति में राजनीतिक उद्देश्य; भौतिकवादियों द्वारा इतिहास की विकृति।

अध्याय दो ३३–६२

भारतवर्ष की ऐतिहासिक अन्वेषणों में भूल; वर्तमान सरकार भी अंग्रेजी सरकार के मार्ग पर; विकासवाद; विकासवाद की अप्रामाणिकता; विकासवाद के कुचक्र का खण्डन; भौतिकवाद—इतिहास की विकृति का दूसरा कारण।

अध्याय तीन ६३–८०

सृष्टि उत्पत्ति और भारतीय परम्पराएँ—जगत् रचना और वर्तमान विज्ञान; सृष्टि रचना (भारतीय विज्ञान के आधार पर); जगत् रचना से पूर्व; रचना आरम्भ।

अध्याय चार ८१–११०

काल की वैज्ञानिक गणना; गणना में प्रमाण; पृथिवी की आयु; पृथिवी पर सृष्टि रचना; प्रलय और मानव सृष्टि; देव और असुर।

अध्याय पाँच १११–१४१

मानव सृष्टि आरम्भ; मानव सृष्टि की उत्पत्ति; कश्यप और उसकी वंशावली; जल-प्लावन; जल-प्लावन के उपरान्त; मनु की वंशावली अथवा नामावली; मनु से वंशों का आरम्भ।

अध्याय छः १४२–१६१

वेद; त्रिवर्ग शास्त्र; विज्ञानोन्नति; वेदों में इतिहास; पुराणादि ग्रन्थों में इतिहास।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अध्याय सात १६२–२३७

आदि युग; हिरण्यकशिपु; महाराज पृथु; सतयुग के उपरान्त—अमृत मंथन; ययाति; गंगा; त्रेता युग का वृत्तान्त—विश्वामित्र-वशिष्ठ संघर्ष; राक्षसों की उत्पत्ति और पराजय; रावण की समर यात्रा; राम-रावण युद्ध; द्वापर युग—शकुन्तला तथा भरत; महाराज शान्तनु; वासुदेव कृष्ण; कौरव-पाण्डव युद्ध; कलियुग—महाराज परीक्षित तथा सर्प यज्ञ; महात्मा बुद्ध।

उपसंहार २३८–२४४

संकेत परिचय २४५

प्रमाणानाम् अनुक्रमणिका २४६–२५६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राक्कथन

स्तृणीत बर्हिरानुषग् घृतपृष्ठं मनीषिणः । यत्रामृतस्य चक्षणम् ।।

(ऋ० मण्डल १ सू० १३।५)

हे मनीषियो ! आप लोग अपने आसन एक-दूसरे के समीप बिछाओ । वहाँ घी के पात्र रखे जायें और वहाँ अमृत का दर्शन हो ।

वेद भगवान् सब विद्वान् मनुष्यों को यह सम्मति देते हैं कि वे परस्पर समीप बैठकर यज्ञ के निमित्त घृत के पात्र रखकर प्रयोग करें । ऐसा करने से उनको अमृत के दर्शन होंगे । घृत से अभिप्राय उस सामग्री तथा साधन से है जिनसे यज्ञ हो सके और यज्ञ का अभिप्राय है लोक-कल्याण-कार्य । इस प्रकार इस वेद मन्त्र का अर्थ यह बनता है कि विद्वान् पुरुष परस्पर विचार-विनिमय कर, सबके हित में यत्न करें और उसके लिये उनके पास साधन उपलब्ध किये जायें ।

इसी भावना से इस पुस्तक को लिखने का प्रयास किया गया है । जो कुछ भी इस पुस्तक में वर्णित है वह उपलब्ध सामग्री से उत्पन्न विचार और परिणाम को विज्ञ पाठकों के सम्मुख रखने का यत्न है ।

स्कूल में इतिहास पढ़ते समय हमें अपनी पाठ्य-पुस्तकों में यही पढ़ने को मिलता था कि भारतवर्ष का इतिहास नहीं मिलता । भारतवर्ष के पूर्वजों को इतिहास लिखना नहीं आता था । अतः पुराने शिलालेख, मुद्राएँ और विदेशी यात्रियों के लेखों से ही यहाँ के इतिहास का अनुमान लगाना पड़ता है । उस समय भी इस प्रकार के कथन हमें कानों में खटकते थे ।

आज तो उस शैली पर इतिहास लिखने वालों का एक बहुत बड़ा परिवार हो गया है और अधिकांश इतिहास की खोज करने वाले, इस देश की भाषा और यहाँ के प्राचीन शास्त्रों से सर्वथा अनभिज्ञ होने पर भी, यहाँ का इतिहास लिखने लग जाते हैं ।

सर्वप्रथम महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती ने भारत की जनता का ध्यान इस ओर आकर्षित किया कि युरोपियन विद्वान् भारतीय शास्त्र के मर्म से अनभिज्ञ होने के कारण, हमारे विषय में अनर्गल बातें लिख रहे हैं । हमारा इतिहास, धर्म, हमारी मान्यताओं एवं परम्पराओं के विषय में वे भ्रान्ति फैला रहे हैं । स्वामीजी के संकेत मात्र से कई विद्वानों ने इतिहास पर भारतीय ढंग से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकाश डालने का यत्न आरम्भ किया। उनमें से एक श्री पं० भगवद्दत्त, दयानन्द महाविद्यालय के भूतपूर्व अनुसन्धानाध्यक्ष थे। इनके अनुसन्धान-कार्य से प्रस्तुत पुस्तक के संकलन में मुझे बहुत सहायता मिली है। दूसरे हैं पण्डित रघुनन्दन शर्मा साहित्यभूषण। इनकी पुस्तक 'वैदिक सम्पत्ति' से भी मुझे प्रेरणा और सहायता मिली है। कई अन्य लेखक भी हैं जो इस ओर ध्यान कर रहे हैं। वे भी भारतीय इतिहास का संकलन भारतीय आधारों पर कर रहे हैं।

मेरा यह प्रयास न तो एक इतिहास की पुस्तक है, न ही यह इतिहास में खोज का परिणाम है। यह अन्य खोज करने वालों के प्रयासों से मेरी समझ में आये परिणामों का संकलन मात्र है। उनमें से दो विद्वानों के नाम मैंने ऊपर दिये हैं। उनके अतिरिक्त रामायण और महाभारत ग्रन्थों से भी भरपूर सहायता ली गई है। महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती के ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका तथा सत्यार्थ प्रकाश से भी इसके प्रणयन में सहायता मिली है।

उक्त ग्रन्थों से मैंने अपने निकाले हुए परिणाम इस पुस्तक में लिखे हैं। ग्रन्थ के आकार एवं मूल्य का ध्यान रखकर बहुत-कुछ संक्षेप में ही लिखना पड़ा है। इस पर भी इतिहास के विषय में भारतीय परम्पराओं का एक चित्र खींचने का यत्न किया है। यह चित्र कितना स्पष्ट है, वह इसको देखने वालों के ही चिन्तन का विषय है।

इतिहास में भारतीय परम्पराएँ इस प्रकार कही जा सकती हैं—

(१) इतिहास का आरम्भ जगत् रचना के आरम्भ से मानना चाहिये।

(२) जगत् रचना को आज १,९७,१९,६१,६५४ (एक अरब सत्तानवे करोड़ उन्नीस लाख, इकसठ हजार छह सौ चौव्वन) सौर वर्ष हो चुके हैं।

(३) प्राणि रचना को ११,६६,४०,००० (ग्यारह करोड़, छियासठ लाख, चालीस हज़ार) सौर वर्ष हुए हैं।

(४) मानवरचना को लगभग ३९,००,००० वर्ष हुए हैं।

(५) वेदों में मानव-इतिहास नहीं है।

(६) विकासवाद मान्य नहीं है।

(७) पुराणादि ग्रन्थ मूलतः इतिहास के ग्रन्थ हैं। उनकी शैली और उनका प्रयोजन भिन्न है।

(८) भारत के इतिहास में वाल्मीकि-रामायण और महाभारत अमूल्य सहायक ग्रन्थ हैं।

(९) इतिहास लिखने का प्रयोजन है पूर्व घटनाओं का स्मरण करा मनुष्य को मानसिक विकारों से बचाना।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१०) मन के विकारों में आदि दृष्टि से आज तक किसी प्रकार का अन्तर नहीं आया। अतः इतिहास अपने को दोहराता रहता है।

(११) बारह करोड़ वर्ष का पूर्ण इतिहास तिथिक्रम से लिखने में कोई प्रयोजन नहीं माना गया। केवल युग-प्रवर्तक घटनाओं का ही इतिहास लिखा और स्मरण किया जाता है।

(१२) इसी कारण ग्रन्थों में राज्य अथवा ऋषियों की वंशावलियाँ न देकर प्रख्यात मानवों की नामावलियाँ दी गई हैं।

(१३) इतिहास को केवल विद्वानों का विषय न रखकर जन-साधारण के उपयोग की वस्तु बनाने के लिये इसे पुराणों का रूप दिया गया है।

इन्हीं और इस प्रकार की परम्पराओं को स्पष्ट करने के लिये इस पुस्तक को लिखा गया है।

यह आशा की जाती है कि इससे लोक-कल्याण होगा। विद्वान् मनीषियों से आग्रह है कि वे पुस्तक को पढ़कर अपनी सम्मति, सुझाव अथवा इसमें आयी भूलों को लिखने की कृपा करें।

अन्त में उन विद्वानों और ऋषियों तथा महर्षियों का अत्यन्त आभारी हूँ, जिनके ग्रन्थों से मैंने अपनी इस पुस्तक में कुछ भी सहायता ली है। विशेष रूप से पण्डित भगवद्दत्तजी का मैं आभारी हूँ। उनके 'भारतवर्ष का बृहत् इतिहास' से मैंने बहुत-कुछ ग्रहण किया है।

—गुरुदत्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अध्याय एक

: १ :

वर्तमान युग के इतिहासज्ञों की धाँधली

आज के तथाकथित इतिहासज्ञों ने भारत का इतिहास लिखने में इतनी धांधली मचा रखी है कि सत्य-असत्य में निर्णय करना भी कठिन हो रहा है। यह धाँधली योरुप के नास्तिकवाद और भ्रामक विज्ञानवाद के कारण है। इन दोनों का मूल यहूदी, ईसाई और इसलाम की अयुक्तिसंगत जीवन-मीमांसा ही प्रतीत होती है।

यूनान और मिश्र की प्राचीन जीवन-मीमांसा का वेद-विहित मीमांसा के साथ घना सम्बन्ध था। काल्डियन और बैबिलोनियन सभ्यताएँ भी, ऐसा प्रतीत होता है कि भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति से सम्बन्धित थीं। परन्तु यहूदियों ने इन सब—मध्य एशिया और पूर्वी योरुप की—जातियों को पद-दलित कर उनके ज्ञान-विज्ञान, उनकी जीवन-मीमांसा और उनकी संस्कृति को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया।

यहूदी जाति जिस समय अपनी विजयपताका फहरा रही थी, उस समय वह अनपढ़ एवं असभ्य थी। वह अपने पशु बल से, अपनी अपेक्षा अधिक सभ्य तथा ज्ञान-विज्ञान में अधिक उन्नत, जातियों को पराजित करते-करते उनकी सभ्यता एवं उनकी संस्कृति को भी नष्ट कर बैठी।

यूनान, मिश्र, काल्डियन, बैबिलोनियन सभ्यताओं का स्रोत भारतवर्ष का विज्ञान था, परन्तु अभिमान और प्रमाद के कारण इन जातियों ने अपनी सभ्यताओं तथा ज्ञान-विज्ञान के मूल स्रोतों के साथ सम्बन्ध-विच्छेद कर लिया और समय पाकर इनकी संस्कृति और इनका ज्ञान रूढ़ि-मात्र रह गया। इन लोगों ने सत्य ज्ञान के मूल स्रोत अर्थात् वेदादि शास्त्रों को भुला दिया। इसका परिणाम एक ओर तो यह हुआ कि इनकी उन्नति रुक गयी और दूसरी ओर, इनमें अपने ज्ञान-विज्ञान को दूसरों को प्रदान करने की क्षमता समाप्त हो गयी। आचार-विचार में रूढ़िवादिता आने से, दूसरों के साथ इनका व्यवहार अन्याययुक्त हो गया।

उपरिलिखित तथ्य को समझने के लिए भारतवर्ष का अपना उदाहरण लिया जा सकता है। वेद आदि शास्त्रों में तथा प्राचीन स्मृतियों में भी, यह कहीं नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिखा कि ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य सन्तान ही ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य होती है। वहाँ स्पष्ट लिखा है कि जब तक यज्ञोपवीत न मिले, तब तक बालक अथवा बालिका द्विज नहीं होते। और गुरु यज्ञोपवीत देता है बच्चे को उसकी द्विज बनने की योग्यता देखकर। वेदादि शास्त्रों में ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य के लक्षण भी लिखे हैं। स्मृतिकार ने यहाँ तक लिख दिया है कि ब्राह्मणोचित कार्यों के न करने से ब्राह्मण काठ के हरिण के समान हो जाता है अथवा कर्मानुसार ब्राह्मण की सन्तान शूद्र और शूद्र की सन्तान ब्राह्मण बन जाती है।

परन्तु कालान्तर में कुछ ब्राह्मणों ने वेदों तथा स्मृतियों का सार महाभारत आदि ग्रन्थों में लिखने का यत्न किया और यह प्रचार करने का यत्न किया कि महाभारत इत्यादि ग्रन्थों को पढ़ने के उपरान्त वेदों को पढ़ने की आवश्यकता नहीं है। अनेक धर्म ग्रन्थों के पढ़ने की अपेक्षा केवल एक गीता पढ़ लेना पर्याप्त है। परिणाम यह हुआ कि जनता और विद्वानों का वेदों से सम्बन्ध-विच्छेद हो गया।

महाभारत इत्यादि ग्रन्थों में सत्य के प्रतिपादन के लिए लौकिक गाथायें लिखी हैं। प्रत्येक गाथा में एक खल-पात्र रहता है। कभी खल-पात्र में भी कुछ अच्छे गुण होते हैं, परन्तु वह अपने अच्छे गुणों को भी खल-व्यवहार में सहायक बना लेता है और पाठकों के लिए यह कठिनाई उत्पन्न हो जाती है कि वे उस पात्र के सद्गुणों और दुर्गुणों में भेद-भाव कर सकें।

जब विद्वान ही धर्म और सच्चाई के मूल स्रोत (वेद) से विरक्त हुए तो उन गाथाओं को समझने वाले नहीं रहे। ब्राह्मण सन्तान लंठ, गंवार होने पर भी ब्राह्मण मानी जाने लगी, किन्तु इतर वर्ण की सन्तान गुण, कर्म में ब्राह्मण के समान होने पर भी ब्राह्मणत्व का आदर प्राप्त नहीं कर सकी। यह रूढ़िवाद था।

ऐसा ही रूढ़िवाद उन सभ्यताओं में उत्पन्न हो गया, जिनका सम्बन्ध अपने मूल स्रोत से टूट गया।

इस रूढ़िवाद के कारण इन राज्यों में अन्यायाचरण हुआ और इनके अन्यायाचरण से पीड़ित हो लोगों ने विद्रोह किया। विद्रोह में रूढ़िवादी पराजित हुए। परन्तु उनकी पराजय के साथ-साथ उनका ज्ञान-विज्ञान, जो कुछ भी था, नष्ट-भ्रष्ट हो गया और उसके स्थान पर विद्रोहियों की सभ्यता तथा उनका ज्ञान-विज्ञान, जो बहुत निम्न कोटि का था, प्रचलित हो गया।

यूनान, मिश्र इत्यादि देशों की सभ्यतायें उच्च कोटि की थीं, परन्तु उन्होंने भी रूढ़िवाद के कारण, अपने अधीनस्थों के साथ न्याय नहीं किया और अधीनस्थ अन्यायाचरण के दबाव पर, अपनी रक्षार्थ संगठित हो गये। जनसाधारण के ये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संगठन, राजनीतिक दासता से मुक्त हुए परन्तु सभ्य, सुसंस्कृत जातियों के ज्ञान-विज्ञान को भी निकृष्ट समझ बैठे और उनका विनाश करने वाले सिद्ध हुए।

इस प्रकार के उदाहरण भारत के इतिहास में भी मिलते हैं। मुसलमान ज्ञान तथा जीवन-मीमांसा में भारतवासियों से बहुत पिछड़े हुए थे। परन्तु उनकी राजनीतिक विजय हुई तो उन्होंने भारत के मूल निवासियों की सभ्यता-संस्कृति और उनके ज्ञान-विज्ञान को नष्ट करने का भरसक यत्न किया। किन्तु इसमें उनको सफलता न मिलने का मुख्य कारण यही था कि यहाँ के रहने वालों ने, रूढ़िवादी होते हुए भी, अपना सम्बन्ध, सत्य के आदि स्रोत अर्थात् वेद से तोड़ा नहीं था। यही कारण था कि हिन्दू (भारतवासी) इसलाम की आँधी के आगे धूल की भांति उड़ नहीं गये। इनकी सभ्यता और संस्कृति अभी भी जीवित है।

यूनान, मिश्र, काल्डियन और बैबिलोनियन जाति के लोग सर्वथा भूल चुके थे कि उनको ज्ञान कहाँ से प्राप्त हुआ था। इस कारण वे अपने विद्वानों के मत की व्याख्या की, मूल-सत्य ग्रन्थों से मिलान कर, परीक्षा (check-up) नहीं कर सके। भारत में तो, मुस्लिम काल में भी, प्रचलित रीति-रिवाज का मिलान मूल वेद मत से होता रहा था और प्रति बारह वर्ष में एक बार देश के चार विभिन्न स्थानों पर होने वाले कुम्भ मेलों में साधु-सन्त, महात्मा, विद्वान, वेदपाठी और वेद ज्ञान के जानने वाले एकत्रित होकर प्रचलित संस्कृति का सुधार करते रहते थे। परिणाम यह हुआ कि भारत में जहाँ आज भी वेद के प्रमाण से हिन्दू अपने कर्तव्य का निर्णय करते हैं, वहाँ उस काल में जब यूनान, मिश्र इत्यादि देश यहूदियों से पराजित हुए, रूढ़िवाद में फँसे हुए वे अपने आचार, व्यवहार और जीवन-मीमांसा को किसी सत्य की कसौटी पर कस नहीं सके। वे पराजित होते ही अपनी सभ्यता इत्यादि को भी खो बैठे।

यूनान, मिश्र, काल्डियन, बैबिलोनियन जातियों का वेदों को विस्मृत कर देने में एक कारण यह भी था कि इन्होंने सुगमता के विचार से अपनी भाषा को वेद की भाषा (संस्कृत) से सर्वथा पृथक् कर लिया था। वे संस्कृत भाषा को भूले तो वेद भी भूल गये।

यहूदियों ने, अपनी स्वतन्त्रता प्राप्त कर, जब विजय-समर आरम्भ किया, उस समय वे कैसे थे, इस विषय में 'हैनड्रिक विलेम फान लून' (Hendrik Willem Van Loon) अपनी The Story of the Bible (बाईबल की कहानी) नामक पुस्तक में लिखते हैं—

> In the beginning, however, the particular Semitic tribe, which later was to develop into the Jewish nation,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

worshipped several divinities, just as all their neighbours had done before them for countless ages.

The stories of the creation, however, which we find in the Old Testament, were written more than a thousand years after the death of Moses, when the idea of One God had been accepted by the Jews as an absolutely established fact, and when doubt of His Existence meant exile or death.

(आरम्भ में उस विशेष कुटुम्ब में, जो कालान्तर में यहूदी कौम बन गया, अनेक देवी-देवताओं की पूजा होती थी। वैसे ही, जैसे अन्य अनेक पड़ौसी कुटुम्बों में अगणित शताब्दियों से हो रही थी। सृष्टि-निर्माण की कहानी, जैसी हम पुरानी पुस्तक (Old Testament) में पढ़ते हैं, मूसा से एक सहस्र वर्ष बाद में लिखी गयी थी।)

इस समय यहूदियों में एकेश्वरवाद एक मान्य सिद्धान्त के रूप में स्वीकार हो चुका था। तब ईश्वर के होने में सन्देह करने का अभिप्राय था देश-निर्वासन अथवा मृत्यु-दण्ड।)

इसके विपरीत सुकरात की एक उक्ति की ओर ध्यान देना लाभप्रद होगा। प्लैटो, जो सुकरात का शिष्य था, लिखता है—

'सदाचार के अनुवर्तन (यम, नियम के पालन) से सम्यक् ज्ञान उत्पन्न होता है। यह ज्ञान साधारण मनुष्य में उत्पन्न होने वाले सामान्य ज्ञान से भिन्न होता है। सम्यक् ज्ञान उत्कृष्ट गुणयुक्त है। व्यापक विचारों से उसकी उत्पत्ति होती है।'[1]

पूर्णरूपेण यही बात भारतीय दर्शन शास्त्र भी लिखते हैं—

ऋतम्भरा तत्र प्रज्ञा। श्रुतानुमानप्रज्ञाभ्यामन्यविषया विशेषार्थत्वात्॥

योगदर्शन—१-४८, ४९

अर्थात् यम-नियम के पालन से जो बुद्धि उत्पन्न होती है, वह ऋतम्भरा कहलाती है। यह प्रज्ञा श्रोत्रादि इन्द्रियों द्वारा प्राप्त ज्ञान से भिन्न परिणामों पर पहुँचाने वाली है।

सुकरात ने अपनी मृत्यु से कुछ ही पहले अपने मित्रों से कहा था—

'Be of good cheer, and see that you are burying my body only.'

(प्रसन्न रहो और देखो, तुम तो मेरे शरीर को ही दफ़ना रहे हो।)

---

1. स्वामी करपात्री जी कृत मार्क्सवाद और रामराज्य से उद्धृत।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसकी तुलना भगवद्गीता के निम्न श्लोक से की जा सकती है—

वेदाविनाशिनं नित्यं य एनमजमव्ययम् ।
कथं स पुरुषः पार्थ कं घातयति हन्ति कम् ।। २-२१

और भी—सुकरात के एक शिष्य ने पूछा—क्या तत्ववेत्ता को खान-पान से प्राप्त होने वाले सुखों की, यदि उनको सुख की संज्ञा दी जाये, कामना करनी चाहिए ?

सुकरात का उत्तर था—नहीं, निश्चय नहीं।

शिष्य ने पुनः प्रश्न किया—क्या मैथुन से प्राप्त होने वाले सुख की ?

उत्तर था—नहीं, कामना नहीं करनी चाहिए।

अब इसकी तुलना करिये गीता के श्लोक २-७१ से। वहाँ लिखा है—

विहाय कामान्यः यः सर्वान्पुमांश्चरति निस्पृहः ।
निर्ममो निरहंकारः स शान्तिमधिगच्छति ।।[1]

इन उद्धरणों से दो बातें सिद्ध होती हैं। एक यह कि यूनानी दर्शनशास्त्र भारतीय शास्त्र की प्रतिध्वनि मात्र है और दूसरे यह कि यहूदियों की ज्ञान-मीमांसा, जब परिपुष्ट भी हुई, तब भी कोरी निष्ठा के ऊपर आधारित थी। 'इसे मानो, अन्यथा देश से निर्वासित कर दिए जाओगे या मृत्यु के घाट उतार दिये जाओगे।'

ईसाई मत तो यहूदी मत का परिष्कृत संस्करण मात्र ही है। जब यहूदी, यूनानियों को तथा अन्य प्राचीन सभ्यताओं को पराजित कर चुके तो इनका विरोध रोम वालों से हुआ। रोम एक सैनिक संगठन था। उनकी जीवन-मीमांसा, यदि कुछ थी, तो केवल खाना-पीना, और देश तथा शासक जाति के लिये लड़ना। रोम वालों ने यहूदियों को पराजित किया, परन्तु इनकी सभ्यता और विचारधारा को निःशेष नहीं किया। उनका इसके साथ सम्बन्ध भी नहीं था। जब तक यहूदी तथा रोमन साम्राज्य के अन्य देश रोम वालों को कर देते रहे, तब तक कोई पूजा करे अथवा न करे, उनके लिये चिन्ता का विषय नहीं था।

दास बने यहूदी पतन के गर्त में गिर गये। इस पर भी 'रस्सी जली, परन्तु बल नहीं गए' वाली कहावत सिद्ध करते हुए यहूदियों ने हजरत ईसा को फाँसी दिलवा दी।

ईसा की मृत्यु पर यहूदियों में एक पृथक् मत बन गया। परन्तु देखा जाये तो दोनों में सैद्धान्तिक मत-भेद नहीं है। दोनों में अन्ध-विश्वास की समानता है।

---

1. सीताराम गोयल : सत्यकाम सोक्रातेज, पृ० ६५।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाईबल की नई पुस्तक (New Testament) के निम्न वाक्य पढ़िये। लिखा है—

> Let not your heart be troubled. Ye believe in God, believe also in me.[1]

फिर लिखा है—

> Jesus saith unto him, I am the way and the truth and the life. No man cometh unto the Father but by me.[2]
>
> All that ever came before me are thieves and robbers.[3]

अर्थात्—

तुमको चिन्ता नहीं करनी चाहिये। तुम ईश्वर पर विश्वास रखो और मुझ पर भी विश्वास करो।

जीसज़ (ईसा) ने उसको कहा—मैं ही ठीक मार्ग हूँ। मैं ही सच्चाई हूँ और मैं ही जीवन हूँ। कोई व्यक्ति मेरे आश्रय बिना परमात्मा तक नहीं पहुँच सकता।

जो मुझसे पहले आये, चोर और डाकू थे।

जो मत-मतान्तर किसी सत्य मीमांसा पर टिके हुए नहीं, वे ही अपने अनुयायियों के अन्ध-विश्वास के आश्रय चलते हैं। अन्ध-विश्वासी युक्ति से घबराते हैं और अपनी बात बलपूर्वक मनवाने का यत्न करते हैं।

ईसाई धर्म की निष्ठा रोम के सैनिक संगठन से टकरा गयी। निष्ठा के सम्मुख सैनिक संगठन तो चूर-चूर हो गया, परन्तु एक निष्ठा दूसरी निष्ठा से टकरायी, जब इस्लाम का प्रादुर्भाव हुआ। यहाँ केवल निष्ठाओं का विरोध नहीं था, प्रत्युत दोनों निष्ठाओं की पीठ पर तलवार का सामना भी था और निष्ठाओं के साथ शारीरिक प्रलोभनों में भी मुकाबला था। इस कारण दोनों निष्ठाओं में अन्तिम निर्णय न हो पाया।

फ़ाउद यूनिवर्सिटी (मिश्र) के प्रोफ़ेसर मुहम्मद अब्दुल्ला लिखते हैं—

> But religious enthusiasm and the spirit of Jahad (religious war) did not attain in Christianity the same fervour as in the Muslim world.[4]

---

1. John XIV-1
2. John XIV-6
3. John X-8
4. Decisive Moments in the History of Islam, page 98.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'परन्तु जहाद (मज़हबी युद्ध) के लिए मज़हबी जोश जितना मुसलमानों में था, उतना ईसाइयों में नहीं था।'

और भी ?

> When Abu Hafiz landed in the Island (Crete) he ordered the ships to be burnt and when his troops protested, he addressed them in the following words, "What do you complain of ? I have brought you to a land flowing with milk and honey. Here is your true country, repose and forget the barren places of your native land."
>
> "And our wives and children ?" said they. His reply was, "Your beautiful captives will supply the place of your wives and then you will become fathers of a new generation."[1]

'जब अब्बू हाफिज क्रीट के द्वीप पर सेना लेकर उतरा तो उसने अपने जहाजों को आग लगा फूंक देने की आज्ञा दे दी। इस पर सेना ने आपत्ति की। उसने यह कहा, 'क्या आपत्ति है तुमको ? मैं तुमको एक ऐसे देश में ले आया हूँ, जहाँ दूध और मधु की नदियाँ बहती हैं। यह है तुम्हारा असली देश। सुख भोगो और भूल जाओ अपनी वीरान मरु भूमि को।'

सैनिकों ने पूछा, 'और हमारी बीवियाँ तथा बच्चे ?'

उसका उत्तर था, 'तुम्हारी सुन्दर दासियाँ, तुम्हारी पत्नियाँ होंगी और तुम एक नयी पीढ़ी के पिता होगे।'

इस सबका अर्थ यह है कि एक ओर अन्धनिष्ठा, दूसरी ओर लूट में औरतें, धन, भूमि आदि का प्रलोभन तथा तीसरी ओर तलवार का प्रयोग—ये सब मिलकर ईसाई संस्कृति का विरोध करने लगे थे। ईसाई भी सत्ताधारी होने के कारण धन और राज्य में सुविधाओं का प्रलोभन देते थे। जहाँ-जहां बिना तलवार के इन प्रलोभनों और निष्ठा का मुकाबला हुआ, इसलाम द्वारा दिये गये प्रलोभन और निष्ठा प्रबल सिद्ध हुए और जहां साथ में राज्य-बल लग गया, वहाँ मुसलमानी राज्य हार गये।

निष्कर्ष यह है कि यहूदी, ईसाई और मुसलमान कोरी निष्ठा को लेकर तलवार के आश्रय अपनी-अपनी दुंदुभि बजाते रहे हैं। इस अन्धेरगर्दी का विरोध करने के लिए युक्ति और विचार ने सिर उठाया। इसे पुनरुद्धार (Rennaissance) कहते हैं। यह ईसा की सोलहवीं शताब्दी में आरम्भ हुआ। इसलिए इस काल को

1. Ibid., p.79.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुनरुत्थान का काल कहा जाता है। इसका प्रथम संघर्ष ईसाई मत से हुआ। इससे पूर्व यहूदी मत एक राजनैतिक शक्ति के रूप में मिट चुका था। अतः उसके साथ संघर्ष का अवसर नहीं मिला।

यह पुनरुत्थान, जिसके कारण ईसाई मत की जड़ें हिल गयी प्रतीत होती थीं, मुसलमानों द्वारा कुस्तुनतुनियाँ की विजय के उपरान्त वहाँ के अध्ययन करते हुए विचारकों के, भागकर योरुप में फैल जाने से आरम्भ हुआ था। इन विचारकों का आधार निरीश्वरवाद रहा है। वास्तव में उनका यह निरीश्वरवाद, मुसलमान, ईसाई और यहूदियों के अयुक्ति-संगत ईश्वरवाद की तथा उनकी अन्धनिष्ठा की प्रतिक्रिया ही था।

यह पुनरुत्थान का काल अभी भी योरुप में चल रहा है। यह न तो ईसाई धर्म को और न ही इसलाम-धर्म को पूर्ण रूप से पराजित कर सका है। निरीश्वर-वाद मानव-प्रकृति के प्रतिकूल होने से स्वतः ईसाई धर्म का अथवा इसलाम का विरोध कर नहीं सका। इसको भी अपना अस्तित्व बनाये रखने के लिए तलवार का आश्रय लेना पड़ा है। अन्धविश्वास मानव के लिए अस्वाभाविक बात है। इसी प्रकार निरीश्वरवाद भी मनुष्य के स्वभाव के विपरीत है। विचार-विचार के संघर्ष में निरीश्वरवाद तो अन्ध निष्ठा के सम्मुख भी टिक नहीं सका। अब इसने, मनुष्य की प्रकृति को ही बदलने के लिए, राज्यों में बच्चों की शिक्षा को पूर्ण रूप में अपने हाथ में लेकर, बच्चों के संस्कार ही बदलने का प्रयास आरम्भ कर दिया है। ऐसे राज्य स्वयं को Secular state कहते हैं। पुनरुत्थान की पराकाष्ठा कम्युनिस्ट देशों में हो रही है। उन सब राज्यों में, जो सैक्युलर हैं, शिक्षा पूर्ण-रूपेण राज्य ने, अपने हाथ में ले ली है। वे राज्य चाहते हैं कि कुछ ही काल में मानव मन से ईश्वर शब्द का लोप हो जाये।

शिक्षा केवल स्कूल-कालेजों और विश्वविद्यालयों में ही नहीं मिलती। इन संस्थाओं के अतिरिक्त स्थानों पर भी शिक्षा दी जाती है। वर्तमान युग में सामान्य-साहित्य, समाचार-पत्र, साहित्यिक-पत्रिकाएँ और घटने वाले समाचार भी शिक्षा देते हैं। प्राचीन इतिहास भी इसमें भाग लेता है। इन नास्तिक राज्यों ने इन सब पर भी पूर्ण अधिकार जमा लिया है। केवल वही पत्रिकाएँ और साहित्य इन देशों में चलने दी जाती हैं, जो उनके माप-दण्ड से ठीक हैं। अन्य बहुत सी बातों के साथ ईश्वरवाद की पुस्तकें, साहित्य और इतिहास तथा समाचार भी इन देशों में घुसने नहीं दिये जाते। इस प्रकार मानव मन पर नास्तिक्य का आधिपत्य जमाने का यत्न किया जा रहा है। अभी तक ईसाई धर्म इस प्रकार के बलात्कार का विरोध करने में अशक्त सिद्ध हुआ है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विचार प्रोत्साहन में इतिहास एक महान् साधन है। इन नास्तिक राज्यों ने विचार पर नियन्त्रण (thought control) करने के लिए इतिहास की नवीन व्याख्या प्रस्तुत करनी आरम्भ कर दी है।

जहाँ मुसलमान, इस्लाम तथा मुहम्मद साहब के विषय में, इतिहास में किसी प्रकार की भी आलोचना का विरोध करते हैं, वहाँ ईसाई अपने धन और राज्य-बल से इतिहास में अपनी धर्म-पुस्तक अंजील की बात का खण्डन नहीं होने देते। मुसलमान तो अपनी बात छुरे घोंपकर मनवाते हैं और ईसाई राज्य अपनी बात धन तथा राजनीतिक प्रभुत्व से स्वीकार कराना चाहते हैं। इनके विरोधी नास्तिक राज्यों (सैक्युलर स्टेट) वाले तो राज्य-बल से, अपने राज्यों में, अपने मत की पुस्तकों के अतिरिक्त अन्य कोई पुस्तक, दर्शन, विज्ञान, धर्म तथा इतिहास इत्यादि को चलने नहीं देते।

यह है हमारा अभिप्राय, जब हम वर्तमान युग के इतिहास-लेखकों की धाँधली का उल्लेख करते हैं। योरुप और अमरीका में ईसाई धर्म का प्रचार है और उन देशों में सत्य इतिहास के मार्ग में बाईबल एक महान् बाधा बनी है। इस पर भी राज्य-बल और राज्य-प्रलोभनों की अवहेलना कर कुछ लेखक निर्भीकतापूर्वक अपना मत लिखते रहे हैं। परन्तु मुसलमानी राज्यों में कम्युनिस्ट राज्यों में तो ऐसा सम्भव ही नहीं। वहाँ जब भी कोई लेखक कुछ ऐसा लिखता है, जो वहाँ के राजनीतिक प्रभुओं को पसन्द नहीं, वह लेख छप नहीं सकता और उसका लेखक जीवित नहीं रह सकता।

: २ :

भारत में इतिहास लेखन

इतिहास को राजनीति से प्रभावित करने की धाँधली केवल योरुप, इस्लामी देशों तथा कम्युनिस्ट देशों में ही नहीं चली, प्रत्युत भारत में भी चल रही है। मुसलमानों के काल में और अंग्रेज़ों के राज्य में, यह धाँधली चली थी और अब भी, इस स्वराज्य के काल में भी चल रही है।

मुसलमानी राज्य-काल में भारत के प्राचीन ग्रन्थ जलाने का भरसक प्रयत्न किया गया। ग्रन्थ लिखने वालों को राज्य का प्रोत्साहन और शान्त वातावरण नहीं मिला। मुसलमानों द्वारा अपना राजनीतिक प्रभुत्व जमाने के लिए एक ओर, तथा इस्लाम के प्रचार के लिए दूसरी ओर सात सौ वर्ष तक निरन्तर प्रयास जारी रहा। इस प्रयास का विरोध हिन्दू, जो भारत के निवासी थे, अपनी जान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की बाज़ी लगाकर करते रहे। संघर्ष में शान्ति से बैठकर न तो ज्ञान-विज्ञान की ओर किसी का ध्यान जा सका और न ही इतिहास लिखने में। बहुत कठिनाई से प्राचीन साहित्य की केवल वे ही पुस्तकें सुरक्षित रखी जा सकीं, जिनको हिन्दू विद्वान् हिन्दू समाज के अस्तित्व के लिए परमावश्यक मानते थे। यह सात सौ वर्ष का काल जाति की संस्कृति और धर्म के लिए अति कठिनाई का काल था। हिन्दू समाज ने यह दुस्तर सागर भी पार किया।

इसके उपरान्त अंग्रेज़ी राज्य आया। १७५७ के प्लासी युद्ध के उपरान्त अंग्रेज़ सत्ताधारी के रूप में सम्मुख आये। मुट्ठी-भर अंग्रेज़ हिन्दुस्तान की कोटि-कोटि जनता पर अनायास अपना राज्य स्थापित होता देख चकित रह गये।

फ्रांसीसी राज्य ने हिन्दुस्तान में अपने देश का व्यापार चलाना चाहा था। फ्रांसीसी व्यापार कम्पनी राज्य का एक अंग था। इसके विपरीत ईस्ट इण्डिया कम्पनी एक निजी संस्था थी। सन् १७०० से पूर्व इसका आशय यहाँ राज्य स्थापित करने का नहीं था। इस पर भी एक प्राइवेट कम्पनी के रूप में यह कम्पनी हिन्दुस्तान में फ्रांसीसियों से अधिक धनी और शक्तिशाली थी। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के अनियमित कामों पर किसी राज्य का नियन्त्रण नहीं था और कम्पनी नियमित व्यापार के साथ अनियमित आय के साधन भी बना रही थी।

हिन्दुस्तान का यह काल अराजकता का काल था। दिल्ली के मुग़ल परिवार का ह्रास आरम्भ हो गया था। औरंगज़ेब की नीति के कारण राज्य में मुल्ला-मौलानाओं का बोलबाला हो रहा था। परिणाम यह हो रहा था कि हिन्दुस्तान में छोटे-छोटे राज्य उत्पन्न हो गये थे और वे अपनी सीमाओं को बढ़ाने के लिए परस्पर लड़ रहे थे।

इस अराजकता में जहाँ फ्रांसीसी एक राज्य की एजेन्सी होने के कारण कुछ अधिक लूट-खसूट नहीं कर सके, वहाँ ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने बहुत लम्बे-लम्बे हाथ मारे।

दूसरी ओर योरुप में अट्ठारहवीं शताब्दी के आरम्भ में फ्रांस और इंग्लैण्ड में शत्रुता चल रही थी। अतः हिन्दुस्तान में भी यह शत्रुता भड़क उठी। फ्रांसीसियों और अंग्रेज़ों में युद्ध की स्थिति हुई तो ईस्ट इण्डिया कम्पनी को भी राजनीतिक शक्ति के रूप में अपना अस्तित्व निर्माण करना पड़ा। फ्रांसीसी, स्थानीय राज्यों की सहायता से अंग्रेज़ों को निःशेष करने का यत्न करने लगे तो ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने भी कुछ विरोधी देशी राज्यों से सहायता लेनी आरम्भ कर दी। कम्पनी ने हिन्दुस्तानी सिपाही भी भरती किये। इन्हीं झगड़ों में क्लाइव ने १७५७ में प्लासी का युद्ध जीत लिया।

इस युद्ध के उपरान्त बंगाल में अंग्रेज़ी शासन स्थापित हो गया। कुछ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काल तक द्वैध-शासन चला। धीरे-धीरे यहाँ पूर्णरूपेण अंग्रेज़ी शासन स्थापित हो गया और वह इंग्लैण्ड के राज्याधीन हो गया।

बंगाल का प्रबन्ध ठीक होने में पचास वर्ष लग गये और तब अंग्रेज़ों में पूर्ण हिन्दुस्तान पर शासन जमाने की महत्वाकांक्षा बन गयी।

अंग्रेज़ विचार करने लगे कि कैसे हिन्दुस्तान का शासन लिया जा सकता है और इतने विशाल क्षेत्र पर थोड़े-से अंग्रेज़ों द्वारा कैसे शासन स्थिर रखा सकता है! एतदर्थ दो दिशाओं में कार्य होने लगा। एक दिशा थी कूटनीतिक व्यवहार। इसके द्वारा भिन्न-भिन्न देशी राज्यों को परस्पर लड़ाकर स्वयं बन्दरबाँट का लाभ प्राप्त करना; और दूसरी दिशा थी विशाल जनता के मन में यह अंकित करना कि पूर्व के देशीय राज्यों से अंग्रेज़ का राज्य अति सुखप्रद है।

उस काल में अंग्रेज़ी शासन ने, कम-से-कम नगरों में, यह प्रभाव जमा लिया था कि अंग्रेज़ी शासन न्याय और शान्ति प्रदान करता है।

इस नीति की एक झलक श्री रमेशदत्त अपनी पुस्तक 'दि इकॉनामिक हिस्ट्री ऑफ़ ब्रिटिश इण्डिया अण्डर अर्ली ब्रिटिश रूल' के पृष्ठ ४३० पर प्रस्तुत करते हैं—

> I was brought up among those who had been in the School and College in 1837 when the queen ascended throne; and I do not exaggerate facts when I state that nothing could exceed the appreciation of English literature, thought and character, nothing could exceed the loyalty to the British rule which these men felt and expressed in their everyday conversation. They had recollections of the times of Bentinck, Elphinston and Munro. They had seen Macaulay, Trevelyan and Mtcalf, and a faith in English truth was a part of their beliefs.

'मैं उन लोगों में पला हूँ जो १८३७ में स्कूल और कालेजों में पढ़े थे, जब मलिका राजगद्दी पर बैठी थी। मैं जब यह कहता हूँ कि वे लोग अंग्रेज़ी साहित्य, विचार और चरित्र की प्रशंसा करते थे तथा उन लोगों की अंग्रेज़ी राज्य के लिए भक्ति जो वे नित्यप्रति अपनी बातों में प्रकट करते थे, अत्यधिक थी, तो यह अतिशयोक्ति नहीं। उन्हें बैंटिक, ऐलफ़िन्सटन और मुनरो के समय की बातें स्मरण थीं। उन्होंने मैकॉले, ट्रैविलीयन और मैटकाफ़को देखा था। उनको अंग्रेज़ी सच्चाई में विश्वास था।

इस प्रकार का प्रभाव बंगाल के नगरों में जमाने का भरसक यत्न किया गया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था। परन्तु इतना पर्याप्त नहीं समझा गया। तत्कालीन अंग्रेज़ी शासन ने एक और बात की। उन्होंने देखा कि हिन्दुस्तान में हिन्दू, मुसलमानों के ज़ोर-जुल्म को सात सौ वर्ष तक सहन कर भी जीवित रहा है। अरब से मोराको तक, जहाँ-जहाँ मुसलमान की तलवार गयी थी, वहाँ के निवासी राज्य के बल से कुछ ही वर्षों में इस्लाम को स्वीकार कर बैठे थे। यहाँ हिन्दुस्तान में सात सौ वर्ष का इस्लामी राज्य भी यह काम कर नहीं सका।

अंग्रेज़ इसका कारण यह समझे थे कि हिन्दुओं में ब्राह्मणों, साधु-सन्त-महात्माओं, की प्रतिष्ठा बहुत है। इस कारण इस धर्म की जड़ों को खोखला करने के लिए अंग्रेज़ी ढंग के स्कूल-कालेज खोले गये और वहां उस प्रकार के पढ़े-लिखे वंगाली उत्पन्न किये गए, जिनके विषय में श्री रमेश दत्त ने ऊपर लिखा है।

इन स्कूलों तथा कॉलिजों की योजना मैकॉले की थी। मैकॉले एक पत्र में अपने पिता को इस प्रकार लिखता है—

Calcutta,
October 12, 1839

My Dear Father,

Our English School are flourishing wonderfully.....The effect of this education on the Hindoos is prodigious. No Hindoo who has received our English education, ever remains sincerely attatched to his religion. Some continue to profess it as a matter of policy and some embrace Christianity. It is my belief that, if our plans of education are followed up, there will not be a single idolator among the respectable castes in Bengal, thirty years hence, and this will be affected without any efforts to proselytise, without the smallest interference with religious liberty by natural operation of knowledge and reflection. I heartily rejoice in the prospect.....

Ever yours,
most affectionately,
T. B. Macaulay[1]

1. Qtd. by Brahma Datt Bharti in 'Maxmuller Exposed', p. 3 from 'The Life and Letters of Lord Macaulay', pp. 329-330 by Rt. Hon'ble Sir George Otto Trevelyan Bart..

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

R 0894.9143
GUR-P
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
Gurukula Kangri (Deemed to be University), Haridwar
167890

इसका अनुवाद इस प्रकार है—

परमप्रिय पिता जी,

हमारे अंग्रेज़ी स्कूल अद्भुत ढंग से सफल हो रहे हैं..... इस शिक्षा का प्रभाव हिन्दुओं पर बहुत अधिक हुआ है। कोई हिन्दू, जिसने अंग्रेज़ी शिक्षा को ग्रहण कर लिया है, सत्य हृदय से अपने मत से सम्बन्ध नहीं रख सकता। कुछ ऐसे भी हैं जो इसको नीति के रूप में स्वीकार करते हैं और कुछ तो ईसाइयत को ही स्वीकार कर लेते हैं। यह मेरा विश्वास है कि यदि हमारी शिक्षा की नीति पर आचरण किया गया तो आगामी तीस वर्ष में बंगाल के सम्भ्रान्त परिवारों में एक भी मूर्तिपूजक नहीं रहेगा। बिना मत परिवर्तन कराए अथवा उनकी मज़हबी स्वतन्त्रता में किसी प्रकार का हस्तक्षेप किये बिना, यह सब-कुछ हो जायेगा। स्वाभाविक रूप में ज्ञान-प्रसार और विचार-प्रोत्साहन से यह होगा। भावी आशा से मुझे बहुत प्रसन्नता हो रही है।

सदैव आपका,
अत्यन्त स्नेह के साथ
टी० बी० मैकाले

यही वह मैकॉले साहब थे जिन्होंने मैक्समूलर को ऑक्सफ़ोर्ड विश्वविद्यालय में स्थान दिलवाया था, जिससे वह हिन्दू-शास्त्रों के विकृत अर्थ कर सकें। मैक्समूलर ने वेद शास्त्रों के अर्थ उन हिन्दुस्तानी भाष्यकारों की सहायता से किये थे जो वाम-मार्ग और बौद्धमत के प्रभाव में थे।

अंग्रेज़ी सरकार ने जहाँ एक ओर कूटनीति से पूर्ण हिन्दुस्तान पर अंग्रेज़ी शासन स्थापित किया, वहाँ जनता के मन में अपने शासन की धाक जमाने का यत्न भी किया। इन दोनों उपायों से अधिक प्रभावी उपाय था जनता की शिक्षा को अपने अधीन कर उन्हें अपने मज़हब से पदच्युत करने का प्रयास। अतः प्राचीन भारतीयों को निन्दनीय घोषित किया गया।

इसके साथ-साथ यह भी प्रयत्न किया गया कि हिन्दुओं के धर्म-ग्रन्थों के विकृत अर्थ कर उनको बदनाम किया जाये और तदनन्तर अपने चलाये स्कूल, कालेजों में उन धर्म-ग्रन्थों की हंसी उड़ाई जाये।

किस उद्देश्य से मैक्समूलर इत्यादि लोग भारतीय शास्त्रों का अनुवाद करते थे, यह मैक्समूलर के अपने एक वाक्य से ही पता चलता है। आप अपने एक पत्र में लिखते हैं—

.....This edition of mine and the translation of the Vedas will hereafter tell to a great extent on the fate of

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

> India.....It is the root of their religion and to show them what the root is, I feel sure, it is the only way of uprooting all that has sprung from it during the last three thousand years.....[1]

वेद का अनुवाद और मेरा यह ग्रन्थ उत्तरकाल में भारत के भाग्य पर दूर तक प्रभाव डालेगा। यह उनके धर्म का मूल है और मैं निश्चय से अनुभव करता हूँ कि उन्हें यह दिखाना है कि यह मूल कैसा है; यही एक उपाय है जिससे पिछले तीन सहस्र वर्षों में उत्पन्न हुए का विनाश किया जा सकता है।

वास्तविकता यह है कि ये लोग ईसाई मज़हब के दीवाने थे और ये स्वीकार नहीं कर सकते थे कि बाइबल से प्राचीन और श्रेष्ठ, कुछ अन्य भी हो सकता है।

एक अन्य पत्र में वह लिखता है—

> Would you say that any one sacred book is superior to all others in the world ?.....I say the New Testament. After that, I should place the Koran, which in its moral teachings, is hardly more than a later edition of the New Testament. Then would follow.....the Old Testament, the Southern Buddhist Tripitaka.....The Veda and the Avesta.[2]

संसार की सब धर्म पुस्तकों में 'बाइबल-नई पुस्तक' उत्कृष्ट है।..... इसके पश्चात् कुरान जो आचार की शिक्षा में 'बाइबल-नई पुस्तक' का रूपान्तर मात्र है। इसके पश्चात्.....'बाइबल-पुरानी पुस्तक' और दाक्षिणात्य-बौद्ध त्रिपिटका.....वेद और अवस्ता इत्यादि।

यही महाशय आगे लिखते हैं—

> The ancient religion of India is doomed and if Christianity does not step in, whose fault will it be ?[3]

भारत का प्राचीन धर्म मरणासन्न है और यदि उसका स्थान ईसाई धर्म नहीं लेता तो यह किसका दोष हो सकता है ?

---

1. मैक्समूलर का अपनी पत्नी को पत्र सन् १८६६ में;
2. मैक्समूलर का अपने पुत्र को पत्र;
3. भारत सचिव, ड्यूक ऑफ़ आर्गाइल को १६ दिसम्बर सन् १८६८ को लिखा मैक्समूलर का पत्र;

(उक्त तीनों उद्धरण पण्डित भगवद्दत जी के 'भारत के बृहद् इतिहास' प्रथम भाग, द्वितीय संस्करण, पृष्ठ ४१ से लिए गये हैं।)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ये और ऐसे ही अन्य अनेक पक्षपातपूर्ण लेख लिखे गये और इसका परिणाम यह हुआ था कि प्रायः सब शिक्षा केन्द्रों में यह पढ़ाया जाने लगा कि—

(१) यह देश एक महाद्वीप है। इसमें अनेक जातियाँ बसी हुई हैं। उनकी भिन्न-भिन्न संस्कृति है।

(२) आर्य जाति हिन्दुस्तान के बाहर से यहाँ आयी थी। इस देश के मूल निवासी नाग, भील, गौंड इत्यादि जातियाँ हैं।

(३) वेद, भूमण्डल के साहित्य में सबसे प्राचीन पुस्तक है, परन्तु इसमें गडरियों के गीत हैं। इसमें आदि-मनुष्य के अपरिपक्व मस्तिष्क की कथाएँ, कल्पनाएँ और गीत हैं।

(४) वैदिक काल से पहले भी कई सभ्यताएँ और भाषाएँ थीं।

(५) आदि मनुष्य एक जंगली जन्तु की भाँति अविकसित मस्तिष्क रखने वाला प्राणी था और विकास की प्रक्रिया से यह उन्नति करता-करता वर्तमान अवस्था तक पहुँचा है।

(६) परमात्मा का अस्तित्व नहीं है। न ही जीवात्मा का अस्तित्व है। सब-कुछ जड़ प्रकृति ही है और चेतना प्रकृति की एक विशेषावस्था का नाम है।

(७) रामायण, महाभारत और पुराणों में ऐतिहासिक अंश भी लेखकों की कल्पना की ही उपज है। राम, कृष्ण और अन्य ऋषि, महर्षि सब काल्पनिक व्यक्ति हैं। इनका कोई अस्तित्व नहीं था।

(८) भारत के रहने वालों को इतिहास लिखना आता ही नहीं था। भारतवर्ष का कोई इतिहास नहीं है। पुराने भारत के विषय में जो कुछ पता चलता है, वह विदेशों से आये पर्यटकों के लेखों से ही है। इतिहास का कुछ ज्ञान यहाँ के शिलालेखों तथा यहाँ की टूटी-फूटी इमारतों से भी होता है।

इस प्रकार की मनोवृत्ति पढ़े-लिखे भारतीयों के मन में डाल दी गयी है और परिणाम यह हो रहा है कि हम स्वराज्य प्राप्त कर लेने पर भी अंग्रेज़ों द्वारा पढ़ायी गयी उक्त भ्रान्त मान्यताओं को गले से बाँधे फिरते हैं।

अनुमान से पहले ही अंग्रेज़ों को यहाँ राजनीतिक स्वतन्त्रता देनी पड़ी। यहाँ की जनता में अपने राष्ट्र, संस्कृति और धर्म में श्रद्धा लोप होने से पूर्व ही उनको यहाँ से जाना पड़ गया। योरुप में दो महान् युद्धों के होने से इंग्लैण्ड अत्यन्त दुर्बल पड़ चुका था और अन्य अन्तर्राष्ट्रीय शक्तियों का दबाव इतना बढ़ गया था कि इंग्लैण्ड को हिन्दुस्तान से ही नहीं, प्रत्युत अनेक अन्य देशों से भी अपने साम्राज्य को बिस्तरा लपेटना पड़ गया।

इस समय यहाँ अंग्रेज़ों ने दोहरी चाल चली। एक तो यह कि भारत के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक विशिष्ट भू-भाग को उन लोगों के हाथों में देना स्वीकार कर लिया, जिनका न तो देश के साथ प्रेम था, न ही देश की मुख्य जाति हिन्दू से किंचित्मात्र भी लगाव था। दूसरे, उन्होंने हिन्दुओं में उन नेताओं को बढ़ावा दिया जिनका झुकाव अंग्रेज़ी सभ्यता, साहित्य और परम्पराओं की ओर प्रबल था। भारत की प्राचीन संस्कृति तथा रीति-रिवाजों को निकृष्ट समझने वाले लोग यहाँ शासक बने तो वे इतिहास के विषय में भी वही नीति अपनाने लगे, जो अंग्रेज़ शासक बना रहे थे।

यहूदी, ईसाई और यूरोपियन नास्तिकों ने अपने-अपने विचार से संसार का इतिहास लिखना आरम्भ किया हुआ है। इस इतिहास को विकृत करने में सबका अपना-अपना उद्देश्य है और उसके अनुरूप ही भारत के वर्तमान स्वराज्य-प्राप्ति काल के लेखक कार्य कर रहे हैं। इसमें एक कारण तो यह है कि परतन्त्रता के युग में स्वाभाविक रूप में उन लेखकों को मान प्राप्त था, जो अंग्रेजों और योरुपियन लेखकों के स्वर में स्वर मिलाते थे। स्वराज्य-प्राप्ति के उपरान्त का शासक-वर्ग भी योरुपियन अथवा नास्तिक मनोवृत्ति रखता है और अंग्रेज़ी काल के विद्वान को ही विद्वान् मानता है।

अतः इस समय भी वे लोग ही भारत का इतिहास लिख रहे हैं जो ईसाई, यहूदी और अनीश्वरवादी लेखकों के शिष्य हैं। ये सब लेखक क्या लिखते हैं, इसका दिग्दर्शन कराने के लिए नीचे कुछ उदाहरण दिये जा रहे हैं। इनके विपरीत कितनी भी युक्तियाँ तथा प्रमाण क्यों न दिये जायें, न तो योरुपीय विद्वान इनको मानने को तैयार हैं, न ही आज के भारत के शासक।

: ३ :

इतिहास को विकृत करने का उद्देश्य

हम यह बता चुके हैं कि ईसाई और यहूदी यह बात समझ नहीं सकते कि उनकी धर्म-पुस्तक बाइबल में लिखे इतिहास के अतिरिक्त अथवा विपरीत भी कोई बात सत्य हो सकती है। अतः वे बाइबल की ऐनक से सारे संसार को देखने का यत्न करते रहे हैं और आज भी कर रहे हैं।

बाइबल में लिखा है कि इस पृथ्वी पर मानव-सृष्टि का उदय आदम से हुआ और आदम तथा हव्वा को जब स्वर्ग से निकाला गया तो उन्होंने सृष्टि आरम्भ की। बाइबल में आदम की वंशावली और उसका जीवन-काल तथा जन्म-काल लिखा है। इसके विषय में व्याख्या से न लिखकर यहाँ इतना ही बताना पर्याप्त होगा कि उस वंशावली के हिसाब से आदम के स्वर्ग से उतरने से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आज तक ५४७२+१९६९=७४४१ वर्ष ही व्यतीत हुए हैं। अतः बाइबल को प्रामाणिक पुस्तक मानने वाले, किसी भी सभ्यता को इससे पुरानी सभ्यता मानने के लिए तैयार नहीं होते। यदि वे मानें तो बाइबल को उन्हें ग़लत मानना पड़ेगा।

मानव-सृष्टि इतने ही काल से है, यह तो वैज्ञानिक भी नहीं मानते। इस पर भी वे अपना अनुमान लगाते समय डरते हैं।

इस विषय में निम्न वक्तव्य पठनीय हैं। ग्रेट ब्रिटेन तथा आयरलैंड के रॉयल एन्थ्रोपोलोजिकल संस्थान के जर्नल के ६०वें अंक (जुलाई—दिसम्बर १९३०) में एक लेख 'सभ्य मनुष्य की प्राचीनता' पर छपा है। उसमें लिखा है—

> But as far as man was concerned, his history was still limited by the dates in the margins of our Bible. Even today the old idea of his recent appearance still prevails in quarters where we should least expect to find it and so called critical historians still occupy themselves in endeavouring to reduce the dates of his earlier history.....

आगे चलकर फिर लिखा है—

> To a generation which had been brought up to believe that 4004 B. C. or there-abouts, the world was being created the idea that man himself went back to 100,000 years, ago was both incredible and inconceivable.

इन उद्धरणों का अनुवाद इस प्रकार है—

जहाँ तक मनुष्य का सम्बन्ध है, इसका इतिहास अभी भी बाइबल से निकाली तिथियों तक ही सीमित है। आज भी, मनुष्य का अभी-अभी भूतल पर उत्पन्न होना, उन क्षेत्रों में भी प्रचलित है, जहाँ हमको इसकी आशा नहीं करनी चाहिए। तथाकथित इतिहासज्ञ भी यत्न करते हैं कि प्राचीन इतिहास की तिथियाँ, कम-से-कम पुरानी लिखी जायें।

उस मानव के लिए, जिसको शिक्षा में विश्वास दिलाया गया है कि ४००४ वर्ष ईसा पूर्व में अथवा इसके आस-पास में सृष्टि उत्पन्न हो रही थी, यह मानना कि मानव-प्राणी एक लाख वर्ष पूर्व यहाँ था, असम्भव प्रतीत होता है।

और भी—

> Custodians of the Pentateuch were alarmed by the prospect that Sanskrit would bring down the tower of Babel.[1]

1. **Frederic Bodmer : The Loom of Language, New York 1944, p-174)**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'यहूदियों की बाइबलगत पाँच पुस्तक के रक्षक संस्कृत साहित्य के कारण बैबल के स्तूप के गिर पड़ने की सम्भावना देखकर भयभीत हो गये थे।

इन दोनों उदाहरणों से स्पष्ट है कि भारत के इतिहास को विकृत करने वालों में बाइबल के भक्तों का कितना बड़ा हाथ है। इनको भय है कि भारत का इतिहास तथा संस्कृत साहित्य का ज्ञान फल गया तो बाइबल झूठी सिद्ध हो जायेगी।

ईसाई पादरियों ने संस्कृत का अध्ययन ही इस कारण किया था कि भारत में ईसाई मत का प्रचार कर सकें! इसके लिए इंग्लैण्ड में संस्कृत-अंग्रेज़ी का शब्द-कोष लिखने का वृहत् प्रयास किया गया। इस प्रयास के विषय में सर मोनियर विलियम अपने शब्द-कोष के प्राक्कथन में लिखते हैं—

> .....I must draw attention to the fact that I am only the second occupant of the Boden Chair, and that its founder, Colonel Boden, stated most explicitly in his will (dated Aug. 15, 1811) that the special object of his munificent bequest was to promote the translation of the scriptures into Sanskrit; so as to enable his countrymen to proceed in the conversion of the natives of India to the Christian Religion.[1]

मैं यह बताना चाहता हूँ कि मैं बोडन आसंदी (Chair) पर बैठने वाला दूसरा व्यक्ति हूँ। इसे संस्थापक कर्नल बोडन ने अपनी वसीयत में स्पष्ट शब्दों में लिखा है कि इस आसंदी के स्थापित करने का विशेष उद्देश्य यह है कि बाइबल का संस्कृत में अनुवाद किया जाये, जिससे कि हिन्दुस्तान के रहने वालों को इस धर्म में लाया जा सके।

जब पादरी लोग इस उद्देश्य से संस्कृत का अध्ययन कर रहे थे, तब कुछ ऐसे लोग भी थे जो संस्कृत साहित्य का अध्ययन स्वतन्त्र रूप से और ज्ञानवर्धन के लिए कर रहे थे। उन लोगों को भारत का धर्म और शास्त्र अत्यन्त श्रेष्ठ प्रतीत हुआ था।

ऐसे लोगों ने भारत के साहित्य की प्रशंसा आरम्भ कर दी। उदाहरण के रूप में प्रसिद्ध जर्मन दार्शनिक आर्थर शॉपनहाअर ने फ्रेंच लेखक अकवील डपेरिन का उपनिषद् का 'लेटिन' में भाष्य पढ़ा था। उसने दारा शिकोह द्वारा किया

---

1. A Sanskrit-English Dictionary, by Sir Monier Williams, Preface, p. lX. 1899.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गया उपनिषद् का फ़ारसी में अनुवाद भी पढ़ा था। शॉपनहाअर ने इन ग्रन्थों के विषय में लिखा है—

'उपनिषद् मानव-बुद्धि की सर्वोच्च उपज है। इसमें लगभग अतिमानव (super-human) विचार हैं। संसार में सम्भव यह सबसे अधिक सन्तोषप्रद और उन्नत करने वाला पाठ है। यह मेरे जीवन के लिए आश्वासन रहा है और मृत्यु के समय मेरा आश्रय रहेगा।'

इसी प्रकार के विद्वान् का एक और उदाहरण लीजिये। चन्द्र नगर के प्रधान न्यायाधीश फ्रैंच विद्वान् लुई जैकालियट ने सन् १९२६ में एक पुस्तक लिखी। इसका नाम था La Bible Daus India (भारत में बाइबल)। सन् १९२७ में इस पुस्तक का अंग्रेज़ी में अनुवाद छप गया। इसमें श्री लुई जैकालियट ने सिद्ध किया है कि संसार की सब प्रधान विचारधाराएँ आर्य-विचारधारा से निकली हैं। उसने भारत को मानव-सभ्यता का 'पालना' लिखा है।

वह अपनी पुस्तक में लिखते हैं—'प्राचीन भूमि ! मनुष्यमात्र का जन्म स्थान ! तेरी जय हो ! पूजनीय और समर्थधात्री ! जिसको शताब्दियों के नृशंस आक्रमणों ने अभी तक विस्मृति की धूल के नीचे दबाया हुआ है, तेरी जय हो ! श्रद्धा, प्रेम, कविता और विज्ञान की पितृभूमि ! तेरी जय हो ! क्या कभी ऐसा दिन भी आयेगा जब हम अपने पाश्चात्य देशों में तेरे अतीत-काल की-सी उन्नति देखेंगे ?'

ये और ऐसे अन्य अनेक विद्वान् जब भारत के ज्ञान-विज्ञान की प्रशंसा करने लगे तो ईसाई पादरी जल-भुन गये और उनको गालियाँ देने लगे। इन गालियों का भी एक उदाहरण देखिये—

शॉपनहाअर के विषय में ईसाई पादरी विन्टरनिट्ज लिखता है—

> Yet I believe it is a wild exaggeration when Schopen-Hauer says that the teaching of the Upnishads represents, "The fruit of the highest human knowledge and wisdom."

(मैं विश्वास से कहता हूँ कि शॉपनहाअर का उपनिषद् के विषय में कथन अतिशयोक्ति है।)

एक अन्य जर्मन विद्वान मैक्समूलर साहब डॉ० स्पीगल के विषय में लिखते हैं—

> A writer like Dr. Spiegel should know that he can expect no mercy; nay, he should himself wish for

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

no mercy, but invite the heaviest artillery against the floating battery which he has launched into the troubled waters of Biblical criticism.[1]

'डॉक्टर स्पीगल सदृश लेखक को जानना चाहिए कि वह किसी दया की आशा नहीं कर सकता। उसे स्वयं किसी की दया की इच्छा करनी भी नहीं चाहिए। बाइबल के विरोधरूपी सागर में जो जल-पोत उसने उतारा है, उस पर भारी गोला-बारी होगी।'

डॉक्टर स्पीगल का अपराध यह था कि उसने लिखा था कि यहूदी धर्म में उन्नति का विचार पारसी धर्म से आया है।

इसी प्रकार लूई जैकालियट के विषय में मैक्समूलर ने लिखा है कि जैकालियट किसी ब्राह्मण के धोखे में आ गया है।

: ४ :

इतिहास की विकृति में राजनीतिक उद्देश्य

इन यहूदियों और पादरियों का भारतीय धर्म और संस्कृति पर आघात तो था ही, साथ ही भारत में अंग्रेज़ी सरकार ने, न केवल इन ईसाई पादरियों को भारत की संस्कृति तथा धर्म को तुच्छ प्रकट करने में प्रोत्साहन दिया, अपितु ऐसे विद्वान चुन-चुनकर इतिहास लिखने में लगाये, जो भारत के इतिहास को विकृत करके लिखने लगे। इन्होंने लिखा कि भारत जंगलियों का देश है, यहाँ अनेक आक्रमणकारी आये और यहाँ के लोग उनसे परास्त होते रहे; उन आक्रमणकारियों में आर्य भी एक हैं। ये यहाँ के मूल निवासी नहीं हैं। यहाँ के मूल निवासी (aboriginal tribes) भील, गौंड, नागा इत्यादि जातियाँ हैं। द्रविड दक्षिण में रहते थे और आर्य उन पर भी आक्रान्त हैं।

इस प्रकार इतिहास लिखने वालों में लैथब्रिज तथा मैक्डॉनल्ड के नाम उल्लेखनीय हैं। उन्होंने लिखा है कि भारतीयों को इतिहास लिखना नहीं आता था। इस कारण देश का इतिहास जानने के लिए शिलालेख और पुराने खण्डहरों पर लिखे लेखों से अनुमान लगाने पड़ते हैं। ये 'इतिहासज्ञ' अंग्रेज़ी सरकार के वेतनधारी थे और कालेजों में प्रोफ़ेसर थे।

इनके अतिरिक्त कुछ स्वतन्त्र विचार के लोग भी थे, जो इनकी कुटिलता को प्रकट करते थे। परन्तु वे स्वतन्त्र विचार के लोग सदा सरकार की ओर से विरोध

1. Chips—Genesis and the Zend Avesta, p. 147.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और अवहेलना के पात्र रहे।

सारांश यह है कि ईसाई तथा यहूदी मत से प्रभावित लोग भारत के साहित्य की निन्दा और भारत के इतिहास को विकृत तो करते ही थे, साथ ही अंग्रेज़ी सरकार के वेतनधारी भी ऐसे थे, जो भारत की मुख्य जाति हिन्दू और इस जाति के इतिहास को निन्दनीय बताते रहते थे।

इस विषय में मद्रास विश्वविद्यालय के इतिहास के प्राध्यापक महा-महोपाध्याय नीलकण्ठ शास्त्री के विचार पठनीय हैं। प्रोफेसर नीलकण्ठ पाश्चात्य पद्धति के ही विद्वान् थे, इस पर भी वे भारत के निन्दकों की धाँधली देख क्रोध से भर गये। वे लिखते हैं—

> What is this, but a critique of Indian society and Indian history in the light of the nineteenth century pre-possessions of Europe? This criticism was started by the English administrators and European missionaries and has been neatly focussed by the vast erudition of Lassen; the unfulfilled aspirations of Germany in the early nineteenth century, doubtless had their share in shaping the line of Lassen's thought.

यह महामहोपाध्याय नीलकण्ठ शास्त्रीजी के लेख का वह अंश है जो उन्होंने अखिल भारतीय ओरिअण्टल कॉन्फरेन्स (दिसम्बर १९४१) में पढ़ा और उसकी रिपोर्ट के दूसरे भाग पृष्ठ ६४ पर छपा। छपने की तिथि १९४६ की है।

इसका अर्थ है—'भारतीय समाज और भारतीय इतिहास के विषय में जो आलोचना की गयी है, वह उन्नीसवीं शती के योरुप के पूर्व स्वीकृत विचार से प्रभावित है। यह आलोचना अंग्रेज़ शासकों और योरुपीय ईसाई पादरियों द्वारा आरम्भ की गयी है और लैसन की युक्ति से तीव्र कर दी गयी है। १९वीं शती के आरम्भ में जर्मनी की पराजित अभिलाषाओं का प्रभाव लैसन की विचारधारा पर पहुँचा था।'

इसी प्रकार राय बहादुर श्री सी० आर० कृष्णमचारुलू को भी उक्त षड्यन्त्र का आभास हुआ था।

Cradle of Indian History, जो अडियार लायब्रेरी मद्रास द्वारा सन् १९४७ में प्रकाशित की गयी है, उसमें वे लिखते हैं—

'ये लेखक जो नवीन बनी जातियों के व्यक्ति हैं और जो सांस्कृतिक उद्देश्यों के अतिरिक्त भिन्न उद्देश्यों से लिखते हैं, कई बार तो स्पष्ट रूप में जातिवाद और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पक्षपात से प्रभावित होकर भारतवर्ष का इतिहास लिखते हैं। वे न तो ऐतिहासिक तथ्य देख पाते हैं, न ही उनमें सांस्कृतिक सहानुभूति है।'

महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती ने मैक्समूलर इत्यादि पाश्चात्य लेखकों को चुनौती दी थी कि वे आयें और अपने भाष्यों पर वाद-विवाद कर लें।

श्री बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय ने भी लिखा था कि यह दुर्भाग्य का दिन था कि जब वैबर इत्यादि योरुपीय लेखकों ने संस्कृत पढ़ी। ये जर्मन लेखक यह नहीं मान सकते थे कि ईसा के जन्म से शताब्दियों पूर्व महाभारत लिखा गया था।

आज भारत में स्वराज्य हो जाने पर भी उन्हीं पाश्चात्य लेखकों के निष्कर्षों से प्रभावित तथा अंग्रेज़ राजनीतिज्ञों से विचारित योजना से लिखा गया इतिहास पढ़ाया जा रहा है और भारत सरकार विपुल धन व्यय करके उसका प्रचार कर रही है।

यह राष्ट्र की अवहेलना ही कही जा सकती है। यह हम आगे चलकर बताने का यत्न करेंगे कि योरुपीय विद्वानों द्वारा लिखे गये इस इतिहास में सैद्धान्तिक भूल कहाँ है? यहाँ हम इतना ही लिखना चाहते हैं कि हमारी स्वतन्त्र सरकार ने मैकॉले की योजनानुसार शिक्षित विद्वानों को ही विद्वान् मान रखा है। यद्यपि युक्ति तथा प्रमाण उन निष्कर्षों को रद्द करते हैं। तदपि माननीय वे ही होते हैं।

आज नयी दिल्ली में मैक्समूलर के नाम से एक संस्थान है, जिसे जर्मन सरकार धन देती है और इससे हिन्दू धर्म की निन्दा के ग्रन्थों का प्रचार होता है।

स्वतन्त्र भारत की सरकार की इस भूल में भी कारण वही है। आज के नेतागण उसी मैकॉले द्वारा नियोजित शिक्षा पद्धति से शिक्षित हैं। मैकॉले की शिक्षा ने तीन प्रकार के काले अंग्रेज़ पैदा किये हैं।

एक वे हैं जो ईसाई मिशनरियों द्वारा खोले गये स्कूलों में जूनियर कैम्ब्रिज अथवा सीनियर कैम्ब्रिज की पद्धति से शिक्षित हुए हैं। इन महानुभावों ने भारतीय दर्शन, शास्त्र, ज्ञान-विज्ञान के ग्रन्थ, इतिहास, पुराण इत्यादि को देखा तक नहीं। यदि किसी ने कुछ देखा है तो केवल मात्र अंग्रेज़ी लेखकों द्वारा उसके अंग्रेजी में अनुवाद ही देखे हैं। इन लोगों को Benign शब्द से 'भला' शब्द लिखना तथा पढ़ना कठिन प्रतीत होता है। इनको राम, कृष्ण से क्रामवैल और नैलसन अधिक समीप प्रतीत होते हैं। उनको शैक्सपियर और मिल्टन अधिक प्रिय हैं और बाल्मीकि तथा व्यास से उनका परिचय नहीं है।

दूसरी श्रेणी के काले अंग्रेज़ वे हैं, जो सामान्य सरकारी स्कूल, कालेजों में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पढ़े हुए हैं। उनके ज्ञान में राम, कृष्ण, वाल्मीकि और व्यास तो हैं, परन्तु उनके विषय में वास्तविक ज्ञान नहीं। उनको कुछ-कुछ हिन्दी भी आती है, परन्तु अभ्यास के अभाव में उनको India's Policy of non-alignment is rational यह वाक्य अधिक मधुर प्रतीत होता है और 'भारत की नीति निष्पक्ष है', कहना कठोर लगता है।

एक तीसरे प्रकार के काले अंग्रेज़ भी हैं। वे प्रायः यूनिवर्सिटियों और सरकारी शिक्षा विभाग से सम्बद्ध, परन्तु प्राइवेट स्कूलों व कालेजों में शिक्षा प्राप्त हैं। वे भारतीय परम्पराओं से परिचित हैं। प्रायः उनको इनसे लगाव भी होता है, परन्तु शिक्षा के अभाव से परेशान रहते हैं और नहीं जानते कि भारतीय बातों को और भारतीय चलन को ठीक कैसे सिद्ध करें? क्योंकि नेतृत्व प्रथम और द्वितीय श्रेणी के काले अंग्रेज़ों के हाथ में है, इस कारण तृतीय श्रेणी के काले अंग्रेज़ उनके पीछे लग जाते हैं।

प्रथम श्रेणी के लोग नेता बन गये हैं। यह केवल इस कारण कि वे अंग्रेज़ी भाषा के जानकार हैं। अंग्रेज़ों के काल में उनकी महिमा थी। तब के बने नेता अभी नेता बने हुए हैं।

: ५ :

भौतिकवाद—इतिहास की विकृति में दूसरा कारण

मानव इतिहास को विकृत करने में दूसरा कारण भौतिकवाद है। भौतिकवादी जगत् के हिलने-डोलने का कारण नहीं बता सकते। वैसे तो प्रसिद्ध वैज्ञानिक न्यूटन ने कहा है कि—

no particle of matter can change its place nor can it change the speed of its motion without the help of an outside force.

अर्थात्—प्रकृति का एक कण भी अपना स्थान नहीं बदल सकता, न ही अपनी गति में परिवर्तन ला सकता है, बिना बाहिरी शक्ति की सहायता के।

इस पर भी वर्तमान युग के नास्तिक वैज्ञानिक यह मानने को तैयार नहीं कि प्रकृति के अतिरिक्त कोई आत्म तत्त्व है जो इस जगत् में गति उत्पन्न कर रहा है। ये जीवित प्राणी में और उसके शव में अन्तर का कारण नहीं बता सकते। यह इन वैज्ञानिकों में बुद्धि तत्त्व के अभाव के ही कारण है।

ऐसा प्रतीत होता है कि वे संसार में हो रही घटनाओं का होना तो अनुभव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करते हैं, परन्तु उन घटनाओं में कारण नहीं समझ सके। इसे समझना बुद्धि का काम है। इन्द्रियों से अनुभव करना तो मन का काम है। इन्द्रियों से प्राप्त ज्ञान मन में संचित होता है। उस ज्ञान के आधार पर कार्य वे मन के भरोसे ही कर सकते हैं, परन्तु किसी घटना में 'क्यों' का उत्तर तो बुद्धि ही दे सकती है। और वर्तमान वैज्ञानिकों में इसी की न्यूनता प्रतीत होती है।

इन्द्रियाँ बाहिरी संसार का ज्ञान प्राप्त कर मन को दे देती हैं। उस ज्ञान का अर्थ, उसका स्रोत और उसके काल तथा दिशा इत्यादि का ज्ञान तो बुद्धि ही पता कर सकती है। किसी घटना में कारण बुद्धि ही बता सकती है। बुद्धि का विशेष कार्य है अनुमान लगाना। न्यूटन के इस सिद्धान्त के प्रतिपादन करने के उपरान्त भी इसे मानने में संकोच नहीं होना चाहिए था कि अवश्य कोई ऐसा तत्त्व है जो चेतन है और गति की दिशा, इसका काल और स्थान का निश्चय करता है।

यही बात, जो न्यूटन ने आज से तीन सौ वर्ष पूर्व कही थी, ब्रह्मसूत्रों में आज से पाँच सहस्र पूर्व कही गई थी। प्रकृति में गति उत्पन्न करने के लिए किसी आत्मतत्त्व की आवश्यकता होती है। ब्रह्मसूत्र में कहा है कि प्रकृति अपना स्थान और दिशा विना आत्मतत्त्व की सहायता के बदल नहीं सकती।

हमारा मत है कि वर्तमान युग के वैज्ञानिक बुद्धि के अभाव के कारण ही नास्तिक हैं। अन्यथा यह तो मानना ही पड़ता कि पृथिवी जैसा बड़ा पिण्ड, जो लगभग सोलह सौ मील प्रति सैकण्ड की गति से चल रहा है, वह अवश्य किसी महान् शक्तिवान् से चलाया गया है।

बुद्धि का अभाव ही वर्तमान युग के वैज्ञानिकों के द्वारा सृष्टि-रचना के विषय में कुछ जानने में बाधक है।

एक बार यह जान लिया जाए कि सृष्टि का रचने वाला कोई ज्ञानवान तत्त्व है तो फिर विकासवाद जैसे अयुक्त सिद्धान्त को मानने में कोई कारण नहीं रह जाता। साथ ही यह मानने में कोई बाधा नहीं रहती कि प्रारम्भिक काल में भी बुद्धिमान प्राणी उत्पन्न हो सकते थे।

एक अन्य बात भी है। यदि हम प्राणी में आत्मा का होना मान लें तो प्राणी द्वारा निर्माण किया इतिहास न तो उद्देश्यहीन रह जाता है न ही उन्नति अथवा ह्रास की ओर जाता हुआ होने में किसी प्रकार की असम्भवता होगी।

अतः इतिहास की खोज में नास्तिक्य बाधक हुआ है। यह हमारा निश्चित मत है कि भौतिकवाद इतिहास की खोज में बाधक हो रहा है और श्रेष्ठता, बुद्धिशीलता तथा व्यवहार में नियमों (ऋतों) के पालन करने में बाधक दिखाई देता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अध्याय दो

: १ :

भारतवर्ष की ऐतिहासिक अन्वेषणों में भूल

भारतवर्ष के इतिहासज्ञों की इतिहास-लेखन की एक विधि थी। विदेशी इतिहासकार एक दूसरी विधि से इतिहास लिखते रहे हैं। इन दोनों विधियों में अन्तर है। इस अन्तर के विषय में हम आगे चलकर लिखेंगे। यहाँ हम यह बताना चाहते हैं कि विदेशी लेखक जब भारत का इतिहास ढूँढने लगे, तो उनको अपनी विधि के अनुसार लिखा हुआ इतिहास नहीं मिला। अतः उन्होंने समझा कि भारतीयों को इतिहास लिखना नहीं आता था और यहाँ का इतिहास कुछ है भी नहीं।

इन लेखकों ने बाइबल में से तो इतिहास ढूँढ लिया, परन्तु ये भारत में पहुँचकर किसी ऐसी पुस्तक की खोज में लग गये जैसी इंग्लैण्ड में 'Life of King Henery the VIII' (राजा हैनरी अष्टम का जीवन चरित्र) थी, अथवा 'Reign of Queen Elizebath' (महारानी एलिजबेथ का राज्य-काल) है।

ऐसी पुस्तक यहाँ मिली नहीं। इससे उन्होंने यह मान लिया कि भारतीयों को इतिहास लिखने का ढंग आता ही नहीं था। अतः वे अपने ढंग से खोज करने लगे।

इंग्लैण्ड के प्राचीन निवासी तो असभ्य थे, वे लिखना-पढ़ना जानते नहीं थे। विन्सैन्ट चर्चिल अपनी पुस्तक A History of the English Speaking People Vol. I (Bantam edition, July 1963) के पृष्ठ ३ पर लिखते हैं :

> .....Brittania was the prime centre of the Druidical religion, which, in various forms and degrees, influenced profoundly the life of Gaul and Germany. "Those who want to make a study of the subject," wrote Caesar, "generally go to Britain for the purpose." The unnatural principle of human sacrifice was carried by the British Druids to a ruthless pitch.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(ब्रिटेन ड्राइडिकल मत का मुख्य केन्द्र था। इस मत ने जर्मनी और गाल पर कई प्रकार से और कई सीमाओं तक प्रभाव डाला था। 'जो इसका अध्ययन करना चाहते हैं', सीज़र ने कहा था, 'वे इसके लिए ब्रिटेन जाते हैं। ब्रिटिश ड्राइड बहुत बड़े स्तर पर मनुष्य-बलि देते थे।)

अतः भारत के इतिहास की खोज का ढंग वह नहीं हो सकता था जो ब्रिटेन का था। भारत के लोग बहुत ही प्राचीन काल से लिखना-पढ़ना जानते थे। इनके प्राचीन ग्रन्थ भी मिलते हैं। यह ठीक है कि मुसलमानी काल में बहुत से ग्रन्थ नष्ट कर दिये गये। इस पर भी, अभी भी पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हैं। उनसे भारत के इतिहास का बहुत अच्छा अनुमान लग सकता था। परन्तु योरुपीय लेखकों ने भारतीय ग्रन्थों में खोज करने के स्थान, पत्थर पर खुदे लेखों, मुद्राओं और विदेशी लेखकों के लेखों में भारत का इतिहास खोजना आरम्भ कर दिया।

हमारा यह अभिप्राय नहीं कि इतिहास के ये स्रोत अवांछनीय हैं और उनसे सहायता नहीं लेनी चाहिए। इस पर भी हमारा दृढ़ मत है कि भारत के इतिहास का मुख्य स्रोत रामायण, महाभारत, ब्राह्मण-ग्रन्थ हैं। इसके पश्चात् प्रचलित लोक-गाथाएँ हैं। तब जाकर कहीं यहाँ के शिला-लेख और राज्य-मुद्राएँ आती हैं और सबसे अन्तिम स्तर पर विदेशी पर्यटकों के लेख हो सकते हैं।

विदेशीयों का ज्ञान, वे कितने ही वर्ष इस देश में क्यों न रहे हों, उतना पूर्ण नहीं हो सकता, जितना कि देशी लेखकों का होता है। उदाहरण के रूप में अलबरूनी ने जो कुछ तत्कालीन भारत के विषय में लिखा है, वह बहुत अच्छा होते हुए भी, कभी-भी पूर्ण और सर्वथा सत्य नहीं हो सकता। अलबरूनी पंजाब के कुछ उत्तर-पश्चिमी क्षेत्रों में ही रहा और वहां के कुछ लोगों से ही मिला। इस कारण उसके अधूरे ज्ञान की तुलना में हम तत्कालीन भारतीय लेखकों के लेखों को प्राथमिकता ही देंगे।

"इन विदेशी लेखकों की अनर्गल बातों के एक-दो उदाहरण देना चाहते हैं। मैगस्थनीज़ यूनान का रहने वाला था। यह आज से लगभग दो सहस्र वर्ष पूर्व भारत में आया था। ऐसा कहा जाता है कि उसकी एक पुस्तक के कुछ टूटे-फूटे उद्धरण मिले हैं और उन उद्धरणों को संकलित कर उनका अनुवाद 'श्वेन बैक' ने प्रकाशित किया है। इन उद्धरणों में एक स्थान पर लिखा है कि मैगस्थनीज़ सैल्यूकस का राजदूत बनकर सैण्ड्राकोट्स के दरबार में और उसकी राजधानी पालीब्रोथ्रा में रहा है। वह विलुप्त पुस्तक, जिसके कुछ उद्धरण ही मिले हैं, उस नगर में बैठकर लिखी गयी थी।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस वक्तव्य का अर्थ एक अंग्रेज़ ने यह लगाया है कि मैगस्थनीज़ चन्द्रगुप्त की राजधानी पाटलिपुत्र में आकर रहा था। इस अंग्रेज़ी लेखक का नाम है, 'सर विलियम जोन्स'। उसने सैण्ड्राकोट्स को चन्द्रगुप्त और पालिबोथ्रा को पाटलिपुत्र का अपभ्रंश माना है। ये जोन्स साहब रायल एशियाटिक सोसायटी के मन्त्री रहे हैं।

कुछ अन्य प्रमाणों से पता चलता है कि सैल्यूकस का राज्य ईसा पूर्व सन् ३२२ में था। केवल मात्र इस प्रमाण के आधार पर यह लिख दिया गया है कि चन्द्रगुप्त मौर्य भी ईसा पूर्व ३२२ के लगभग हुआ था।

भारतीय प्रमाणों से यह सिद्ध होता है कि चन्द्रगुप्त मौर्य का राज्यारोहण-काल विक्रम पूर्व १४४५ अथवा ईसा पूर्व १५०२ है। दोनों गणनाओं में बहुत बड़ा अन्तर है। इसमें कारण है सर जोन्स की यह मिथ्या कल्पना कि सैण्ड्राकोट्स शब्द चन्द्रगुप्त मौर्य का अपभ्रंश है।

मैगस्थनीज़ भारत में आया होगा। वह भारत के किसी नगर और किसी राजा के दरबार में रहा होगा, परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि वह नगर पाटलिपुत्र और वह राजा चन्द्रगुप्त मौर्य नहीं था। यह सम्भव है कि सैण्ड्राकोट्स चन्द्रगुप्त शब्द का अपभ्रंश हो, परन्तु वह सैण्ड्राकोट्स मौर्य नहीं था और न ही वह पालिब्रोथ्रा पाटलिपुत्र है जो आज पटना के नाम से विख्यात है। हमारे इस कथन का प्रमाण मैगस्थनीज़ की पुस्तक के उद्धरणों में से ही मिलता है।

इस पुस्तक में लिखा है कि एक डायनुशस नाम का व्यक्ति पश्चिम से भारत में आया था। उसी के वंश में एक हेराक्लीज़ नाम का राजा हुआ है। वह साधारण मनुष्यों से बल-बुद्धि में बड़ा था और उसने बहुत-सी स्त्रियों से विवाह किया था तथा बहुत-से पुत्र उत्पन्न किये थे। इस हेराक्लीज़ ने बहुत से नगर बसाए, जिनमें सबसे बड़ा पालिब्रोथ्रा था।

इसी पुस्तक में एक अन्य स्थल पर लिखा है कि हैराक्लीज़ से सैण्ड्राकोट्स तक १३८ पीढ़ियां हुई हैं। एक अन्य स्थान पर लिखा है कि पालिब्रोथ्रा नगर गंगा और इराना-बोअस नदी के संगम से २०० मील ऊपर की ओर स्थित है।

श्री एम० डी० अन्नविल्ले का मत है कि इराना-बोअस यमुना नदी का नाम है। इससे तो यह सिद्ध होता है कि सैण्ड्राकोट्स चन्द्रगुप्त मौर्य नहीं था। चन्द्रगुप्त मौर्य तो अपना वंश चलाने वाला स्वयं था। वह किसी वंश की १३८ अथवा १३९वीं पीढ़ी में उत्पन्न नहीं हुआ था। साथ ही पाटलिपुत्र पालिब्रोथ्रा भी नहीं था। पाटलिपुत्र किन्हीं दो बड़ी नदियों के संगम से २०० मील ऊपर बसा हुआ नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर विलियम जोन्स की उक्त कल्पना के उपरान्त अशोक के नाम के कुछ शिला-लेखों से यह सिद्ध करने का यत्न किया गया है कि उन शिला-लेखों को लिखवाने वाला अशोक मौर्य था और उन पर लिखे कुछ राज्यों के नाम यूनानी राज्यों के हैं। इस प्रकार यह सिद्ध करने का यत्न किया गया है कि अशोक उन राज्यों के समकालीन था।

यह बात भी युक्ति-विहीन है। सर्वप्रथम, यह सिद्ध नहीं हो सका कि वे शिला-लेख अशोक मौर्य के हैं। न ही यह सिद्ध हो सका है कि वे नाम यूनानी राज्यों के हैं।

यह बात लिखी हुई मिलती है कि उदयन ने, जो दर्शक का पुत्र था, तैंतीस वर्ष राज्य कर अपने अभिषेक से चार वर्ष उपरान्त गंगा के दक्षिण-तट पर कुसुमपुर (पाटलिपुत्र) नामक नगर बसाया।

वायुपराण में इस प्रकार लिखा है—

उदायी भविता तस्मात् त्रयस्त्रिंशत् समा नृपः ॥
स वै पुरवरं राजा पृथिव्यां कुसुमाह्वयम्
गङ्गाया दक्षिणे कूले चतुर्थेऽब्दे करिष्यति ॥[1]

(कुसुमपुर, पुष्पपुर, पाटलि-ग्राम, पाटलिपुत्र पर्यायवाचक हैं।)

इस बात के प्रमाण अन्यत्र भी मिलते हैं। ब्रह्माण्ड पुराण, पाद ३, अध्याय ७४ श्लोक १३२ में भी उक्त उल्लेख है।

विदेशी पर्यटकों के लेखों से, यहाँ के इतिहास में उलझन ही पड़ी है। इस प्रकार का एक अन्य उदाहरण दिया जाता है। चीनी पर्यटक ह्वेन स्यांग ने हर्षवर्धन के पिता प्रभाकरवर्धन और उसके भाई राज्यवर्धन को भी कन्नौज का राजा बताया है। इसके स्पष्ट प्रमाण इतिहास में मिलते हैं कि वे दोनों स्थानेश्वर के राजा थे।

इसी प्रकार के कई अन्य उदाहरण प्रस्तुत किये जा सकते हैं, जिनसे विदेशी पर्यटकों के लेखों पर लिखा इतिहास अविश्वसनीय कहा जा सकता है। हमारा कहना है कि भारतवर्ष का इतिहास भारतवर्ष में उपस्थित एवं उपलब्ध प्रमाणों पर लिखा जाना चाहिये।

मेगास्थनीज़ के उक्त भ्रम-मूलक लेख से भारत का पूर्ण इतिहास ही विकृत हो गया है। बहुत-सी बातें ईसा सम्वत् से आगे-पीछे हो गयी हैं।

---

1. इस विषय में विस्तार से पढ़िये गोरखपुर से छपे महाभारत के परिशिष्ट में पं० इन्द्र नारायण द्विवेदी का लेख (वर्ष ३, अंक ११, पृष्ठ १०९-१३५)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह ठीक है कि भारतवर्ष का प्राचीन इतिहास उस शैली पर नहीं लिखा गया, जिस पर आज के इतिहास लिखने वाले लिख रहे हैं। इसमें कारण है। यह कारण हम आगे चलकर विस्तार से लिखेंगे। साथ ही यह भी ठीक है कि असंख्य प्राचीन पुस्तकें बौद्ध और मुसलमान राजाओं की मूर्खता के कारण विनष्ट हो गयी हैं। इस कारण प्राचीन ग्रन्थों से इतिहास खोज निकालने के लिए अति परिश्रम की आवश्यकता है। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं लेना चाहिये कि विदेशी ढंग पर इतिहास-निर्माण सुगम कार्य है अथवा अधिक तथ्यपूर्ण है। विदेशी ढंग और भारतीय प्रमाण दोनों भ्रम-मूलक हो सकते हैं। इस पर भी जब दोनों में भिन्नता आये तो भारतीय प्रमाण सत्य के अधिक समीप माने जाने चाहियें।

विदेशी शैली से इतिहास संकलन करने वालों के दुर्बल आधारों का एक और उदाहरण दिया जा सकता है—

A New History of Indian People, Vol. VI में गुप्त साम्राज्य का वर्णन है। इस पुस्तक में श्री रमेशचन्द्र मजुमदार M. A., Ph. D., P. R., A. S. B. तथा अनन्त सदाशिव अल्तेकर M. A. LL.B; D. Litt. लिखते हैं—

> "With the accession of Samudra Gupta, our knowledge of the political history becomes fuller and more precise. This is due to a large number of records, engraved on stones and copper-plates during the reign of this monarch."

इसी पुस्तक के इसी पृष्ठ पर, कुछ ही पंक्तियाँ आगे चलकर लिखा है—

> "Of Samudra Gupta himself we possess two records on stone and two on copper. The first two bear no date, but the others are dated respectively 5 and 9. The genuineness of these two dated copper plates has been doubted by many."

इन उद्धरणों के अर्थ इस प्रकार हैं—

(१) समुद्रगुप्त के राज्यारोहण के समय से भारत के राजनीतिक इतिहास का हमारा ज्ञान अधिक विस्तृत और ठीक हो जाता है। यह इस कारण है कि इसके राज्यकाल में पत्थर और ताम्र-पत्रों पर बहुसंख्या में लेख अंकित किए गए हैं।

इस 'बहुसंख्या' की व्याख्या अगले उद्धरण में लिखी है।

(२) समुद्रगुप्त के अपने दो लेख पत्थर पर खुदे मिलते हैं, और दो ताम्र-पत्रों पर। इनमें दो पर तिथि नहीं लिखी और दो (ताम्र-पत्रों) पर सम्वत् ५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और ६ लिखा है। इन दो ताम्र-पत्रों की, जिन पर सम्वत् लिखे हैं, सच्चाई पर बहुत लोग सन्देह करते हैं।

देखिए, कितने दुर्बल आधार पर इतिहास लिखा जा रहा है। इन उदाहरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि वर्तमान काल के इतिहास-लेखक अपने लिखे इतिहास को किन स्रोतों पर लिख रहे हैं। एक राजा के, दो पत्थर पर लेख और दो ताम्र-पत्र पर लेखों के आधार पर, इतिहास लिखा जा रहा है। उन चार प्रमाणों में भी दो संदिग्ध हैं और दो पर तिथि ही नहीं। लेखक इन्हें more fuller and precise (अधिक मात्रा में और ठीक-ठीक) मानते हैं। इन प्रमाणों के अतिरिक्त पुराणादि ग्रन्थों से उपलब्ध सामग्री को तो ये देखना भी नहीं चाहते।

: २ :

वर्तमान सरकार भी अंग्रेज़ी सरकार के मार्ग पर

हमने यह सिद्ध करने का यत्न किया है कि भारत के इतिहास को विकृत करने में ईसाई और यहूदी मतावलम्बी मुख्य कारण हैं। वे यह सहन नहीं कर सकते कि ईसा और मूसा से ऊपर कोई अन्य व्यक्ति दिखायी दे। न ही वे कभी यह मान सकते हैं कि उनकी बाइबल में जो सृष्टि की उत्पत्ति की तिथि लिखी है वह गलत है। भारत के इतिहास के सत्यान्वेषण से यही होने वाला था। यह उनको रुचिकर प्रतीत नहीं हुआ।

हमने यह भी उल्लेख किया है कि भारत के इतिहास को विकृत करने में ब्रिटिश शासकों का भी निश्चित उद्देश्य था। वे यह प्रकट करना चाहते थे कि भारत में सभ्यता और श्रेष्ठता अंग्रेज़ी राज्य के कारण ही आयी है। वे भारतीय जनता के मन पर यह अंकित करना चाहते थे कि भारत में अंग्रेज़ी राज्य ईश्वर की देन के रूप में आया है।

दुःख के साथ कहना पड़ता है कि वर्तमान स्वराज्य सरकार भी अंग्रेज़ी शासकों अथवा ईसाई पादरियों के दुःसाहस को चालू रख रही है। इसमें कारण यह प्रतीत होता है कि वर्तमान शासक उन गुरुओं द्वारा शिक्षित हैं, जो भारत की निन्दा करने में अपना लाभ मानते थे। अतः शासक वर्ग भी अपने गुरुओं की भाँति ही वास्तविक ज्ञान से रहित और प्राचीन भारत के ज्ञान तथा वैभव को अरुचिकर मानने वाला है। अंग्रेज़ और योरुपीय कूटनीतिज्ञों के ढाई सौ वर्ष के पिलाये विष से संचित मस्तिष्क वाले भारतीय आज शासक बन गये हैं, और वे इसी मार्ग को ठीक समझ रहे हैं, जो मार्ग विदेशी शासकों ने जाति को दासता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के बन्धनों में जकड़ने के लिए निर्माण किया था।

वर्तमान शासकों के इतिहास को विकृत करने में योगदान के दो निम्न-लिखित उदाहरणों से हमारे उक्त कथन की प्रामाणिकता सिद्ध हो जायेगी। यह निश्चय है कि वर्तमान शासन भी भारत के इतिहास को विकृत करने में सिर-तोड़ यत्न कर रहा है और सत्य इतिहास के प्रकट होने में बाधाएँ खड़ी कर रहा है।

स्वराज्य के आरम्भ से लेकर सन् १९५९ तक मौलाना आज़ाद भारत के शिक्षा-मन्त्री रहे। वे ही सांस्कृतिक विषयों के भी मन्त्री थे। वे अपने मन्त्रित्व-काल में सदा उन विद्वानों के मार्ग में बाधा बने रहे, जो प्राचीन ढंग पर खोज करने में संलग्न थे। ये महानुभाव सदा उन विद्वानों को ही बढ़ावा देते रहे, जो अंग्रेज़ी काल में इतिहास और सांस्कृतिक विषयों के विशेषज्ञ माने जाते थे और जो भारत की निन्दा करने में विदेशियों के सहायक रहे थे।

मौलाना आज़ाद की हिन्दी तथा संस्कृत-विरोधी नीति तो सर्वविदित है ही। जब तक वे भारत के शिक्षा-मन्त्री रहे, हिन्दी टाइप-राइटर का 'की-बोर्ड' निश्चय नहीं हो पाया। उनके विभाग का पूर्ण प्रभाव हिन्दी भाषा को अपना स्थान लेने में बाधक बना रहा। सबसे बड़ी हास्यास्पद बात यह रही कि हिन्दी भाषा में ज्ञान-विज्ञान के ग्रन्थ लिखाने का कार्य मुसलमानी संस्थाओं को ही दिया जाता रहा है।

इतिहास की खोज में भी उन विद्वानों को ही लगाया गया, जो भारत के प्राचीन वाङ्मय से सर्वथा अनभिज्ञ और उस पर अविश्वास रखते थे।

सन् १९४८ के लगभग मौलाना आज़ाद ने एक शिक्षा आयोग नियुक्त किया। इस आयोग के सदस्यों में दो अंग्रेज़ थे तथा अन्य सदस्य अंग्रेज़ी छाप के भारतीय सदस्य थे। इन लोगों को अणु मात्र भी ज्ञान नहीं था कि शिक्षा के उद्देश्य क्या हैं तथा विद्यार्थियों में सदाचार तथा ब्रह्मचर्य की महिमा का कुछ महत्त्व भी है। ये लोग भारत को योरुपीय ढर्रे पर अग्रसर करने में ही सम्मति दे सकते थे और यही कुछ उन्होंने किया भी।

इसी काल में मौलाना आज़ाद ने यह योजना प्रस्तुत की, कि वेदकाल से आरम्भ होने वाले भारतीय दर्शन-शास्त्र का इतिहास, भारतीय शासन की ओर से प्रकाशित किया जाये। यह कार्य भी वेद, दर्शनशास्त्रादि ग्रन्थों के अंग्रेज़ी में अनुवादों को पढ़ने वालों के हाथ में दिया गया। ये लोग वेदों से जैमिनी पर्यन्त ग्रन्थों को मिथिकल (कल्पना) मानने वाले थे।

सन् १९५० के नवम्बर मास की ८ तारीख के हिन्दुस्तान टाईम्ज़ में एक समाचार छपा—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिल्ली में 'नैशनल इंस्टिच्यूट आफ़ साइंस इन इंण्डिया' (भारतस्थ विज्ञान के जातीय संस्थान) द्वारा एक सभा बुलायी गयी है। इसमें युनेस्को (Unesco) के साउथ-एशिया को-ऑपरेशन कार्यालय की सहायता है। इस सभा को भारत के शिक्षा-मन्त्री मौलाना आज़ाद का आश्रय प्राप्त है।

इस सभा में भारत के प्रतिनिधि डाक्टर मजुमदार ने कहा था—

> Dr. R. C. Majumdar emphasized the necessity of distinguishing between empirical knowledge and scientific knowledge based on observations followed by systematized and classified conclusions.

डा० मजुमदार ने अनुभवजन्य और वैज्ञानिक ज्ञान, जो निरीक्षण और व्यवस्थित एवं श्रेणीबद्ध परिणामों पर आधारित हो, में अन्तर करने की आवश्यकता पर बल दिया था।

श्री अल्तेकरजी भी इस सभा में उपस्थित थे। इन दोनों महानुभावों के Scientific knowledge based on observations etc. का एक उदाहरण हम पिछले अध्याय में दे चुके हैं।

श्री अल्तेकर ने इस सभा में निम्न काल-क्रम रखा था—

> The table placed among others, the origin of Rigveda as between 2000 and 1500 B. C., of old Upanishads from 800 to 500 B. C., of Charaka 100 A. D., of Vedanga Jyotisha, as 500 B. C., Dharmasutras from 600 to 200 B. C. and of Mahabharta, Manusmriti and Ramayana between 200 B. C. and 200 A. D.

उस तालिका में ऋग्वेद के आविर्भाव को दो सहस्र तथा पन्द्रह सौ वर्ष ई० पू० के बीच, उपनिषदों को ८०० और ५०० वर्ष ई० पू० के बीच, चरक को १०० वर्ष ई० पश्चात्, वाङ् ज्योतिष को ५०० वर्ष ई० पू०, धर्म सूत्रों को ६०० से २०० वर्ष ई० पू० तथा महाभारत, मनुस्मृति व रामायण को २०० वर्ष ई० पश्चात् का बताया है।

ये तिथियाँ भारतीय परम्पराओं के अनुसार सर्वथा गलत हैं, परन्तु मौलाना आज़ाद और अन्य भारतीय शासकों को ये दो विद्वान् ही उपलब्ध हो सके। ये लोग अंग्रेज़ इतिहास-लेखकों को परमात्मा का अवतार मानते थे।

विद्या भवन द्वारा लिखित The History and Culture of the Indian People के सम्पादन के लिए भी उक्त विद्वान ही मिले। विद्या भवन के संस्थापक श्री के० एम० मुन्शी हैं और उनके इस भवन द्वारा लिखित इतिहास के प्रथम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाग के सम्पादक हैं श्री आर० सी० मजुमदार, जिन्होंने इस पुस्तक में रामायण इत्यादि को Traditional History और Events of pre-historic age लिखकर अपनी अज्ञानता का ही प्रदर्शन किया है। वे भारतीय इतिहास लेखन-शैली से अनभिज्ञ ही सिद्ध हुए हैं।

इसी पुस्तक की भूमिका में मुन्शीजी लिखते हैं—

In the past, Indians laid little store by history.

(प्राचीन काल में भारतीय इतिहास पर बल नहीं देते थे।)

यह कथन भी इतिहास लिखने के भारतीय ढंग से अनभिज्ञता ही प्रकट करता है।

हमारा मत है कि आधुनिक पद्धति बहुधा गप्पों और कल्पनाओं से भरी पड़ी है। उसे वैज्ञानिक कहना विज्ञान का शत्रु बनना है।

विद्या भवन की उक्त पुस्तक में विदेशीय इतिहास-लेखकों का ही अनुकरण किया गया है। वास्तव में श्री मजुमदार से किसी अन्य बात की आशा भी नहीं की जा सकती थी।

स्वराज्य के शासकों की अभारतीय प्रवृत्ति रखने का एक उदाहरण हम और देना चाहते हैं। उक्त विद्वानों को चुनौती देने वाले एक विद्वान् पण्डित भगवद्दत्त का एक वक्तव्य हम नीचे दे रहे हैं। उस पर किसी प्रकार की टीका-टिप्पणी किए बिना हम इतना ही लिखेंगे कि पं० भगवद्दत्त अनेक ग्रन्थों के रचयिता तथा दयानन्द महाविद्यालय लाहौर के भूतपूर्व अनुसन्धान केन्द्राध्यक्ष थे। दिल्ली में पंजाब विश्वविद्यालय के कैम्प कॉलेज में प्राध्यापक थे और पंजाब विश्वविद्यालय के 'फ़ैलो' थे। आप लिखते हैं—

'सन् १९४८ जून मास की २८ तारीख को मैं श्री डा० राजेन्द्र प्रसाद जी से मिला। इस मिलने का प्रयोजन विशेष था। वे (डा० राजेन्द्र प्रसाद) Peoples History of India के प्रकाशन की योजना के संचालक थे। डाक्टर जी से जो वार्तालाप हुआ, उसका सार निम्न पत्र से ज्ञात हो जाएगा। यह पत्र उक्त भेंट के तीन-चार दिन बाद लिखा था।

पत्र इस प्रकार है—

आदरणीय महामान्य विद्वद्वर प्रधान जी!

आपके साथ इतिहास-विषयक जो वार्ता २८-६-४८ की सायं को हुई थी, उसमें जो आदेश आपने दिया था, तदनुसार निम्नलिखित परमावश्यक बातें संक्षिप्त रूप में लिखी हैं। आशा है, आप इस पर विचार करके निर्णय से मुझे शीघ्र अवगत करेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस समय भारतीय इतिहास लिखने के चार यत्न भारत में हो रहे हैं।

१. आपके द्वारा Peoples History के रूप में ;

२. इण्डियन हिस्टरी कांग्रेस द्वारा ;

३. श्री मुन्शी द्वारा ;

४. मेरे द्वारा।

ये चारों स्वयं को निष्पक्ष और सत्य मार्ग का अन्वेषी कहते हैं। इनमें प्रथम दोनों प्रयास लगभग सदृश प्रयत्न हैं। श्री मुन्शी जी का प्रयत्न कुछ अन्य प्रकार का है। मेरे इतिहास में तो भारतीय परम्परा की सत्यता का दिग्दर्शन है। इस प्रकार ये यत्न तीन प्रकार के हैं। इनमें मत-विभिन्नता बहुत अधिक रहेगी। पुराने काल में विवादास्पद विषयों का निर्णय मित्र-व्यवहारयुक्त वाद में होता था। महान् सम्राट् ऐसे वादों का प्रबन्ध करते थे। चीनी-यात्री ह्वेन सांग के यात्रा-विवरण में ऐसे कई वादों का इतिहास मिलता है। वर्तमान युग में आपका स्थान वही है, जो पुरातन काल में सम्राटों का था। यदि आप ऐसे वाद का प्रबन्ध न करेंगे, तो महान् हानि होगी। जब हम सबका ध्येय एक है, तो ऐसे आयोजन से लाभ ही होगा। लेखों द्वारा मनुष्य को अपने निर्बल पक्ष का उतना ज्ञान नहीं होता, जितना वाद में हो जाता है। अतः आप इसका कोई उपादेय मार्ग अवश्य निकालें।

यह काम अक्तूबर से दिसम्बर तक किसी मास में १५ दिन में हो सकता है।

कुछ विद्वान् न्यायकर्त्ताओं की भी नियुक्ति करें। वे इतना मात्र घोषित करते रहें कि अमुक विषयों का उत्तर नहीं बना। उनके इतने कथन मात्र से इतिहासज्ञ उन विषयों का उत्तर निकालने के लिये यत्नशील रहेंगे। उस वाद के लिये थोड़े-से विषयों का संकेत मैं नीचे करता हूँ।

(१) भारत युद्ध घटना सत्य थी अथवा नहीं ? भारत का युद्धकाल कब था ? महाभारत ग्रन्थ कृष्ण द्वैपायन रचित है या नहीं ? इसके पाठान्तर और प्रक्षेप। शैक्सपियर के ग्रन्थों में पाठान्तर और प्रक्षेप होने पर भी वह कल्पित नहीं माना जाता।

(२) शौनिक ऋषि का काल। भारत युद्ध के लगभग ३०० वर्ष पश्चात्। उस समय कैसा पुराण संकलन हुआ ?

(३) पुराणों का प्रद्योत-वंश, मागध प्रद्योत-वंश था, उज्जयिनी का प्रद्योत वंश नहीं। इस विषय में रैपसन और उनके अनुगामियों के मत की आलोचना।

(४) तथागत बुद्ध का काल।

(५) पुरातन जैन वाङ्मय में महावीर स्वामी का काल।

(६) शक काल का आरम्भ कब हुआ ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(७) विक्रम काल का आरम्भ।

(८) गुप्त-काल का आरम्भ।

(९) सिद्धसेन दिवाकर और संवत् प्रवर्तक विक्रम का काल। इनके अतिरिक्त निम्नलिखित साहित्यिक ग्रन्थों के विषय पर कुछ विचार आवश्यक होगा।

(१०) वेद, वेदों के चरण, तथा शाखा ग्रन्थ और ब्राह्मण ग्रन्थों का संकलन कब हुआ ? इत्यादि।

वार्त्तालाप में आपने एक बहुमूल्य बात कही थी, अर्थात् इतिहास में अपना पक्ष लिखकर दूसरे पक्षों का वर्णन अवश्य करना चाहिए। यदि यह बात मान ली जाए, तो बहुत कल्याण हो सकता है। फिर वाद बहुत सरल हो जाएगा। पर आप द्वारा इतिहास का जो षष्ठ भाग प्रकाशित किया गया है, उसमें इस बात का जान-बूझकर वर्णन नहीं किया गया कि चन्द्रगुप्त (द्वितीय) का एक नाम साहसांक था तथा उसका विक्रम् संवत् से सम्बन्ध था। इस प्रकार की और बातें भी बतायी जा सकती हैं। अस्तु ! आशा है, जिस भाव से प्रेरित होकर मैंने यह प्रार्थना की है, आप उस पर पूरा ध्यान देकर इस काम को सफल बनायेंगे।

आप कृपया ध्यान रखें कि यह काम राजनीतिक या सामाजिक इतिहास में ही अपेक्षित नहीं, प्रत्युत दर्शनशास्त्र, संस्कृत साहित्य, आयुर्वेद, वैदिक, वाङ्मय आदि के इतिहासों में भी उपकारी होगा। इन सब विषयों के प्रतिपादन से भावी में कुछ-न-कुछ ऐक्य उत्पन्न होगा। इस समय जर्मन विचार का अनुगामी होकर जो सब-कुछ लिखा जा रहा है, उसका परीक्षण होगा।

कृपा बनाए रखें—
भगवद्दत्त।"

डाक्टर जी ने पहले ही कह दिया था कि उन्हें इस विषय में सफलता की आशा नहीं। फिर भी मुझे अपने सुझाव लिखित रूप में उन्हें दे देने चाहिएँ।

'इस लिखित पत्र का कोई उत्तर मेरे पास नहीं आया। मैंने जान लिया कि डॉक्टर जी सफल नहीं हुए। इतने मात्र से प्रकट हो गया कि पाश्चात्य मतों का अनुकरण करने वाले लेखक साक्षात् विचार-विनिमय से बहुत भयभीत होते हैं। सत्य भारतीय इतिहास के शीघ्र सर्वत्र प्रचलित होने का अन्तिम यत्न व्यर्थ गया। मैंने वृहद् इतिहास के शीघ्र प्रकाशन का संकल्प दृढ़ कर लिया है।'

यह तो हम नहीं कह सकते कि डॉ० राजेन्द्र प्रसाद जैसे प्रतिष्ठित व्यक्ति, जो, इतिहास लिखाने में विशेष रुचि रखते थे, इस कार्य में सफल क्यों न हुए ? इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर भी भगवद्दत जी के उक्त कथन से एक बात स्पष्ट होती है कि पाश्चात्य पद्धति के विद्वान् झूठ और भ्रम का अम्बार खड़ा कर रहे हैं। वे पहले अंग्रेज़ी सरकार के आश्रय पर जीवित थे, अब काले अंग्रेजों की सरकार पर आश्रित हैं।

जहाँ तक भारत के इतिहास और संस्कृति का प्रश्न है, वर्तमान सरकार उतनी ही विदेशी है जितनी कि अंग्रेज़ी सरकार थी। पण्डित भगवद्दत जी यह चाहते थे कि भारत का इतिहास मुख्यतया भारतीय धर्म-शास्त्रों, महाभारत, रामायण तथा पुराणों के आधार पर तैयार किया जाये। विदेशियों के कथन तथा लेख दूसरी श्रेणी के प्रमाण हो सकते हैं। शिला-लेख, मुद्रायें तथा पुराने नगरों के भग्नावशेष तो बहुत ही घटिया प्रमाण हैं। इससे कुछ भी सिद्ध नहीं होता। अथवा जो कुछ भी हम चाहें इससे सिद्ध कर सकते हैं।

शासन का सत्यान्वेषण में प्रमाद, अंग्रेज़ी काल की परम्पराओं को अभी तक चालू रखने में सहायक हो रहा है। यह ठीक है कि ढोंग और फ़रेब चिरकाल तक नहीं रह सकता और ईसाई एवं यहूदियों का खड़ा किया असत्य का अम्बार जर्जर होकर गिरेगा। परन्तु योरुपीय विद्वानों का तथा उनकी परम्परा में चलने वाले भारतीय विद्वानों का प्रभाव हिन्दुस्तानी विश्वविद्यालयों के विद्वानों पर इतना गहरा है कि उसे मिटाने के लिये बहुत ही प्रबल झकझोर देने की आवश्यकता होगी।

एक उदाहरण यहाँ देकर हम पुस्तक के मुख्य विषय पर आयेंगे। डा० बुद्ध प्रकाश, पी-एच०-डी०, डी० लिट०, जो कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय के विद्वान् प्राध्यापक, भारतीय विद्या संकाय और सामाजिक विज्ञान संकाय के 'डीन' हैं, श्री आर०सी० मजुमदार और श्री अनन्त सदाशिव अल्तेकर से अधिक बुद्धिशील और योरुपियन लेखकों से सतर्क प्रतीत होते हैं। इस पर भी योरुपियन लेखकों की छाप इतनी प्रबल है कि वे अपनी शिक्षा से उत्पन्न पूर्वग्रहों से बाहर नहीं निकल सके।

आपने एक पुस्तक 'भारतीय धर्म एवं संस्कृति' लिखी है। इस पुस्तक में आपने बहुत परिश्रम किया प्रतीत होता है और कई योरुपीय लेखकों की बातें रद्द की हैं। इस पर भी जो भूलें इस पुस्तक में आपने की हैं, उनका एक नमूना हम पाठकों के सम्मुख रखना चाहते हैं। आप अपनी पुस्तक के पृष्ठ ८ पर, वेदों के लिखे जाने के स्थान के विषय में, लिखते हैं—

'यदि वेद के अपने साक्ष्य को लिखा जाये तो यह स्पष्ट हो जाता है कि आर्य ऋषि आरम्भ से ही सप्तसिन्धु-प्रदेश में रहते थे और इसे देव-निर्मित देश समझते थे। एक मन्त्र में सरस्वती को सम्बोधन करते हुए ऋषि कहते हैं, सरस्वती! हमें धन-धान्य से सम्पन्न करो। हमें अपने से दूर न करो, न अपने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दुग्ध से वंचित करो। हमारा सख्य और सत्कार स्वीकार करो। हम आपसे हट कर किसी अन्य देश में न जायें। (ऋ० ६।६१।१४)'

यह जो कुछ डा० बुद्ध प्रकाश ने वेद मन्त्र के नाम पर लिखा है, वह वेद मन्त्र में नहीं है। वेदों में भूतल के नदी-नालों के नाम नहीं हैं। विद्वान् प्रोफेसर साहब ने यह क्यों लिखा ? स्पष्ट है कि इन्होंने किसी योरुपियन लेखक का वेदों का अनुवाद पढ़ा है अथवा सायणादि बौद्ध विचार से प्रभावित पण्डितों का अनुवाद पढ़ा है। प्राचीन ग्रन्थों में प्रोफ़ेसर साहब की पहुँच प्रतीत नहीं होती। यदि होती तो वे योरुपियन विद्वानों की अन्य भ्रान्त बातों के त्यागने की भाँति इसको भी ग्रहण न करते।

कदाचित् प्रोफ़ेसर साहब को विदित नहीं कि वेदार्थ करने में यास्काचार्य कृत निरुक्त की साक्षी अकाट्य है। यदि आपने उस ग्रन्थ में सरस्वती का अर्थ पढ़ा होता तो आप यह न लिखते कि ऋषि सरस्वती से धन-धान्य माँगते थे और सरस्वती से अभिप्राय है सरस्वती नदी।

सरस्वती शब्द का अर्थ करते हुए यास्काचार्य इस प्रकार लिखते हैं—

वाङ्नामान्युत्तराणि सप्तपञ्चाशत्। वाक्कस्मात्। वचेः। तत्र सरस्वतीत्येतस्य नदीवद् देवतावच्च निगमा भवन्ति। तद्यद् देवतावदुपरिष्टात्तद् व्याख्यास्यामः। अथैतन्नदीवत्॥

(निरुक्त २।२३)

वाक् शब्द के सत्तावन रूप कहे गये हैं। वाक् के उन सत्तावन रूपों में एक रूप सरस्वती है। वेदों में सरस्वती शब्द का प्रयोग देवतावत् और नदीवत् आया है।

इस कथन से दो बातें स्पष्ट होती हैं। एक, सरस्वती वाक् (वाणी) का पर्याय है। इस वाणी के अर्थ वाली सरस्वती का दो अर्थों में प्रयोग हुआ है। एक देवतावत् और दूसरे नदीवत्, अर्थात् नदी की भाँति (नदी नहीं) बहने वाली।

प्रोफ़ेसर साहब ने ऋ० ६।६१।१४ का उल्लेख किया है। इस मन्त्र का अर्थ हम यास्काचार्य के उक्त वक्तव्य से आगे चलकर करेंगे। परन्तु यास्क स्वयं इसी सूक्त के एक अन्य मन्त्र का अर्थ भी करते हैं। मन्त्र है—

इयं शुष्मेभिर्बिसखा इवारुजत्सानु गिरीणां तविषेभिरूर्मिभिः।
पारावतघ्नीमवसे सुवृक्तिभिः सरस्वतीमा विवासेम धीतिभिः॥

(ऋ० ६।६१।२)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थ है—

इयं शुष्मैः शोषणैः। शुष्ममिति बलनाम। शोषयतीति सतः। बिसं बिस्यतेर्भेदनकर्मणः। वृद्धिकर्मणो वा। सानु समुच्छ्रितं भवति। समुन्नुन्नमिति वा महद्भिरूर्मिभिः। पारावतघ्नीं पारावारघातिनीम्। पारं परं भवति। अवारमवरम्। अवनाय सुप्रवृत्ताभिः (शोभनाभिः) स्तुतिभिः सरस्वतीं (नदीं) कर्मभिः परिचरेम।

(यह बलवती, कमल नालों को उखाड़ देने की भाँति ऊँचे पर्वत शिखरों को उखाड़ फेंकती है। अपनी बलवान् तरंगों से दोनों किनारों को तोड़ देती है, यह सुखा देती है अपने बल से। ऐसी सरस्वती की हम स्तुति करें।)

यहाँ सरस्वती वाणी के रूप में है। जब वाणी अबाध चलती है तो सब विघ्न-बाधाओं को मार्ग से हटा देती है। यहाँ सरस्वती से किसी भूतल की नदी का अभिप्राय नहीं है। कारण यह कि सरस्वती का एक गुण लिखा है 'शोषयतीति सतः।' अपने बल से सुखा देती है। कोई पार्थिव नदी सुखाती नहीं, वरंच गीला करती है। वाणी में यह शक्ति है कि यह पाखण्ड का शोषण करती है।

जिस मन्त्र का प्रोफ़ेसर साहब ने उल्लेख किया है, उसके अर्थ यास्क की प्रक्रिया के अनुसार करें, तो इस प्रकार बनेगा। मन्त्र है—

सरस्वत्यभि नो नेषि वस्यो माप स्फरीः पयसा न आ धक्।
जुषस्व नः सख्या वेश्या च मा त्वत्क्षेत्राण्यरणानिगन्म॥

(६।६१।१४)

अर्थ है—

हे सरस्वती (वेदवाणी), हमें अति समृद्ध ऐश्वर्य को प्राप्त करा। हमें विनाश मत कर। पुष्टिकारक ज्ञान से हमें थोड़ा भी दग्ध न होने दे। प्रवेश होने योग्य मित्रभाव से हमें प्रेमपूर्वक स्वीकार कर। उससे रहित होकर हम नाशवान् क्षेत्रों (देहों) में न जायें।

सरस्वती शब्द का प्रयोग वेदवाणी के लिए हुआ है।

वेद में नदी शब्द का प्रयोग भी वाणी के लिए हुआ है। निरुक्त कहता है—

नदीनामान्युत्तराणि सप्तत्रिंशत्। नद्यः कस्मात्। नदना (इमा) भवन्ति। शब्दवत्यः।.....

(निरुक्त २।२४)

आगे नदी के लिए सैंतीस शब्द हैं। नद्यः क्यों? नदना—नाद वाली अर्थात् शब्द करने वाली होती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थात् नदी सैंतीस वस्तुओं के नाम हैं। वे सैंतीस पदार्थ इस कारण नदी कहे जाते हैं क्योंकि वे शब्द करते हैं।

अब देखिये कि सरस्वती भी नदीवत् है, अर्थात् वाणी शब्द करती है। इस कारण सरस्वती (वाक्) नदी है।

आज भी विश्वविद्यालयों में ऐसे लोग हैं जो वेद-शास्त्रों और भारतीय इतिहास के विषय में योरुपीय शैली का अनुकरण करते हैं।

यहाँ दो शब्द पुरातत्व के विषय में लिख देना उचित है। पुरातत्व विद्या का अर्थ है कि पुरानी खुदाइयों में निकली वस्तुओं को देख, उनका अध्ययन कर इतिहास की खोज करना।

यह एक संदिग्ध विद्या है। जब यह किसी लिखित प्रमाण का समर्थन करती है तब तो ठीक है, परन्तु यह विद्या स्वतन्त्र रूप में प्रमाण नहीं हो सकती।

उदाहरण के रूप में शाहजहाँ के काल में प्राचीन कुल के किसी व्यक्ति के पास पृथ्वीराज के काल की मुद्राएं रखी हों और उसी के साथ शाहजहाँ के काल की स्वर्ण मुद्राएँ भी हों; दोनों एक ही पात्र अथवा स्थान पर किसी भूकम्प में दब गयी हों। कालान्तर में खुदाई के समय दोनों मुद्राएँ इकट्ठी निकलें तो यह सिद्ध नहीं हो जाता कि पृथ्वीराज और शाहजहाँ समकालीन थे।

ये दोनों समकालीन नहीं थे, क्योंकि हम अन्य लिखित प्रमाणों से ऐसा जानते हैं। यदि वे लिखित प्रमाण न होते अथवा उन प्रमाणों को हम अमान्य कर दें तो क्या इन दो प्रकार की मुद्राओं के एक ही स्थान से निकल आने से दोनों को समकालीन माना जाएगा?

हम एक और उदाहरण देते हैं। हस्तिनापुर की खुदाई में एक लकड़ी का टुकड़ा निकला है। कार्बन टैस्ट से यह अनुमान लगाया गया है कि वह टुकड़ा आज से तेईस सौ वर्ष पुराना है। इससे क्या यह सिद्ध हो गया कि हस्तिनापुर नगर में कौरव-पाण्डव आज से बाईस-तेईस सौ वर्ष पहले हुए थे? महाभारत इत्यादि को तो प्रमाण माना नहीं जाता। केवल पुरातत्व का यह कार्बन टैस्ट क्या प्रमाणित माना जा सकता है?

हस्तिनापुर दुष्यन्त के किसी पूर्वज ने बसाया था। अनुमान है कि दुष्यन्त से कई सहस्र वर्ष पूर्व। यह हस्तिनापुर बौद्ध-काल में भी यहाँ था। वह लकड़ी का टुकड़ा, जिस पर कार्बन टैस्ट किया गया है, इन सहस्रों वर्षों में किस समय वहाँ लगाया गया था, यह विद्या पुरातत्व नहीं बता सकती।

पुराने पदार्थ निर्जीव होते हैं। वे मुख से नहीं बोलते। इसी कारण उनसे अनुमान लगाने वाला अपने सीमित ज्ञान से और प्रायः पूर्वग्रहों के आधार पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुमान लगाता है।

अब मोहन्जोदड़ों की खुदाइयों की बात देख लीजिये। उनकी ओर संकेत करते हुए डॉक्टर बुद्ध प्रकाश अपनी पुस्तक के आरम्भ में ही लिखते हैं—

'पुरातत्त्व की दृष्टि से भारतीय धर्म और संस्कृति का विकसित रूप सबसे पहले सिन्धु-सरस्वती के क्षेत्र में मिलता है। हाल की खुदाई से स्पष्ट है कि ईसा से करीब तीन हज़ार वर्ष पहले बलूचिस्तान से पश्चिमी उत्तर प्रदेश तक और अफगानिस्तान से गुजरात और सौराष्ट्र तक एक महान् संस्कृति मौजूद थी जिसका विकास वैयक्तिक रूप से हुआ और जिसकी निजी विशेषताएँ हैं।...'

यह दृष्टि पुरातत्त्व नहीं देती, वरंच यह दृष्टि इन पुरानी खुदाइयों को देखने वाले के पूर्वग्रह से बनी है। वास्तव में डाक्टर साहब इस विषय पर आगे कुछ ऐसा लिखते हैं जिसको पढ़ने पर आपकी दृष्टि स्पष्टतया अशुद्ध प्रतीत होने लगती है। आप लिखते हैं—

'पूर्व में मेरठ ज़िले के आलमगीरपुर, बुलन्दशहर ज़िले के भटपुरा और मानपुर तथा गाजीपुर और बनारस ज़िलों के कुछ स्थानों तक इसके अवशेष मिलते हैं।...'

'उत्तर में अफ़गानिस्तान में मुन्दीगाक और नाद-ए-अली तक इसका फैलाव मालूम होता है और इसके परे यह ईरानी सस्कृति और तुर्कमेनिस्तान के नमाजगातेपे और कारातेपे की जीवन-शैलियों में घुल-मिल जाती है। दक्षिण में साबरमती के तट पर लोथल, नर्मदा के मुहाने पर मेहगाम और तेलोड, भदर नदी पर रोजाडी और अडकाट, किम नदी पर भगतराव, समुद्र तट पर सोमनाथ पाटण और रंगपुर और सूरत तक इसके निशान हैं और दक्षिण-पूर्व में घग्गर के किनारे, बीकानेर और बहावलपुर के इलाकों में, इससे सम्बन्ध रखने वाली अनेक बस्तियां हैं। इस विशाल प्रदेश में इस संस्कृति के विभिन्न स्तर शहरों, कस्बों और गाँवों के रूप में उभरे, जिनमें सिन्ध के लरकाना ज़िले का मोहन्जोदड़ो, पश्चिमी पंजाब के मोंटगुमरी ज़िले का हड़प्पा, पूर्वी पंजाब के अम्बाला ज़िले का रोपड़, राजस्थान के श्रीगंगानगर ज़िले का कालीबंगन और गुजरात में साबरमती के किनारे पर लोथल इसके प्रमुख केन्द्र थे। ये सभी नगर लगभग एक से नमूनों पर खड़े हुए और इनमें करीब-करीब एक-सा जीवन का तरीका चालू रहा।'

इस सबसे यह सिद्ध होता है कि पुरातत्त्वज्ञ जो भारतीय पुराणादि ग्रन्थों से अनभिज्ञ हैं, वे ही ऐसी बात कहते हैं जैसी इस अध्याय के आरम्भ में डाक्टर साहब ने कही है।

मध्य एशिया से लेकर बनारस और गाज़ीपुर तक एक ओर, कन्धार,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अफ़गानिस्तान से गुजरात और नर्मदा तक दूसरी ओर, एक सभ्यता तो थी। यह महाभारत से स्पष्ट है। यह प्राचीन आर्य सभ्यता थी। महाभारत काल से भी पहले की यह सभ्यता और संस्कृति बहुत पुरानी है। पुरातत्वज्ञों ने यह जो कुछ देखा वह तो ठीक, परन्तु जो कुछ उन्होंने समझा, वह अज्ञान-सूचक ही मानना होगा।

हमारा यह स्पष्ट मत है कि पुरातत्व कोई स्वतन्त्र-ज्ञान का स्रोत नहीं है। यह केवल समर्थक है।

एक बात यहाँ यह भी समझ लेनी चाहिए कि पुरातत्वज्ञ सभ्यता के विषय में तो बता सकते हैं, परन्तु संस्कृति के विषय में नहीं बता सकते। दोनों शब्द भिन्न-भिन्न अर्थ के वाचक हैं। खण्डहरों से सभ्यता का ही ज्ञान होता है, संस्कृति का नहीं।

सभ्यता रहन-सहन के साथ सम्बन्ध रखती है। संस्कृति मानसिक, बौद्धिक और आत्मिक विकास से सम्बन्ध रखती है। बड़े-बड़े नगरों, उनमें स्नानागारों, सड़कों और नालियों से सभ्यता का अनुमान तो लग सकता है, परन्तु वे लोग राक्षस थे अथवा देवता, इसका अनुमान इनसे नहीं लगता।

इसमें भी हमारा यही कहना है कि प्रोफ़ेसर साहब ने पुरातत्व के प्रसंग में संस्कृति का शब्द भूल से प्रयोग किया है। यह आपने योरुपीय लेखकों के पथानुगामी होने के कारण ही लिखा है।

: ३ :

विकासवाद

इतिहास की विकृति में दो सैद्धान्तिक कारण हैं। हमने यह लिखा है कि योरुपीय पद्धति पर इतिहास लिखने वाले भ्रामक इतिहास लिख रहे हैं। हमने यह भी लिखा है कि वर्तमान स्वराज्य सरकार भी, उन लेखकों द्वारा प्रसारित भ्रान्ति में सहायक हो रही है। इस भ्रान्ति में दो सैद्धान्तिक कारण हैं। इस समय योरुपीय विद्वान् मण्डली उन दो सैद्धान्तिक भूलों में पड़ी हुई, अपने भ्रान्त मार्ग को छोड़ने के लिये न तो उद्यत है, न ही वह छोड़ सकती है।

वर्तमान भारत के शासक भी तो उन्हीं सिद्धान्तों को मानने वाले हैं। अतः उनको अन्य कुछ भी करणीय प्रतीत नहीं होता। ये दो सैद्धान्तिक भूलें हैं—विकासवाद और भौतिकवाद।

इस अध्याय में हम विकासवाद के विषय में लिखेंगे। यद्यपि ये दोनों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिद्धान्त, अर्थात् विकासवाद और भौतिकवाद परस्पर आश्रित हैं, इस पर भी ये स्वतः स्वतन्त्र रूप में अपना-अपना पक्ष उपस्थित करते हैं। इस कारण हम दोनों का पृथक्-पृथक् वर्णन करना चाहते हैं।

भारतीय परम्पराओं के अनुसार ये दोनों वाद मिथ्या हैं। विकासवाद कोई सिद्धान्त नहीं है। यह अभी वाद (मत) मात्र ही है। अंग्रेज़ी में इसको 'थ्योरी' (theory) कहते हैं। 'थ्योरी' उस मत को कहते हैं, जिसके विषय में कोई निश्चयात्मक निर्णय न हो सका हो। सिद्धान्त उस मत को कहते हैं जिसके विषय में पूर्ण रूप से निश्चयात्मक निर्णय हो चुका है। विकासवाद (evolution theory) अभी एक वाद-मात्र है। परन्तु योरुप के सब विद्याओं के विद्वान् इस वाद को सिद्धान्त मान, इसका प्रयोग मानव के सब कार्यों पर करने लगे हैं और जो कुछ भी तथा जहाँ भी वाद के प्रतिकूल कुछ मिलता है, उसको बिना विचार के त्याज्य मान लिया जाता है। इतिहास के क्षेत्र में यही कुछ हो रहा है।

विकासवाद में अभी तक कुछ भी प्रमाणित नहीं। जिनको प्रमाण कहा जाता है, वे प्रमाण ही नहीं हैं। यही कारण है कि यह अभी वाद (theory) मात्र ही है। इस वाद पर भी इसको सत्य मानकर इतिहास में तो अनर्थ किया जा रहा है। संसार में घटने वाली प्रत्येक घटना पर विकासवाद के सिद्धान्त का प्रयोग कर सत्य को असत्य के रूप में और असत्य को सत्य के रूप में परिणित किया जा रहा है। भारत की प्राचीन महानता को असत्य और काल्पनिक माना जाता है। यह इस कारण कि वह महानता विकासवाद में 'फ़िट' नहीं बैठती।

उदाहरण के रूप में यदि कहीं यह लिखा मिले कि कुछ दिव्य व्यक्ति आकाश में विचरते थे, तो बिना इस विषय पर विचार किये, इस पर हंस दिया जाता है। कारण यह बताया जाता है कि विकासवाद के अनुसार वर्तमान युग प्राचीन युग से उन्नत होना चाहिये। प्राचीन उन्नत नहीं हो सकता।

अतः यह उचित समझा गया है कि पहले इस विकासवाद की सत्यता, प्रामाणिकता अथवा युक्ति-युक्तता पर विचार किया जाये।

विकासवाद का संक्षेप में रूप है सरलता से जटिलता की ओर, अविकसित अवस्था से विकसित अवस्था की ओर, अनुपयोगी से उपयोगी दिशा की ओर तथा अज्ञानता से ज्ञान की ओर संसार का चलना।

विकासवाद को दो भागों में बाँटा जा सकता है। एक है, एक-कोषाणु (uni-cellular) प्राणी से मनुष्य, जो एक अति जटिल प्राणी है, का निर्माण और दूसरा भाग है एक असभ्य अविकसित मस्तिष्क वाले मनुष्य से रूस और अमरीका के वैज्ञानिक का प्रादुर्भाव।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रथम भाग को दो शब्दों में कहा जाये तो वह है सरल रूप के जीवन से विषम रूप के जीवन की ओर प्रगति (Life from simple form to complex form)।

एक प्राणी का सरलतम शरीर अमीबा (amoeba) है। यह एक-कोषाणु जन्तु है। इस जन्तु का शरीर, लगभग एक गोलाकार कोषक (रखने) के समान है। इसमें तीन भाग होते हैं। एक है कोष्ठक की दीवार (cell-wall)। यह प्रायः दूसरे भाग से कड़ी होती है। यही इस प्राणी के शरीर का बाहरी रूप बनाती है। इस दीवार के भीतर एक प्रकार का अर्ध-तरल पदार्थ होता है। यह प्रोटोप्लाज़्म (proto-plasm) कहलाता है। इस अर्ध-तरल पदार्थ में कहीं-कहीं छोटे-छोटे वायु के बुदबुदे भी पाये जाते हैं। परन्तु यह प्राणी के शरीर का आवश्यक अंग नहीं होते। ये वायु के बुदबुदे संख्या तथा परिमाण में न्यूनाधिक होते रहते हैं। कभी ये नहीं भी होते। इस प्राणी के शरीर का तीसरा भाग एक पीत रंग का अधिक ठोस बिन्दु मात्र पदार्थ होता है जिसको न्यूक्लियस (neucleus) कहते हैं।

यह प्राणी स्वतन्त्रतापूर्वक अपने शरीर की आवश्यकताओं को पूर्ण करने की क्षमता रखता है। ऐसा माना गया है कि इसमें विकास होकर, अन्य सब जन्तु बने हैं। इस आरम्भिक कोषाणु की बनावट में तो अन्तर नहीं पड़ा। हाँ, ये कोषाणु स्वतन्त्र जीवन छोड़कर इकट्ठे रहने का स्वभाव बना बैठे हैं। और अब इकट्ठे रहते हुए इन्होंने जीवन-कार्य का परस्पर बँटवारा कर लिया है। इस बँटवारे से ही उन्नत तथा जटिल प्राणी का अस्तित्व बना है। एक उन्नत प्राणी में शरीर की गतियों के लिये, पाचनक्रिया के लिये तथा शरीर की रक्षा के लिये पृथक्-पृथक् कोषाणु समूह कार्य करने लगते हैं। प्राणी का एक आवश्यक कार्य है जनन क्रिया। इस क्रिया से एक प्राणी दूसरे प्राणी का निर्माण करता है। उन्नत प्राणियों में इस कार्य के लिये पृथक् कोषाणु-समूह नियत है।

यह कहा जाता है कि पहले एक-एक स्वतन्त्र कोषाणुओं से कोषाणु-समूह (colonics of cells) बने। इन समूहों में रहते हुए भी ये कोषाणु स्वतन्त्र जीवन रखते थे। बाद में इन कोषाणुओं ने संयुक्त-जीवन (corporate life) अपनाया अर्थात् भिन्न-भिन्न कोषाणु-समूह जीवन के भिन्न-भिन्न कार्यों में अपने को विशेष कार्यकर्त्ता (specialist) बनाने लगे। इससे प्राणी, जो आरम्भिक कोषाणुओं का समूह मात्र होता है और जिसमें कोषाणु-समूह ने भिन्न-भिन्न जीवनोपयोगी कार्य करने का स्वभाव बना लिया है, उन्नत हो गया माना जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह है विकास-प्रक्रिया का प्रथम अंग। विकास-प्रक्रिया का दूसरा अंग है मनुष्य, जो एक सर्वाधिक जटिल प्राणी है, का एक जंगली (वन-मानुषी) अवस्था से उठकर न्यूयार्क अथवा लन्दन व मास्को में रहने वाला सभ्य नागरिक बन जाना। प्रारम्भिक मनुष्य का मस्तिष्क तथा शरीर भी सरल बनावट का था। उसकी टांगें छोटी, बाँहें लम्बी, सिर छोटा, छाती और कमर झुकी हुई मानी गयी है और वर्तमान युग के उन्नत शरीर वाले मनुष्य की बनावट उससे भिन्न देखी जाती है।

यह है विकासवाद का दूसरा अंग।

विकासवाद के प्रथम प्रवक्ता डारविन नाम के एक व्यक्ति हुए हैं। लोग इस विकासवाद को विज्ञान-मूलक बताते हैं।

पहले हम विज्ञान का ही अर्थ लिखते हैं।

संस्कृत परिभाषा में तो विज्ञान आत्मा-परमात्मा-विषयक ज्ञान को कहते हैं। वास्तव में किसी भी वस्तु के विशेष ज्ञान को विज्ञान का नाम दिया गया है। वर्तमान प्रचलन में विज्ञान का पर्यायवाचक शब्द 'साइन्स' (science) है और वर्तमान साइन्स एक विशेष प्रकार से प्राप्त ज्ञान का नाम है। जब परीक्षण से इन्द्रियों तथा इन्द्रियों के उपयोग में आ सकने वाले उपकरणों द्वारा प्रत्यक्ष किये प्रमाणों से कुछ सिद्ध परिणाम निकाले जायें तो इस प्रक्रिया को साइन्स कहते हैं। इसमें प्रथम अंग है इन्द्रियां, द्वितीय अंग है उपकरण (apparatus), तृतीय है उपकरणों के प्रयोग का ढंग तथा उनसे निरीक्षण करने की क्षमता और अन्तिम अंग है उन उपकरणों से इन्द्रियों द्वारा जानी बातों पर विचार कर परिणाम निकालना। इस सब-कुछ करने पर भी, कोई सिद्ध बात विज्ञान-मूलक नहीं समझी जा सकती, जब तक कि उस बात के आधारभूत परीक्षण को पुनः दोहराकर वैसे ही परिणाम निकलते न देख लिये जायें।

उदाहरण के रूप में किसी परीक्षणकर्त्ता ने गन्धक के घोल में यशद (zinc) डालकर देखा कि एक प्रकार की वायु वेग से बनने और निकलने लगती है। यह वायु हाईड्रोजन (hydrogen) होती है। पीछे जब भी गन्धक के घोल में यशद डाला गया, हाईड्रोजन वायु ही निकलती देखी गयी। इससे यह सिद्ध होता है कि गन्धक के तेज़ाब में यशद डालने से हाईड्रोजन बन जाती है। यह घटना वैज्ञानिक मानी जाती है और इस वक्तव्य को विज्ञान-मूलक समझा जाता है।

जिस घटना को दोहराया नहीं जा सकता, उसको सिद्ध अर्थात् वैज्ञानिक सिद्धान्त नहीं माना जा सकता। बार-बार किसी घटना को देखकर एक धारणा बनती है। उस धारणा को अंग्रेज़ी में हाईपौथेसिज़ (hypothesis) कहते हैं। इस धारणा को सिद्ध करने के लिये परीक्षण किए जाते हैं। बहुत से परीक्षणों के कल्पित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कारण को वाद (theory) कहते हैं। जब तक कोई भी बात धारणा और वाद के स्तर पर रहती है, यह वैज्ञानिक नहीं मानी जाती। वही धारणा अथवा वाद एक वैज्ञानिक सिद्धान्त (scientific fact) माना जाता है, जब उस वाद की सत्यता बार-बार परीक्षणों से सिद्ध की जा सके।

इस कसौटी पर विकासवाद अभी वाद के स्तर से ऊपर नहीं आया। इसको अभी तक सिद्धान्त और वह भी वैज्ञानिक सिद्धान्त का पद प्राप्त नहीं हुआ। इस पर भी विकासवाद अनीश्वरवादियों को परमात्मा तथा आत्मा के अस्तित्व को न मानने में एक बहाना प्रस्तुत करता है। इस कारण इस असिद्धवाद को सिद्धान्त (सिद्ध हो चुकी बात) मानकर ये लोग पूर्ण जीवन-मीमांसा को उलट-पुलट करने में लग गए हैं। इसी आधार पर इतिहास को भी ग़लत करने का यत्न किया गया है।

विकासवाद के प्रथम क्रम में यह माना जाता है कि एक-कोषाणु प्राणी (uni-cellular) से बहु-कोषाणु प्राणी बना और कोषाणुओं के अपने-अपने कार्य की विशेषता (specialization) प्राप्त करने पर प्राणी अधिकाधिक उन्नत होता गया है। अर्थात् प्राणियों की एक जाति से दूसरी जाति का निर्माण हुआ। बाघ से कुत्ता बना, कुत्ते से बिल्ली बनी। इसी प्रकार बन्दर की किस्म के जन्तु से बनमानुष बना और बनमानुष से वर्तमान मनुष्य बन गया। ये परिवर्तन प्रकृति में संघर्ष का परिणाम होते हैं। संघर्ष में दुर्बल प्राणी (प्राणियों की जातियाँ) नष्ट हो जाते हैं और सबल प्राणी बच जाते हैं। ये संघर्ष भूख-प्यास और इन्द्रिय के सुखों के हेतु होते हैं। इन संघर्षों में दुर्बलों के स्थान पर सबलों के आ जाने को विकासवादियों ने प्रकृति के निर्वाचन (natural selection) का नाम दे दिया है।

विकासवाद के पूर्व भाग को संक्षेप में और सरल भाषा में लिखें तो यह इस प्रकार होगा—

प्राकृतिक पदार्थों का आदि और मूल पदार्थ ईथर (ether) है। उसमें तरंग उठना विद्युत्, प्रकाश, शब्द और गर्मी है। इसी के सूक्ष्मातिसूक्ष्म कणों को इलैक्ट्रोन (electron) कहते हैं। इन इलैक्ट्रोन के संघात से ही विद्युत अथवा शक्ति के रूप बने। शक्ति का स्थूल रूप ही मैटर (matter) है। मैटर तीन अवस्थाओं में दिखायी देता है, वायु, तरल तथा ठोस।

ईथर से उत्पन्न पदार्थ घनीभूत होकर और आकर्षानुकर्षण के नियम से चक्राकार गति में हो जाते हैं। कुछ समय में वही चक्र सूर्य हो जाता है। सूर्य में गर्मी और गति के कारण चक्राकार (rings) बन जाते हैं। तदनन्तर वे चक्राकार पृथक् होकर ग्रह बन जाते हैं। ग्रहों से इसी प्रकार उपग्रह उत्पन्न होते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस प्रकार के ग्रहों में एक हमारी पृथ्वी है। यह पृथ्वी पहले गर्म थी। धीरे-धीरे ठण्डी हुई। समुद्र बने, उनसे भूमि निकली और जीवन आरम्भ हुआ।

उक्त प्रक्रिया का घटन तो पृथ्वी के बाहर हुआ। इसको हम परीक्षण (experiment) में ला नहीं सकते। परन्तु भूतल पर जो कुछ हुआ, वह विकासवादियों के मतानुसार नीचे दिया जा रहा है। इसी में सन्देह है। उसी को हम अवैज्ञानिक, असिद्ध और केवल वाद मात्र कहते हैं।

पृथ्वी पर चेतन वस्तु उत्पन्न हुई और धीरे-धीरे बढ़ी। उससे पूर्व न वनस्पति थी और न ही जन्तु। इन दोनों को उत्पन्न करने वाली थी चेतना (life)। उससे एक शाखा अमीबा (एक-कोषाणु जीव) बन गया। अमीबा इतने बढ़े कि उनको खाने-पीने की कठिनाई होने लगी। इस कठिनाई को पार करने के लिये वे नाना प्रकार के प्रयत्न करने लगे। इन प्रयत्नों में जो शारीरिक बल और मानसिक अभ्यास से बलवान् थे, बच गये। वे फिर बढ़े। भोजन की तंगी के कारण संग्राम चलता रहा। समर्थ बचे और असमर्थ मारे गये। बचे हुए सदा कुछ भिन्न प्रकार के होते थे। इनमें भी वही क्रम चलता गया और बहुत काल के पश्चात् मरते-बचते तथा परिस्थितियों के अनुसार आकार-प्रकार बदलते-बदलते ये मछली, मेंढ़क, सर्प, पक्षी, गाय, बैल, बन्दर, वनमानुष और मानुष में विकास को प्राप्त हुए।

विकास के इस क्रम पर हमें सन्देह है और इसी को हम अवैज्ञानिक कहते हैं।

इसके आगे बनमानुष से मनुष्य, हबशी, रैड-इण्डियन, योरुपियन, भारतीय और चीनी बने। यह सब विकास परिस्थितियों से संघर्ष के परिणामस्वरूप है। विकास क्रम के इस भाग पर भी हमें सन्देह है और इसका भी कोई वैज्ञानिक प्रमाण नहीं है।

: ४ :

विकासवाद की अप्रामाणिकता

विकासवाद की सबसे प्रबल युक्ति है सब प्राणियों में वैसे ही जीवित कोषाणुओं का होना, जैसा अमीबा नाम का एक-कोषाणु-जन्तु है। उन्नत प्राणियों के (मनुष्य के भी) शरीर में वैसी ही दीवार, प्रोटो-प्लाज़्मस और न्यूक्लियस होते हैं, जैसे अमीबा में देखे जाते हैं। इससे विकासवादियों का अनुमान है कि सरलतम प्राणी, एक अमीबा और एक जटिल प्राणी (higher animal) में अन्तर यही है कि एक-कोषाणु वाले प्राणी मिलकर बैठ गये हैं और फिर परस्पर कार्य-विभाजन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर एक जटिल प्राणी बन बैठे।

इस अनुमान में कोई वैज्ञानिक प्रमाण नहीं है। इस वक्तव्य में छिद्र हैं और वे वैज्ञानिक ढंग से पूर्ण नहीं किए गए।

(१) उदाहरण के रूप में विकासवादी समझा नहीं सकते कि प्रथम जीव का निर्माण कैसे हुआ ? यह देखा जाता है कि जीव से ही जीव की उत्पत्ति होती है। अतः जब निर्जीव प्रकृति से ही सब-कुछ बना है, तो प्रथम जीव कहाँ से आया ? इसका उत्तर वैज्ञानिकों के पास नहीं है।

सरलतम प्राणी अमीबा लगभग सोलह रासायनिक तत्त्वों (chemical elements) का बना है। इसमें हाईड्रोजन, ऑक्सीजन और कार्बन मुख्य हैं। सबके सब रासायनिक तत्त्व जड़ हैं।

इन जड़ तत्वों का आज तक कोई ऐसा संयोग नहीं बनाया जा सका जो जीवन-युक्त अर्थात् चेतनामय हो। हम नित्य जीव का निर्माण प्राणी के द्वारा देखते हैं, परन्तु बिना प्राणी की सहायता के इसका निर्माण होता न देखा गया है, न ही कोई वैज्ञानिक ऐसा करके दिखा सका है।

(२) हम देखते हैं कि कुत्ते से कुत्ता, बिल्ली से बिल्ली और घोड़े से घोड़ा उत्पन्न होता है। यदि यह जटिल (उन्नत) प्राणी केवल मात्र कोषाणुओं का ही संग्रह होते, तो बहुधा यह हो जाता कि किसी जटिलतम जन्तु की सन्तान अर्ध-जटिल जन्तु हो जाती। ऐसा कभी होता नहीं। कभी अर्धनिर्मित सन्तान होती है तो वह जीवित नहीं रह सकती, मर जाती है।

(३) योनि से जाति होती है। एक योनि से उसी योनि का प्राणी उत्पन्न होता है। वर्तमान वैज्ञानिक भी प्राचीन वैज्ञानिकों की भांति, दो विभिन्न योनियों के संयोग से सन्तानोत्पत्ति का यत्न करते रहे हैं। यह कोई नवीन बात नहीं है। भारत में तो घोड़े और गधे से खच्चर उत्पन्न करने में सफलता भी मिली थी। प्राचीन ग्रन्थों के अध्ययन से यह भी प्रकट होता है कि अन्य वस्तुओं में भी ऐसे परीक्षण किये जाते थे। कलमी आम पैदा करने की बहुत पुरानी विद्या है। परन्तु यह प्रक्रिया विकासवाद का प्रमाण प्रस्तुत नहीं करती, प्रत्युत ये प्रमाण विकास-वाद का खण्डन ही करते हैं।

एक बात तो यह है कि जहाँ भी मिश्रित योनियों से जन्तु उत्पन्न होते हैं, वहाँ योनियों में समानता अत्यावश्यक है। गधा और घोड़ा प्रायः समान योनि हैं। गीदड़ और कुत्ता भी समान योनि हैं। बीज का आम और कलमी आम भी समान योनि हैं। गुलाब के फूलों में रंग और गंध में विभिन्नता योनि में भिन्नता प्रकट नहीं करती। यह तो सम्भव है कि नीबू और सन्तरे में पैबन्द लग जाए, परन्तु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह किसी ने करके नहीं दिखाया कि लोकाट और अमरूद में पैवन्द लग जाए, अथवा आम और सन्तरे में पैबन्द लग जाए।

इसके साथ यह भी देखा गया है कि मिश्रित योनि से उत्पन्न जन्तु आगे सन्तान उत्पन्न करने में असमर्थ होते हैं। गधे और घोड़े के संयोग से उत्पन्न खच्चर सन्तान उत्पन्न नहीं कर सकता। इसी प्रकार वे जीव, जो गीदड़ और कुत्ते की योनि मिश्रण से बनते हैं, वे आगे चलकर सन्तान उत्पन्न नहीं कर सकते। फल अथवा फूल जो मिश्रित योनि के होते हैं, उसके बीज पुनः जमकर पेड़ नहीं बनते। कलम से उनकी श्रेणी चलती है, बीज से नहीं।

कभी बीज से पेड़ बनता भी है, तो दो-चार पीढ़ियों में वह दुर्बल हो सन्तान पैदा करने में असमर्थ हो जाता है।

इससे यही सिद्ध होता है कि प्रकृति में योनि परिवर्तन नहीं होता। कहीं होता है तो वह सन्तानरहित होकर समाप्त हो जाता है अथवा एक-दो पीढ़ियों में समाप्त हो जाता है। किसी भी अवस्था में जहाँ कुछ भिन्नता रखने वाली योनियों के समागम से सन्तान होती है, वह अपनी पृथक् एक योनि चलाने में समर्थ नहीं होती। मिश्रित योनि की सन्तान, आगे सन्तान उत्पन्न करने में असमर्थ हो जाती है। वनस्पतियों में भी यह देखा गया है। वनस्पतियों में यह विलक्षणता देखी गयी है कि एक पेड़ की डाल दूसरे पेड़ से जुड़ जाती है। यह इस प्रकार जैसे किसी की नाक कट जाये तो दूसरे मनुष्य का एक मांस का लोथड़ा काटकर पहले की नाक पर जोड़ दिया जाये। एक प्रकार के गुलाब के पेड़ की शाखा दूसरे प्रकार के गुलाब के पेड़ की डाल के साथ लगा देने से एक ही पेड़ पर दो रंग के अथवा दो गंधों के फूल उग पड़ते हैं। परन्तु उनके गुलाब के बीज गुलाब का वैसा पेड़ उत्पन्न करने की सामर्थ्य नहीं रखते।

यह तो यही सिद्ध करता है कि प्रकृति में योनि परिवर्तन का नियम नहीं। कुछ सीमा तक लगभग समान योनियों से मिश्रित सन्तान उत्पन्न की जा सकती है, परन्तु वह नवीन योनि बनाती नहीं।

ये परीक्षण विकासवाद का खण्डन करते हैं।

विकासवादी मानते हैं कि सब प्राणियों के जीवन के लक्षण समान हैं। अतः वे सब एक ही परिवार के सदस्य हैं। वे मानते हैं कि (क) सबके शरीर चेतन कोषाणुओं (living cells) से बने हैं। पेड़, पौधे, कृमि, पतंगे, मछली, साँप, छिपकली, बन्दर, रीछ, मनुष्य इत्यादि सब प्राणियों के शरीर, इन चेतन कोषाणुओं का संग्रह हैं। (ख) सब प्राणी भोजन लेकर, पचाकर उनको अपने शरीर का अंग बनाते हैं अर्थात् जीवित कोषाणुओं में परिवर्तित कर लेते हैं। (ग) स्वास्थ्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के लिये सब प्राणियों के प्रयत्न समान हैं। (घ) सबमें सन्तानोत्पत्ति का प्रकार और प्रक्रिया समान है।

इन समानताओं से यह मान लिया गया है कि सब एक ही पिता अमीबा (amoeba) की सन्तान हैं। यह मान्यता भी किसी दृढ़ प्रमाण अथवा परीक्षण पर आधारित नहीं है। उपर्युक्त सब गुण जीवन के हैं, शरीर के नहीं। जीवन-शक्ति समान है, परन्तु शरीर में समानता नहीं। अतः शरीरों की उत्पत्ति का एक ही स्रोत मानने में कोई कारण नहीं। जीवन शक्ति तो आत्मा के कारण है। आत्मा सबमें समान है। सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न ये आत्मा के लक्षण हैं। चेतनता का स्रोत आत्मा है। अतः यह सबमें समान है। आत्मा की समानता को प्रकट करने के लिये शरीर की बनावट में कहीं-कहीं समानता आ जाना स्वाभाविक ही है। इससे भी यही सिद्ध होता है कि भिन्न-भिन्न प्रकार के शरीरों की उत्पत्ति का एक ही स्रोत मानने की आवश्यकता नहीं।

भारतीय विज्ञान यह मानता है कि शरीर पंच-भौतिक है, परन्तु शरीर प्राणी नहीं है। सब शारीरियों के शरीर पंच-भौतिक होते हुए भी उनको एक ही योनि से उत्पन्न मानने में कोई कारण नहीं। पंच-भौतिक शरीर का निर्माण होने पर भी जब तक उसमें मन और आत्मा का संयोग न हो, तब तक प्राणी नहीं बनता। सब प्राणी समान नहीं, क्योंकि सब आत्मायें समान कर्मा नहीं हैं।

इसी बात को हम वर्तमान वैज्ञानिक भाषा में इस प्रकार कह सकते हैं। रासायनिक तत्त्वों (chemical elements) के संयोग से शरीर बनता है, परन्तु रासायनिक तत्त्व मिलकर प्राणी नहीं बना सकते। इन तत्त्वों के संयोग में जीवन-तत्त्व (आत्मा) के समावेश होने पर ही प्राणी बनता है। ये सब प्राणी समान नहीं। अतः यह एक ही योनि से उत्पन्न नहीं हुए। जहाँ शरीर भिन्न-भिन्न प्रकार के हैं, वहाँ आत्मा भी भिन्न-भिन्न होने से भिन्न-भिन्न प्रकार का कर्म करने वाली हैं।

जीवन प्रवाह में समानता है, परन्तु प्राणी केवल आत्मा (जीवन तत्त्व) भी नहीं। दोनों के संयोग को ही प्राणी मानते हैं। यह संयोग योनि के भीतर होता है और आत्मा उसी शरीर में प्रवेश करता है जो उसके कर्मफल के अनुकूल होता है।

आत्म-तत्त्व वर्तमान वैज्ञानिकों के उपकरणों द्वारा परीक्षण का विषय नहीं बन सका। जीवन-तत्त्व को ये लोग अपनी टैस्ट ट्यूब में निर्माण नहीं कर सके। यही कारण है कि ये प्राणी निर्माण नहीं कर सके। ये योनि के भीतर भी किसी भिन्न योनि से प्राणी नहीं बना सके और योनि के बाहर भी इसका निर्माण नहीं कर सके।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अतएव विज्ञान-वेत्ता भली भाँति जानते हैं कि विकासवाद, वाद मात्र ही है और रहेगा। यह सिद्धान्त का पद ग्रहण नहीं कर सकता।

इस स्थान पर विकासवाद के विषय में एक वैज्ञानिक का मत लिखकर यह अध्याय हम समाप्त कर रहे हैं। डाक्टर अगासिज़ (Agassiz) अपनी पुस्तक 'Principles of Zoology' में लिखते हैं—

> There is manifest progress in the succession of being on the surface of the earth. This progress consists in an increasing similarity of the living fauna, and among the vertebrates, especially in their increasing resemblance to man.....But this connection is not the consequence of a direct lineage between the fauna of different ages. There is nothing like parental descent connecting them. The fishes of the palaeozoic age are in no respect the ancestors of the reptiles of the secondary age nor does man descend from the mammals which preceded in the Tertiary age. The link by which they are connected is of a higher and immaterial nature and Himself, whose aim in forming the earth, in allowing to undergo successively all the different types of animals which have passed away, was to introduce man upon the surface of our globe. Man is the end towards which all the animal-creation has tended from the first appearance of the Palaeozoic fishes.[1]

अर्थात्—पृथ्वी पर उत्पन्न होने वाले, विना हड्डियों के जन्तुओं और मनुष्य आदि हड्डीदार जन्तुओं में एक समान ही उन्नति होती देखी जाती है। परन्तु इस समानता का यह अर्थ नहीं कि एक प्रकार के प्राणी दूसरे प्रकार के प्राणियों से विकसित हुए हैं। आदिम कालीन मत्स्य ही सर्पणशील प्राणियों के पूर्वज नहीं हैं और न ही मनुष्य ही अन्य स्तनधारियों से, जो टरशरी युग में थे, पैदा हुआ है। भिन्न-भिन्न प्राणियों में सम्बन्ध एक उच्च अभौतिक तत्त्व (परमात्मा) के कारण है। परमात्मा का उद्देश्य इस सब-कुछ परिवर्तन करने का, मनुष्य को यहाँ उत्पन्न करना था। मनुष्य वह अन्त है जिसकी ओर पूर्ण प्राणी जगत् चल रहा है।

यदि इस वक्तव्य के साथ हम अपनी ओर से इतना और जोड़ दें कि यह जो कुछ हो रहा है प्राणी के दृष्टिगोचर एक जीवन में ही नहीं होता, प्रत्युत

1. Page 205-206.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जन्म-जन्मान्तर में होता है तो उक्त कथन शत-प्रतिशत भारतीय जीवन-मीमांसा के अनुसार ही माना जायेगा।

इस पर भी यह तो स्पष्ट है कि यह प्राणी शास्त्र का विद्वान् विकासवाद को उस रूप में नहीं मानता, जिस रूप में अन्य वैज्ञानिक मानते हैं।

इस अध्याय में यही सिद्ध किया गया है कि विकासवाद कोई सिद्धान्त अर्थात् 'सिद्ध बात' नहीं है। अनेक यूरोपियन वैज्ञानिक भी इस विचार को ग़लत मानते हैं।

: ५ :

विकासवाद के कुचक्र का खण्डन

इस पर भी कुशिक्षित वैज्ञानिक इसको परमसिद्ध सिद्धान्त मान, अपनी-अपनी कल्पना के घोड़े दौड़ाने लगे हैं। सबसे दोषपूर्ण बात यह हो रही हैं कि इस अयुक्ति-संगत, असिद्ध सिद्धान्त को लेकर मानव-इतिहास को भी विकृत किया जा रहा है। वे इतिहासज्ञ, जो प्राणी-शास्त्र का अ-आ भी नहीं समझते, विकास-वाद के आधार पर मानव-इतिहास की कल्पना कर यह मानने लगे हैं कि आदि काल में मनुष्य जंगली जानवरों की भाँति पेड़ों पर रहता था। इस जंगली-अवस्था में वह मन, बुद्धि और शरीर से भी अविकसित दशा में था। वह उत्तरोत्तर उन्नति करता हुआ वर्तमान अवस्था में ज्ञान-विज्ञानयुक्त, उन्नत मन और बुद्धि वाला प्राणी बन गया है।

मानव-इतिहास पर इस विकासवाद की छाया पड़ जाने से यह माना जाने लगा है कि प्राचीन धर्म तथा ज्ञान-विज्ञान आज से निम्न कोटि का था। उसमें किसी प्रकार की भी श्रेष्ठता दिखाने का यत्न, मूर्खता और पक्षपात का द्योतक हो गया है।

इस विकासवाद के विचार से आज का मानव और उसका ज्ञान, प्राचीन मानव और उसके ज्ञान से अति श्रेष्ठ माना जाने लगा है। यह सब असत्य है। प्रमाण इसके विरुद्ध जाते हैं। भाषा के विषय में तो निर्विवाद रूप में कहा जा सकता है कि यह विकसित होकर उन्नत नहीं हुई, प्रत्युत अवनति और अधोगति की अवस्था को पहुँची है।

भाषा के दो अंग हैं—बोलने वाली तथा लिखने वाली। अर्थात् बोली तथा लिपि। पहले बोली की बात पर विचार करें तो उससे ही यह स्पष्ट हो जायेगा कि प्राचीन भाषायें योगात्मक और विभक्ति-युक्त स्थिति से अवनत होकर अब एकाक्षरात्मक हो गयी हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संस्कृत भाषा अति प्राचीन भाषा है और यह योगात्मक भी है और विभक्ति-युक्त भी। उदाहरण के रूप में 'गच्छामि', 'गच्छसि', इत्यादि शब्दों को देखा जा सकता है। ये शब्द विभक्तियुक्त हैं। हिन्दी में इन भावों को प्रकट करने के लिये 'जाता हूँ', तथा 'जाता है', शब्द हैं। हिन्दी एकाक्षरात्मक है। इसी प्रकार ग्रीक और लैटिन विभक्तियुक्त भाषायें हैं और उनसे बनने वाली अंग्रेज़ी भाषा एकाक्षरात्मक है। अब संस्कृत, हिन्दी और अंग्रेज़ी की तुलना करें तो प्राचीन से नवीनतम की ओर 'प्रगति' का स्वरूप स्पष्ट हो जायेगा।

संस्कृत	हिन्दी	अंग्रेज़ी
करोति	वह कर रहा है	He is doing
गृहाणाम्	घरों का	of (the) houses
गमिष्यति	वह जाना चाहता है	He desires to go

यही बात सब स्थानों पर पायी जायेगी। प्राचीन से नवीन भाषा कम और कम संश्लेषणात्मक (compact) होती जाती है। यह विचार का विषय है कि ऐसा क्यों होता है? संश्लेषणात्मक उन्नति का लक्षण है अथवा अवनति का? यह विकास का लक्षण है अथवा ह्रास का? हमारा यह मत है कि आदि-काल में मनुष्य अधिक बुद्धिशील, अधिक उन्नत मस्तिष्क वाला और अधिक स्मृतिशील था। तत्कालीन भाषा का योगात्मक और विभक्तियुक्त होना इसका प्रमाण है। आज का मानव बुद्धि में तथा स्मरणशक्ति में अपेक्षाकृत हीन हो गया है। इस कारण इसकी भाषा भी विश्लेषणात्मक (विखण्डित) होती जाती है। भाषा का ह्रास मनुष्य की मस्तिष्क सम्बन्धी शक्तियों का ह्रास प्रकट करता है।

यही बात लिपि की है। लिपि के भी दो अंग हैं। एक वर्णमाला और दूसरी लिपि। लिपि तो लिखने के साधनों पर निर्भर करती है। यह मनुष्य के शरीर और शक्तियों के विकसित तथा अविकसित होने से सम्बन्ध नहीं रखती। साधनों का सम्बन्ध आवश्यकताओं से है। आवश्यकताओं में वृद्धि शरीर, मन और बुद्धि में विकास के लक्षण नहीं, प्रत्युत उनके अविकसित होने के लक्षण हैं।

इस बात को तनिक विस्तार से बताने की आवश्यकता है। आवश्यकताओं में वृद्धि मन और बुद्धि के उन्नत होने के लक्षण नहीं। उदाहरणस्वरूप एक डैण्डी-शैण्डी (टीपटाप रखने वाला व्यक्ति) नेक-टाई, कालर के बिना बाज़ार में निकलना अनुचित अथवा अशिष्टता मानता है। इसके विपरीत एक फ़िलॉसफ़र (मीमांसक) इनको अनावश्यक वस्तुयें समझता है। वह पहनने के लिये कुर्ता, पायजामा पर्याप्त मानता है। अब विचार करें कि नैक-टाई कालरों की आवश्यकता और फिर उनके बनाने के लिये कारखानों का आविष्कार उन्नत मन के लक्षण हैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथवा अवनत मन के ? इसी प्रकार अन्य आवश्यकताओं के विषय में कहा जा सकता है। तनिक गम्भीरतापूर्वक विचार किया जाये तो आवश्यकताओं में न्यूनता ही विकसित मन के लक्षण प्रतीत होंगे।

यही बात लिपि की है। लिपि अक्षरों के आकार को कहते हैं। इसका सम्बन्ध आवश्यकताओं और उनकी पूर्ति के साधनों के आविष्कार के साथ है। यदि आविष्कृत उपकरणों का विचार छोड़ दें तो प्राचीन लिपि अधिक उपयुक्त प्रतीत होने लगेगी।

यही बात वर्णमाला की है। प्राचीनतम भाषा संस्कृत की वर्णमाला अधिक-से-अधिक बोले जा सकने वाले स्वरों का प्रातिनिध्य करती है और फिर उनका श्रेणीबद्ध किया जाना उनके आविष्कार करने वालों के उन्नत मस्तिष्क का ही सूचक है। स्वर पृथक् हैं और व्यंजन पृथक्। स्वर सोलह हैं तथा क्रमबद्ध हैं। अ-आ साथ-साथ हैं, इ-ई साथ-साथ। इसी प्रकार अन्य स्वर हैं।

व्यंजन अक्षरों का भी क्रम इनके आविष्कार करने वाले के उन्नत मस्तिष्क का सूचक है। क ख ग घ ङ गले से बोले जाने वाले व्यंजन एक स्थान पर रख दिये गये हैं और दन्तव्य त थ द ध न पृथक् रखे गये हैं। इसके विपरीत नितान्त आधुनिक भाषा (most modern language) की वर्ण संख्या और उनका क्रम देखें तो एक अविकसित मस्तिष्क की उपज ही समझी जायेगी। स्वर केवल पाँच हैं a, e, i, o, u। शेष स्वरों के लिये, दो-दो तीन-तीन स्वरों का संयोग करना पड़ता है। व्यंजन भी कम हैं। कई ध्वनियों को लिखने के लिये दो-दो तीन-तीन व्यंजन मिलाने पड़ते हैं। उदाहरण के रूप में च के लिये (ch) दो व्यंजनों का प्रयोग किया जाता है। छ के लिये (chh) तीन का।

इसके साथ ही अंग्रेज़ी भाषा की वर्णमाला में अक्षरों का क्रम तो सर्वथा युक्ति-रहित है। यह आरम्भ होती है (a) एक स्वर से। तत्पश्चात् आता है एक व्यंजन (b)। फिर (a, b, c, d) चार वर्ण लिखने के बाद पुनः एक स्वर आ जाता है (e)।

कहने का अभिप्राय यह है कि प्राचीन से नवीन विकास (improvement) का लक्षण नहीं, प्रत्युत ह्रास (deterioration) का लक्षण है। यह क्यों है ? यह स्पष्ट रूप में मानव शक्तियों (बुद्धि, मस्तिष्क, स्मरण-शक्ति) के ह्रास का सूचक है। मनुष्य में विकास नहीं हो रहा, ह्रास हो रहा है।

विकासवादियों का कहना है कि स्वाभाविक चुनाव (natural selection) से अथवा योग्यतम के·····(Survival of the fittest) के सिद्धान्त से अधिकाधिक उन्नत और जटिल प्राणी बचे रहते हैं और दुर्बल तथा अयोग्य मृत्यु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के ग्रास हो जाते हैं। भाषा के अध्ययन से तो उलटी बात प्रतीत होती है।

भाषा का घना सम्बन्ध ज्ञान से है। भाषा का आविष्कार ही मानव ज्ञान को दूसरों तक पहुँचाने के लिये हुआ है। यदि प्राचीन काल की भाषा आज की भाषाओं से समुन्नत थी तो निःसन्देह तब का ज्ञान भी आज के ज्ञान की अपेक्षा समुन्नत रहा होगा।

इस प्रकार हमने विकासवाद, जिसको मानकर इतिहासज्ञों ने इतिहास को विकृत करने की कमर कसी हुई है, उसको मिथ्या सिद्ध कर दिया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अध्याय तीन

सृष्टि उत्पत्ति और भारतीय परम्परायें

: १ :

जगत् रचना और वर्तमान विज्ञान

पिछले परिच्छेद में वर्तमान युग के इतिहासकारों की मिथ्या दृष्टि के विषय में बताया जा चुका है। अब हम इतिहास के विषय में भारतीय दृष्टिकोण बताना चाहते हैं। इसके लिए हम सृष्टि-आरम्भ को पहले लेंगे। सृष्टि आरम्भ (अर्थात् सृष्टि की आयु) भी एक विवाद का विषय बना हुआ है। पृथ्वी की आयु और इस पर मानव की सृष्टि होने का काल क्या है? इस पर भी भारतीय मत वर्तमान युग के विद्वानों से सर्वथा पृथक् है और इसके साथ-ही इतिहास लिखने की शैली का सम्बन्ध है।

यह सिद्ध है कि पृथ्वी को बने दो-चार सहस्र वर्ष नहीं हुए। विज्ञान ने इसकी आयु पता करने के लिये अनेक उपायों का प्रयोग किया है। उन उपायों से वर्तमान विज्ञान इस परिणाम पर पहुँचा है कि पृथ्वी को बने सैंतीस करोड़ वर्ष से कम नहीं हुए। जब यह पृथ्वी इतनी पुरानी है तो प्रश्न उत्पन्न होता है, इस पर मानव का प्रादुर्भाव कब हुआ? साथ-ही इसकी उत्पत्ति की क्या प्रक्रिया थी? इस विषय में वर्तमान विज्ञान मौन है। एक अवैज्ञानिक प्रक्रिया अवश्य कल्पित की गयी है, परन्तु उस प्रक्रिया का न तो कोई प्रमाण है, न ही उसमें किसी प्रकार की युक्ति है।

पहले हम संक्षेप में पृथ्वी की उत्पत्ति में वर्तमान विज्ञान की पहुँच के विषय में बताने का यत्न करेंगे।

वर्तमान विज्ञान यह नहीं बता सका कि जगत् की रचना का प्रारम्भ कैसे हुआ? वह एक बात जान गया है कि इस ब्रह्माण्ड में चमकदार वाष्प की भांति के बड़े-बड़े बादल चक्कर काट रहे हैं। वे चल भी रहे हैं अथवा नहीं यह निश्चय से नहीं कहा जा सकता। कुछ का रूप देखकर यह अनुमान लगाया गया है कि वे अपने किसी केन्द्र के चारों ओर चक्कर काट रहे हैं। इन बादलों के-से पदार्थ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को नैबुला (Nebula) कहते हैं। ये नैबुला कैसे बने और इनका आगे चलकर क्या होगा, कहा नहीं जा सकता। यह अनुमान किया गया है कि इन नैबुलों से ही नक्षत्र-मण्डल बनते हैं। एक नक्षत्र-मण्डल, जो कदाचित् इसी प्रकार के नैबुला से बना है, आकाश गंगा के नाम से विख्यात है। इसे अंग्रेज़ी में 'मिल्की-वे' (Milky way) या गैलेक्सी (Galaxy) कहते हैं। यह कहा जाता है कि यह आकाश गंगा करोड़ों तारागण और नक्षत्रों का समूह है। यह सम्पूर्ण समूह चल रहा है और अपने स्थान से टलता हुआ किधर जा रहा है, कहा नहीं जा सकता। आकाश गंगा का नक्षत्र समूह कैसे बना ? इसकी कल्पना इस प्रकार की गयी है।

यह कहा जाता है कि नैबुला घूमता-घूमता संकुचित होने लगा और फिर विकेन्द्रीय शक्ति से टूक-टूक होकर करोड़ों टुकड़ों में विभक्त हो गया। ये टुकड़े आकाश गंगा के नक्षत्र बन गये। इसमें कई एक सूर्य समान स्व-प्रज्वलित अंश भी हैं। इस प्रकार की आकाश गंगायें (galaxies) अगणित हैं।

इस आकाश गंगा के विस्तार का अनुमान लगाया गया है। यह कहा जाता है कि यदि कोई रौकेट एक लाख मील प्रति घण्टा की गति से उड़े तो उसे इसके एक किनारे से दूसरे किनारे तक पहुंचने के लिए ६७,००,००,००० (सड़सठ करोड़) वर्ष लगेंगे। सूर्य-मण्डल, जिसमें हमारी पृथ्वी है, आकाश गंगा का एक बहुत ही छोटा-सा भाग है। वैसा ही रौकेट सूर्य मण्डल पार करने में केवल दो वर्ष लेगा। गैलेक्सी (आकाश गंगा) की तुलना में हमारा सूर्य मण्डल ३३,५०,००,००० (साड़े तेंतीस करोड़) गुना छोटा है और हमारी पृथ्वी उसमें वही तुलना रखती है, जो एक टैनिस का गेंद ऐटलांटिक महासागर से तुलना रखता है।

सूर्य-मण्डल उस नक्षत्र समूह को कहते हैं जो सूर्य के चारों ओर चक्कर काट रहे हैं। सागर में गेंद की तुलना वाली, सूर्य-मण्डल में यह पृथ्वी, इस पृथ्वी पर भारत और उसके बड़े-बड़े नगरों में एक अपना छोटा-सा नगर और उसके एक मोहल्ले के एक मकान में बैठा प्राणी। ब्रह्माण्ड से अपनी तुलना करते हुए मनुष्य की बुद्धि चकराने लगती है। वह एक नगण्य बिन्दु मात्र भी नहीं है।

इस बात के उल्लेख से हमारा प्रयोजन यह है कि वर्तमान विज्ञान की पहुंच का कुछ अनुमान लगाया जा सके। परन्तु भारतीय विज्ञान तो इससे भी दूर, बहुत दूर तक जाता है। अगले प्रकरण में हम उसी का उल्लेख करेंगे। जो कुछ प्राचीन काल में विदित था, उसका एक थोड़ा-सा अंश हमको विदित है। राजनीतिक कारणों और काल के क्षयकारक प्रभाव से बहुत-कुछ विनष्ट हो गया है। इस पर भी वर्तमान विज्ञान से बहुत अधिक अवशिष्ट है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

: २ :

सृष्टि रचना (भारतीय विज्ञान के आधार पर)

यहाँ सबसे पहले इतना जान लेना चाहिये कि जगत् की रचना और सृष्टि का सृजन भारतीय परम्परा के अनुसार इतिहास का विषय है। मनुष्य इस जगत् का बहुत ही छोटा अंश है। जगत् से इसकी तुलना कुछ-कुछ ऊपर की गई है। उससे इतना अनुमान लगाया जा सकेगा कि मनुष्य का इतिहास इस जगत् के इतिहास में क्या गणना रख सकता है ? जगत् रचना का भी एक इतिहास है। यह ऐसे ही है, जैसे किसी कारखाने अथवा उद्योग का इतिहास होता है। जिस घर में हम रह रहे हैं और जिसके सुख-प्रसाधनों का हम भोग कर रहे हैं, उसका भी एक इतिहास है और उसको जाने बिना मनुष्य का अपने विषय में जानना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। मनुष्य तो इस चराचर जगत् का एक अणु मात्र है।

यही कारण है कि प्रायः सब पुराणों में और धर्मशास्त्रों में इतिहास का यह अंग दिया जाता है। वेद (ऋक्, यजु, साम्) में भी यह इतिहास वर्णित है। हम भी, जब इतिहास के विषय में लिखना चाहते हैं, भारतीय परम्परा के अनुसार ही इसका वृत्तान्त देंगे।

: ३ :

जगत् रचना से पूर्व

भारतीय विज्ञान-वेत्ता इस परिणाम पर पहुँचे हैं कि इस ब्रह्माण्ड में तीन अनादि और अक्षर पदार्थ हैं—(१) परमात्मा; (२) जीवात्मा; और (३) मूल प्रकृति। ये तीन पदार्थ अनादि और अनन्त हैं। ये तीनों पदार्थ अव्यक्त हैं, अर्थात् ये इन्द्रियों से तथा उसकी सहायता करने वाले उपकरणों से व्यक्त नहीं किये जा सकते।

भारत में एक ऐसा मत भी है जो केवल एक ही अनादि पदार्थ (परमात्मा) को मानता है। इस मत के मानने वालों को अद्वैतवादी कहा जाता है। ये अपने-आपको वेदान्ती भी कहते हैं। इनसे मिलता-जुलता एक और मत भी है। वे भी जगत् का एक ही मूल कारण मानते हैं। उनके विचार में जड़ प्रकृति ही एक अनादि पदार्थ है, जिससे यह चराचर जगत् बना है। दोनों, जड़ अथवा चेतन, को एक-दूसरे में बदलता दिखाई देता मानते हैं। अद्वैतवादी यह मानते हैं कि जड़

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जगत् परमात्मा का ही एक भ्रांत रूप है और जड़वादी यह मानते हैं कि जड़ से ही चेतन की भाँति होती है। इस पर भी भारतीय शास्त्रों से त्रैतवाद का ही समर्थन मिलता है। उदाहरण के रूप में उपनिषद् का एक वाक्य है—

ज्ञाज्ञौ द्वावजावीशनीशावजा ह्येका भोक्तृभोग्यार्थयुक्ता।
अनन्तश्चात्मा विश्वरूपो ह्यकर्ता त्रयं यदा विन्दते ब्रह्ममेतत्॥

श्वेता० उ० १-९

इसका अर्थ है—दो, जीवात्मा और परमात्मा, अज्ञ और सर्वज्ञ, असमर्थ और सामर्थ्यवान अजन्मा हैं। एक तीसरा भी अजन्मा है, जो भोग करने वाले जीव के लिये भोग की सामग्री उपस्थित करता है। विश्वरूप अनन्तात्मा अकर्ता है। ये तीन प्रकार के ब्रह्म हैं, ऐसा जानो।

भारतीय शास्त्रों में स्थान-स्थान पर इन तीनों को अनादि, अक्षर तथा मूल पदार्थ माना है।

हम समझते हैं कि अद्वैतवादी और जड़वादी एक ही स्रोत की उपज हैं। वास्तविक भारतीय मत त्रैतवाद ही है।

जगत् की रचना से पहले मूल प्रकृति विद्यमान थी। इसके लक्षण लिखे हैं। मनुस्मृति में एक श्लोक में इस मूल प्रकृति का स्वरूप इस प्रकार वर्णन किया है—

आसीदिदं तमोभूतमप्रज्ञातमलक्षणम्।
अप्रतर्क्यमविज्ञेयं प्रसुप्तमिव सर्वतः॥

मनु० १-५

अर्थ है—यह (मूल रूप प्रकृति), तमोभूतम् (अन्धकार में पड़ी हुई) अप्रज्ञात (नहीं जान सकने योग्य) अलक्षणम् (चिन्हों से रहित) जिससे इसमें कोई निशान इत्यादि नहीं है, अप्रतर्क्य (तर्क से दूर) अविज्ञेयं (अज्ञात) प्रसुप्तमिव (सोयी हुई जैसी) है।

यह प्रकृति कहाँ तक फैली हुई है? इसका ज्ञान मनुष्य को नहीं। सभी तारक और नक्षत्र इसी प्रकृति से बने हैं और कुछ तारक पृथ्वी से इतनी दूरी पर देखे गये हैं कि प्रकाश की गति—एक लाख छियासी हज़ार तीन सौ मील प्रति सैकण्ड—से चलता हुआ प्रकाश अभी तक पृथ्वी पर नहीं पहुँचा। इसे पहुँचने में अभी कई लाख वर्ष लगेंगे। अभिप्राय यह है कि मूल प्रकृति वहाँ तक तो फैली हुई है। कदाचित् उससे भी दूर तक है।

इस सोयी हुई प्रकृति से ही यह जगत् बना है। जगत् की परिभाषा है चलने वाला, अर्थात् गतिशील। मूल प्रकृति गतिशील नहीं। यह मृतवत् है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस अन्धकारमय, सोयी हुई-सी मूल प्रकृति से यह चलायमान जगत् कैसे बना ? यह प्रश्न है। वर्तमान विज्ञान इस विषय में खोज कर रहा है और वह अभी तक किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुँचा। इसके न पहुँचने का भी कारण है। वह यह कि वर्तमान विज्ञान के पास जितने भी यन्त्र हैं, वे केवल उन पदार्थों को प्रत्यक्ष कर सकते हैं, जो इन्द्रियगोचर हैं। इन्द्रियातीत ज्ञान प्राप्त करने के साधनों को वर्तमान वैज्ञानिक अभी तक नहीं जान सके। मूल प्रकृति इन्द्रियातीत है। इस कारण उस इन्द्रियातीत से इन्द्रियगोचर बनने की प्रक्रिया को जानने वाला कोई यन्त्र इन्द्रियों के अतिरिक्त होना चाहिये। भारतीय वैज्ञानिकों ने ऐसे यन्त्र को जाना है और फिर उस यन्त्र को परिष्कृत कर उसका प्रयोग किया है। इस कारण वे इस प्रक्रिया को जान सके हैं।

वह यन्त्र और उसको परिष्कृत करने तथा उसके प्रयोग करने का ढंग इस पुस्तक का विषय नहीं है। वह योग का विषय है। अतः उसको बताये बिना हम यह स्पष्ट करेंगे कि भारतीय वैज्ञानिकों ने क्या प्रतीत किया है ?

इतना समझ लेना चाहिये कि पृथ्वी का इतिहास उस समय से आरम्भ होता है, जब उक्त वर्णित अन्धकारमय प्रकृति से जगत् का बनना आरम्भ हुआ।

यह इतिहास ही तो है। हाँ, यह मानव इतिहास नहीं। कारण यह कि मानव-सृष्टि बहुत काल उपरान्त हुई। जगत् की उत्पत्ति को भारतीय इतिहासज्ञ इतिहास ही मानते हैं।

सृष्टि उत्पत्ति का इतिहास तो वेदों में भी लिखा मिलता है। कारण यह कि वेदों की रचना उस समय हुई, जब देवता उत्पन्न हुए। वेद मनुष्य की सृष्टि तक रचे जाते रहे। उस समय वेद मनुष्य से समझी जाने वाली भाषा में आ गये। आदि सृष्टि में वेद मनुष्य को ऋषियों द्वारा उस भाषा में दिये गये, जो भाषा मनुष्यों की बनी। इस भाषा के उपरान्त और उस भाषा में दिये जाने के अनन्तर भी वेद उन देवताओं द्वारा उच्चरित हो रहे हैं अथवा नहीं, यह नहीं कहा जा सकता। विचारणीय बात यह है कि वर्तमान वेदों में, जो सृष्टि के बनते ही मनुष्य को मिले, मानव इतिहास नहीं हो सकता था। उनमें केवल देवताओं के निर्माण का ही इतिहास है। देवताओं के इतिहास का अभिप्राय है जगत् रचना का इतिहास।

यह भारतीय मान्यता है कि इस व्यक्त जगत् के बनने के पूर्व इस ब्रह्माण्ड में तीन पदार्थ उपस्थित थे। ये तीनों पदार्थ अनादि और अक्षर हैं। एक है मूल प्रकृति, जिसका स्वरूप मनुस्मृति के अनुसार हम ऊपर लिख आये हैं। दूसरा पदार्थ है जीवात्मा और तीसरा पदार्थ है परमात्मा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहले परमात्मा के विषय में ही लिखेंगे। परमात्मा सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान्, अव्यक्त और अविज्ञेय है। इसके विषय में इस प्रकार लिखा है—

अहं क्रतुरहं यज्ञः स्वधाहमहमौषधम्।
मंत्रोऽहमहमेवाज्यमहमग्निरहं हुतम्॥
पिताहमस्य जगतो माता धाता पितामहः।
वेद्यं पवित्रमोंकार ऋक्साम यजुरेव च॥
गतिर्भर्ता प्रभुः साक्षी निवासः शरणं सुहृत्।
प्रभवः प्रलयः स्थानं निधानं बीजमव्ययम्॥

भ० गी० ९-१६, १७, १८

अर्थात्—क्रतु (इस संसार में होने वाले कर्म) परमात्मा से ही है। यज्ञ (सृष्टि उत्पन्न करने वाला) परमात्मा है। स्वधा (अपनी शक्ति के संचालन करने वाला) परमात्मा ही है। औषधम् (जगत् की बिगड़ी दशा को सुधारने वाला) परमात्मा ही है। मंत्रः (शुभ सम्मति) परमात्मा है। आज्यम् (उक्त वर्णित यज्ञ में हवि) परमात्मा है। अभिप्राय यह कि संसार निर्माण के यज्ञ में परमात्मा ही है, जो सब-कुछ करता है।

जगत् का पितामह, माता-पिता सब-कुछ परमात्मा ही है। जानने योग्य, पवित्र ओंकार, जो ऋक्, यजु, साम में वर्णित है, वह परमात्मा ही है।

जगत् को चलाने वाला, उसका भरण-पोषण करने वाला, सबका साक्षी, सबका वास-स्थान, सबका शरण, सबका हित करने वाला परमात्मा है। वह अविनाशी सबका बीज है।

जीवात्मा के विषय में कहा है कि यह भी चेतन है, परन्तु अल्पज्ञ है। यह हम ऊपर श्वेताश्वतर उपनिषद् के एक मन्त्र में बता आये हैं। जीवात्मा अनेक हैं। ये सब अणु मात्र हैं। सांख्य दर्शन में लिखा है—

जन्मादिव्यवस्थातः पुरुषबहुत्वम्।

सां० १-११४

इसका अभिप्राय है कि जन्मादि की व्यवस्था पृथक्-पृथक् होने से जीवात्मा अनेक होते हैं, अर्थात् अनेक होने से ही ये पृथक्-पृथक् जन्म पाते हैं, ऋण होते हैं, सुख-दुःख भोगते हैं। इत्यादि।

जीवात्मा के स्वरूप का भी सांख्य में वर्णन है। उसमें लिखा है—

न नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभावस्य तद्योगस्तद्योगाद्ऋते।

सां० १-१६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसका अभिप्राय यह है कि जीवात्मा नित्य है, अनादि है, अपरिणामी है, चेतन है, स्वतन्त्र है। इसका प्रकृति के साथ संयोग होने से ही यह जन्म-मरण के बन्धन में आता है।

इस प्रकार यह भारतीय परम्परा है कि दो आत्म तत्त्व हैं—एक परमात्मा और दूसरा जीवात्मा। आत्म तत्त्व से अभिप्राय उन तत्त्वों से है जो चेतन और स्वतन्त्र हैं। आत्मा ही प्रकृति के सम्पर्क में आने से जन्म-मरण में बँध जाता है।

मूल प्रकृति एक तीसरा तत्त्व अर्थात् अनादि पदार्थ है। इसके विषय में लिखा है—

अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां बह्वीः प्रजाः सृजमानां सरूपाः।
अजो ह्येको जुषमाणोऽनुशेते जहात्येनां भुक्तभोगामजोऽन्यः॥

श्वे० उ० ४-५

अर्थात्—एक लौहित (रजस् गुण वाली), शुक्ल (सत्त्व गुण वाली) और (कृष्ण) तमस् गुण वाली प्रकृति है। वह अजन्मा है। वह अपने ही गुणों वाली प्रजा उत्पन्न करने की सामर्थ्य रखती है। बहुत प्रकार की प्रजाओं से अनेक प्रकार के व्यक्त रूप परिणाम उत्पन्न कर सकती है।

इसके अतिरिक्त एक अन्य अजन्मा है जो उस प्रकृति का भोग करता है। एक अन्य अजन्मा है जो इस भोग पदार्थ का त्याग कर देता है। ये, दूसरा और तीसरा, दो आत्म तत्त्व ही हैं।

अतः इतिहास में भारतीय परम्पराओं के विषय में लिखते हुए हमने पहली बात यह स्पष्ट की है कि भारतीय इतिहास का आरम्भ हम उस समय से मानते हैं, जब जगत् की उत्पत्ति हुई।

: ४ :

रचना आरम्भ

सृष्टि-रचना के विषय पर मेरी एक पुस्तक पृथक् में छपी है। उसमें व्याख्या से इस विषय पर लिखा गया है। यहाँ तो संक्षेप में ही और वह भी वेदों में से कुछ लिखने का विचार है। हम सृष्टि-रचना को भी इतिहास का एक पृष्ठ ही मानते हैं। इस कारण इसका अधिक-से-अधिक ज्ञान इतिहास के ज्ञान में वृद्धि ही करेगा। ऋग्वेद में सृष्टि-रचना और जगत् के चलन का इतिहास व्याख्या से कहा है। वह वर्णन सृष्टि-रचना के वर्तमान ज्ञान से बहुत अधिक और युक्ति-युक्त है। हमारे विचार में वर्तमान ज्ञान से कहीं अधिक है। यहाँ हम संक्षेप में ही लिख सकेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सृष्टि रचना के विषय में सांख्य दर्शन का एक सूत्र है—

सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः प्रकृतेर्महान् महतोऽहंकारोऽहंकारात् पञ्चतन्मात्राण्युभयमिन्द्रियं तन्मात्रेभ्यः स्थूलभूतानि पुरुष इति पञ्चविंशतिर्गणः। —सांख्य १-६१

अर्थात्—प्रकृति का प्रत्येक परमाणु सत्त्व, रजस्, तमस् की संतुलित अवस्था होता है।

(१) प्रकृत से महान् बनता है।

(२) महान् से तीन अहंकार उत्पन्न होते हैं।

(३) अहंकारों से पाँच तन्मात्रायें बनती हैं।

(४) तन्मात्राओं से दो प्रकार की दस इन्द्रियाँ बनती हैं।

(५) तन्मात्राओं से ही पंच स्थूलभूत बनते हैं।

इस प्रकार जड़-जगत् के ये (१+३+५+१०+५) चौबीस गण हैं और पचीसवाँ गण इनमें जीवात्मा (पुरुष) आ जाता है तो प्राणी का पूर्ण क्लेवर बन जाता है।

गण का अभिप्राय है एक समान वस्तुओं का समूह। अतः प्राणी में पचीसगण का अभिप्राय है कि उसमें पच्चीस प्रकार के पदार्थों के समूह होते हैं।

एक शरीर में एक ही जीवात्मा होता है।

इस विषय में यदि वर्तमान वैज्ञानिक का कथन देखें तो अन्तर इस प्रकार होगा—

वैदिक विज्ञान के अनुसार	वर्तमान विज्ञान के अनुसार
(१) मूल पदार्थ है प्रकृति	इसका ज्ञान नहीं। यह समझा जाता है कि यह जगत् शून्य से उत्पन्न हो गया है। वे भूल जाते हैं कि वस्तु से ही वस्तु बन सकती है।
(२) प्रकृति से महान् के बनने का वृत्तान्त है।	वर्तमान वैज्ञानिकों को इसका धुंधला-सा ज्ञान है।
(३) महान् से अहंकार। अहंकारों की उत्पत्ति का विस्तार से वर्णन है। इनका वैदिक नाम 'आपः' है।	उत्पत्ति का ज्ञान नहीं। इस पर भी इनकी उपस्थिति का ज्ञान है। वैज्ञानिक इन्हें 'एटामिक पार्टिकल्स' से कहते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(४) तन्मात्रा पाँच शक्ति के रूप हैं। वर्तमान विज्ञान इनके विषय में जानता है। वैज्ञानिक भाषा में इनको इस प्रकार कहा जाता है —(१) interatomic energy (२)chemical energy (३) molecular dynamics (४) Magnetism (५) gravity

(५) पृथिवी (solids)
जलीय (liuqids)
वायवी (gasseus)
आग्नेय (radio active)
आकाशीय (Etherial)
ये पंच महाभूत हैं।

वैज्ञानिक तीन (पार्थिव, जलीय, और वायवी) को मानते हैं। आग्नेय और आकाशीय को इन तीन में ही मानते हैं।

इस तालिका से भी पता चलेगा वेद का विज्ञान वर्तमान से कुछ अधिक ही है। जीवात्मा और परमात्मा के विषय में वर्तमान युग के वैज्ञानिक कुछ भी नहीं जानते। यह सांख्य दर्शन के सूत्र (सां० १-६१) की व्याख्या में ही है। वेद में तो इन सबके विषय में व्याख्या से कहा है। उसका संक्षेप में दर्शन हम अगली कण्डिका में करायेंगे।

: ५ :

(१) यह रचना और विघटन दिन और रात की भांति चल रहा है। यह नहीं कि यह चराचर जगत् सदैव ही रहेगा। जब परमात्मा की अग्नि सजग हो जाती है तो जगत् बन जाता है। और जब अन्तरिक्ष में परमात्मा की अग्नि (शक्ति) सो जाती है तो जगत् विघटित हो जाता है और रात्रि समान अन्धकार हो जाता है। इस विषय में वेद इस प्रकार कहता है—

ऋतं च सत्यं चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत।
ततो रात्र्यजायत। ततः समुद्रो अर्णवः॥
समुद्रादर्णवादधि संवत्सरो अजायत।
अहोरात्राणि विदधद्विश्वस्य मिषतो वशी।
सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्।
दिवं च पृथिवीं चान्तरिक्षमथो स्वः॥

—ऋग्वेद १०-१९०-१, २, ३,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थात्—प्राकृतिक नियमों और जगत् के प्राकृतिक स्वरूप [प्रारम्भिक साम्य-वस्था] के तपने से [ईश्वरीय अग्नि द्वारा प्रभावित होने से] यह जगत् प्रकट होता है।

जब अन्तरिक्ष शक्तिरहित हो जाता है [परमात्मा अपनी शक्ति को समेट लेता है] तब रात्रि [प्रलय] आ जाती है।

शक्तिरहित अन्तरिक्ष में से ही संवत्सर [कल्प] का आरम्भ होता है। अर्थात् मध्य रात्रि में ही अगला ब्रह्म दिन आरम्भ होता है।

समस्त को वश में रखने वाला काल संवत्सर [कल्प] का आरम्भ कर देता है।

और फिर सूर्य, चन्द्रादि पुनः वैसे ही बन जाते हैं जैसे पहले कल्प में थे। द्युलोक, पृथिवी और अन्तरिक्ष बन जाते हैं।

यह वृत्तान्त है इस जगत् के बनने-बिगड़ने का, परन्तु प्रश्न है कि वर्तमान रचना से पूर्व, ब्रह्म रात्रि के समय (प्रलय काल में) अवस्था कैसी थी? उसके विषय में भी वेद में बताया है। यह इस प्रकार है—

नासदासीन्नो सदासीत्तदानीं नासीद्रजो नो व्योमा परो यत्।
किमावरीवः कुह कस्य शर्मन्नम्भः किमासीद्गहनं गभीरम्॥

—ऋग्वेद १०-१२९-१

आनीदवातं स्वधया तदेकं तस्माद्धान्यन्न परः किं चनास॥

—ऋग्वेद १०-१२९-२

अर्थात्—उस समय, कुछ ऐसा है, नहीं कहा जा सकता था, अथवा कुछ नहीं है, ऐसा भी नहीं कहा जा सकता था। न नक्षत्र थे, न ही व्योम से परे क्या था, पता चलता था। कुछ ज्ञान नहीं होता था कि उस अन्धकार में क्या ढका हुआ था और वह अन्धकार क्या था?

यह अवस्था थी प्रलय काल की। उस समय उस अन्धकार में स्वधा के लिए उसके साथ एक निश्चल शक्ति थी, जो कार्य नहीं कर रही थी।

यह अवस्था थी प्रलयकाल की। उस समय उस अन्धकार में स्वधा थी और एक सोयी हुई शक्ति (energy in potential form) थी।

यह स्वधा क्या और किस प्रकार थी, इसके लिए वेद का मन्त्र है—

तम आसीत्तमसा गूळहमग्रेऽप्रकेतं सलिलं सर्वमा इदम्।
तुच्छ्येनाभ्वपिहितं यदासीत्तपसस्तन्महिनाजायतैकम्॥

—ऋग्वेद १०-१२९-३

अर्थात्—रचना से पूर्व गूढ़ अन्धकार से आच्छादित प्रकृति थी। यह अनुभव न हो सकने वाली सलिल अवस्था में थी। यह एक अति सूक्ष्म, अनुभव में न आ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सकने वाली थी। तब तपस से एक 'महान्' प्रकट हुआ।

सलिल का अर्थ है जल अथवा रेत की भांति बह जाने वाला पदार्थ। जब किसी पदार्थ के कण परस्पर सर्वथा असम्बन्धित हों तो वह पदार्थ बह जाने का गुण रखने से सलिल कहा जाता है। प्रकृति के परमाणुओं को स्वधा कहा है! अर्थात् वे अपने आप में ही स्थित हैं। वे परमाणु परस्पर किसी प्रकार से आश्रित नहीं थे। इसी से उनको सलिल कहा है।

इस मन्त्र में कहा है कि एक महान् उत्पन्न हुआ। यह वही था, जिसको पूर्व के मंत्र में 'आनीत् अवातम्' कहा है। वहाँ वह क्रियाहीन कहा था। वही (यहाँ कहा है कि) क्रियाशील हो गया। परमात्मा ने उसे कार्य करने से रोका हुआ था। यहाँ कहा है कि वह प्रकट हुआ अर्थात् कार्य करने लगा।

इसने क्या कार्य किया? यह अगले मन्त्र में बताया है। मन्त्र है—

यदक्रन्दः प्रथमं जायमान उद्यन्त्समुद्रात् उत वा पुरीषात्।
श्येनस्य पक्षा हरिणस्य बाहू उपस्तुत्यं महि जातं ते अर्वन्॥

—ऋग्वेद १-१६३-१

अर्थात्—हे अर्वन्! जब तेरे प्रशंसा योग्य श्येन की भांति उड़नेवाले पंख और हिरन की बाँहों की भांति भागने वाली टाँगे प्रकट हो गयीं और तुम, पूर्व कारणों से, प्रकट होकर अन्तरिक्ष में घोर नाद करते हुए फैल गये—

तब क्या हुआ? यह निम्न मन्त्र में इस प्रकार कहा है—

युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषं चरन्तं परि तस्थुषः।
रोचन्ते रोचना दिवि॥ —ऋग्वेद १-६-१

अर्थात्—सब ओर से स्थिर [शान्त (विरोध न करने वाला) प्रकृति के परमाणु] प्रकाशमान से जुड़ते हैं, तो स्वयं भी और आकाश को भी प्रकाशयुक्त कर देते हैं।

प्रकाशमान से जुड़ते हैं, का अभिप्राय है कि परमात्मा की शक्ति (अग्नि) से संयुक्त होते हैं।

पूर्वमन्त्र (ऋ० १-१६३-१) में कहा था कि परमात्मा की शक्ति 'जिसे उस मन्त्र में अर्वा कहा है, जो घोर नाद करता हुआ अन्तरिक्ष में फैल जाता है, उसी परमात्मा की शक्ति से जब परमाणु संयुक्त होता है तो वह स्वयं प्रकाशमान हो जाता है। अर्थात् वह सोयी हुई साम्यावस्था से जागकर असाम्यावस्था में हो जाता है। साथ ही वह अन्तरिक्ष को प्रकाशित कर देता है। यह रचना में 'हिरण्य-गर्भ' की स्थिति का वर्णन है। हिरण्यगर्भ में आकाश प्रकाशित हुआ-सा दिखाई देने लगता है।

इस प्रक्रिया में अर्थात् ईश्वरीय शक्ति अर्वा के परमाणु से संयुक्त हो जाने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर एक बात और होती है। वह यह कि इन्द्र प्रकट हो जाता है। इसका वर्णन ऋग्वेद में इस प्रकार है—

यमेनं दत्तं त्रित एनमायुनगिन्द्र एणं प्रथमो अध्यतिष्ठत्।
गन्धर्वो अस्य रशनामगृभ्णात्सूरादश्वं वसवो निरतष्ट॥

—ऋग्वेद १-१६३-२

अर्थात्—नियंत्रण करनेवाले परमात्मा से दी हुई त्रित ने स्वीकार कर ली। उस पर पहले इन्द्र अधिष्ठित था।

(इस प्रकार) नियंत्रण में आए हुए परमाणुओं ने जब लगाम स्वीकार कर ली, बलवान (अश्वाग्नि) से वसुओं (परमाणुओं पर) अश्व (परमात्मा की) शक्ति ठहर गई।

दो बातें कही गयी हैं। एक यह कि परमाणु पर पहले (साम्यास्वथा में) इन्द्र का आधिपत्य था। अब इन्द्र तो त्रित (परमाणु) से बाहर को झाँकने लगा है और परमाणु ईश्वरीय अग्नि के अधीन चमकने लगा है।

इसको वेद में इस प्रकार कहा है—

युञ्जन्त्यस्य काम्या हरी विपक्षसा रथे।
शोणा धृष्णू नृवाहसा॥ —ऋग्वेद १-६-२

अर्थात्—जब परमाणु का ईश्वरीय अग्नि से संयोग हुआ, तब उस (परमाणु) के रथ में दो घोड़े कामना करते हुए लग गए।

'कामना करते हुए' का अभिप्राय है कि वे दूसरों से आकर्षण-विकर्षण करने लगे।

इस सूक्त (ऋ० १-६) के दोनों मन्त्रों का अभिप्राय है कि साम्यावस्था में परमाणु ईश्वरीय अग्नि से संयुक्त हुआ तो उसकी असाम्यावस्था हो गयी और परमाणु को दो शक्तियाँ, रथ की भांति खैंचकर इधर-उधर ले जाने लगीं।

ये घोड़े परमाणु के भीतर बैठी इसकी त्रिगुणात्मक शक्ति के दो अंश हैं। एक रजस् शक्ति है और दूसरी सत्त्व शक्ति। परमात्मा की अश्वाग्नि के परमाणु पर लगाम बन जाने से इन्द्र की दोनों सबल शक्तियाँ परमाणु से बाहर को झाँकने लगती हैं और परमाणु को उसके उपादान पदार्थ के साथ लिये हुए अन्तरिक्ष में इधर-उधर तैरने लगती हैं।

एक वेदमन्त्र में यह बताया है कि परमाणु के इस प्रकार तैरने से क्या होता है। वेद-मन्त्र इस प्रकार है—

असि यमो अस्यादित्यो अर्वन्नसि त्रितो गुह्येन व्रतेन।
असि सोमेन समया विपृक्त आहुस्ते त्रीणि दिवि बन्धनानि॥

—ऋग्वेद १-१६३-३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थात्—हे अर्वन् (ईश्वरीय शक्ति) ! तू यम (नियन्त्रण करनेवाली) है। तू प्रकाशमान है। गुप्त प्रबन्ध से बँधा हुआ त्रित (परमाणु) तुम्हारे सामने है।

यह कहा जाता है कि तेरी साम्यावस्था फट जाती है और तीन निबन्धन (संयोग) बन जाते हैं।

जब परमाणु की साम्यावस्था फटती है, परमाणु के भीतर की शक्ति के दो अंश अश्वों के रूप में परमाणु को लग जाते हैं और परमाणु को रथ की भांति इधर-उधर ले जाने लगते हैं।

इन चलते-फिरते परमाणुओं में जब विपरीत आवेश वाले अश्व के आमने-सामने आने से आकर्षण होने लगता है, तब परमाणुओं का संयोग हो जाता है और निबन्धन बन जाते हैं।

इस सब वृत्तान्त को चित्रवत् भी दिखाया जा सकता है। वह इस प्रकार है—

(१) साम्यावस्था में परमाणु—

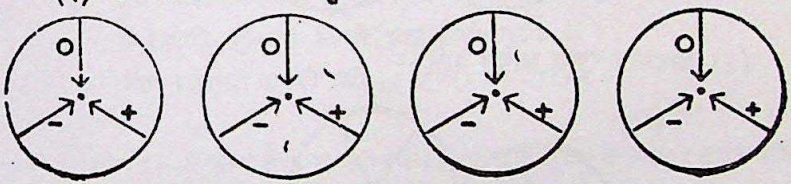

(२) असाम्यावस्था में परमाणु—

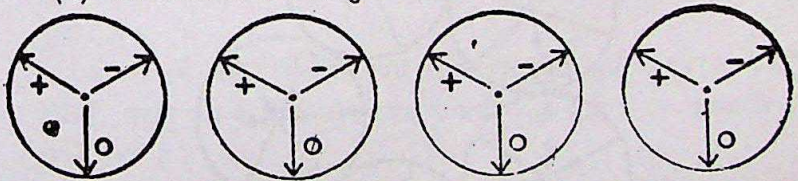

(३) निबन्धन एक प्रकार तमस आवेश वाले—

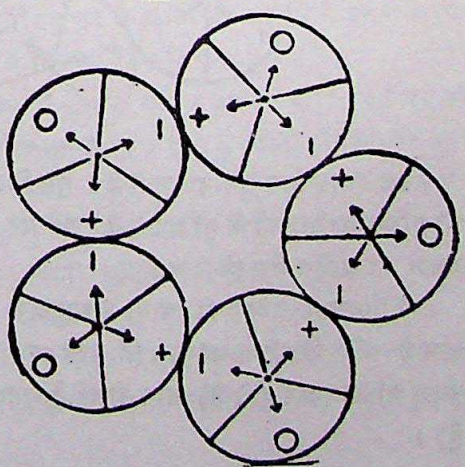

O =तमस्
\+ =सत्व
— =वरजस्

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(४) निबन्धन सत्व आवेश वाले—

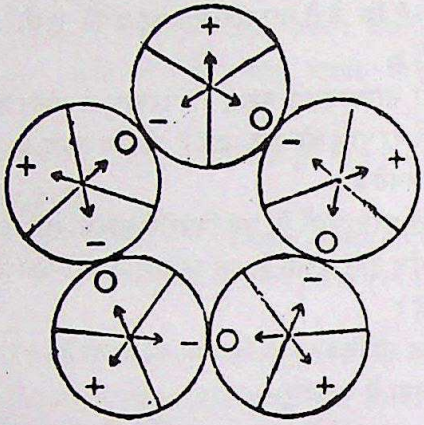

(५) निबन्धन रजस् आवेश वाले—

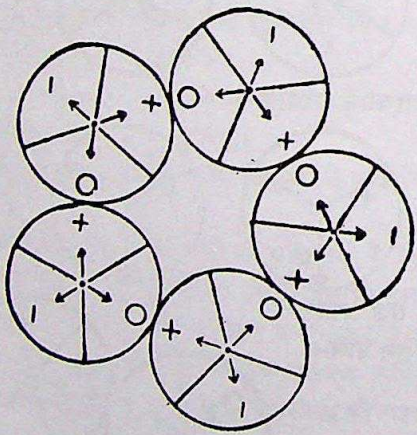

इस प्रकार निबन्धन बन जाते हैं। ऐसे निबन्धन तीन, पाँच, सात तथा और भी अधिक परमाणुओं के हो सकते हैं। शर्त यह है कि प्रत्येक निबन्धन पर एक ही प्रकार का आवेश शेष होना चाहिए।

ये निबन्धन सांख्य की भाषा में अहंकार कहे जाते हैं। इनके पृथक्-पृथक् नाम हैं—जैसे वैकारिक अहंकार (ये सत्त्व प्रधान होते हैं); राजसी अहंकार (ये रजस् शक्ति प्रधान होते हैं) और तीसरे हैं भूतादि अहंकार (ये आवेशरहित होते हैं)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्तमान वैज्ञानिक भाषा में इनके नाम हैं—इलेक्ट्रोन (electron), प्रोटोन (proton) और न्यूट्रोन (neutron)।

वैदिक भाषा में इनको वरुण, मित्र और अर्यमा कहा है। अर्यमा को सोम भी कहते हैं।

मित्र और वरुण आवेशयुक्त होने से जगत् रचना कार्य में सक्रिय भाग लेते है। एक मन्त्र में कहा है—

उतेव मे वरुणश्छन्त्स्यर्वन्यत्रा त आहुः परमं जनित्रम्।

—ऋग्वेद १-१३६-४ (उत्तरार्ध)

अर्थात्—वरुण मेरे (परमात्मा के) छन्द (वेदमन्त्रों की वाहिनी रश्मियाँ) कहता है। और आपः पूर्ण जगत् का निर्माण करते हैं।

अर्यमा आपः हैं आवेशरहित। इस कारण वे स्वयं कुछ भी कार्य नहीं कर सकते। परन्तु सूक्त के एक मन्त्र में कहा है—

अयं मित्राय वरुणाय शंतमः सोमो भूत्ववपानेष्वाभगो देवो देवेष्वाभगः।
तं देवासो जुषेरत विश्वे अद्य सजोषसः।
तथा राजाना करथो यदीमह ऋतावाना यदीमहे।

—ऋग्वेद १-१३६-४

अर्थात्—ये सोम अत्यन्त शान्तमय मित्र और वरुण के लिए [उसके अधीन कार्य करने के लिए] होवें। देवताओं में मान पाने के लिए ये दिव्य और ऐश्वर्य-युक्त होवें।

इसका अर्थ यह है कि सोम स्वयं तो आवेशरहित होने के कारण कर्महीन होते हैं, परन्तु जब ये मित्र और वरुण के अधीन हो जाते हैं तो उपकारी कार्य करने लगते हैं।

ये सोम किस प्रकार मित्र और वरुण के अधीन हो जाते हैं? इसका वृत्तान्त ऋग्वेद के सूक्त (ऋ० १-३२) में विस्तारपूर्वक मिलता है।

मित्र आपः पर रजस् शक्ति (—) का आवेश होता है और वरुण पर सत्त्व (+) का आवेश होता है। अर्यमा आवेशरहित होने से दोनों (मित्र और वरुण) से आकर्षित होते हैं। इससे मित्र और वरुण में संघर्ष होने लगता है। इस संघर्ष का वृत्तान्त सूक्त (ऋ० १-३२) में व्याख्यासहित बताया है। उस संघर्ष का परिणाम यह होता हैं कि एक स्थायी संयोग बन जाता है, जिसे वेद भाषा में 'परिमण्डल' कहते हैं। वर्तमान विज्ञान में इसे 'ऐटम' कहा जाता है।

इस संयोग में सोम घिर जाते है वरुण से और मित्र परिधि पर चक्कर काटने लगते हैं। यह संयोग स्थायी होता है और सोम वरुण तथा मित्रों से घिरे हुए ऐटम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रचना-कार्य से सहयोग देने लगते हैं।

इस (ऋ० १-३२-१०) में पूर्व के मन्त्रों में वर्णित संघर्ष के परिणामस्वरूप ऐटम (परिमण्डल) का स्वरूप बता दिया है। वह स्वरूप इस प्रकार है—

अतिष्ठन्तीनामनिवेशनानां काष्ठानां मध्ये निहितं शरीरम्।
वृत्रस्य निण्यं वि चरन्त्यापो दीर्घन्तम आशयदिन्द्रशत्रुः॥

—ऋग्वेद १-३२-१०

अर्थात्—सीमावर्ती आपः अस्थिर मार्गों पर चलते हुए, आवेश वालों के मध्य में (संयोग) का शरीर है।

इन्द्रविरोधी [मित्र आपः से विपरीत आवेश वाले] के नीचे अकिंचन [सोम आपः] ठहरे हुए हैं, जैसे गाय के नीचे बछड़ा।

इस वृत्तान्त से परिमण्डल की सूरत इस प्रकार की बनती है—

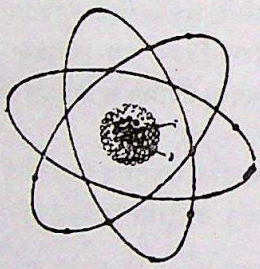

यही सूरत वर्तमान विज्ञान में ऐटम की कही जाती है।

परिमण्डल में घिरा हुआ सोम ऐटम के कार्य में सहायक होता है। यही बात ऊपर (ऋ० १-१३६-४ में) कही है।

ऐटम (परिमण्डलों) मे मरुत (मौलीक्यूल) बनते हैं और मरुत गणों से पंच महाभूत। इस प्रकार सृष्टि की रचना होती है।

सृष्टि के रहने योग्य हो जाने पर प्राणी-सृष्टि होने लगती है। प्राणी-सृष्टि के शरीरों के लिए पदार्थ तो बन चुके होते हैं, उन पदार्थों का शरीर के रूप में संगठन अब होता है।

शरीर दो प्रकार से बने हैं। सृष्टि के आरम्भ में अमैथुनीय प्रक्रिया से। और दूसरे पुरुष-स्त्री के समागम से। पुरुष-स्त्री के समागम से उत्पत्ति तो सर्वविदित ही है। इस प्रक्रिया में भी परमात्मा की प्रेरणा सदा बनी रहती है। शरीर बनते समय प्रेरणा [कामना] के अतिरिक्त कार्य सम्पन्न होने में भी ईश्वरीय सहायता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्पष्ट ही दिखायी देती है।

समझने की बात अमैथुनीय सृष्टि की है। चाहे तो विकासवादियों की भांति एक कोषाणुजीव से सृष्टि मानें, चाहे वेद में कहे के अनुसार सब प्रकार के जन्तु पृथक्-पृथक् हुए मानें, यह तो मानना ही पड़ेगा कि प्रथम जीवित कोषाणु, जो बना वह माँ के गर्भ से नहीं था। प्राणी तो था ही नहीं। तो वह कैसे उत्पन्न हुआ?

इस विषय में वेद इस प्रकार कहता है—

आत्मानं ते मनसारादजानामवो दिवा पतयन्तं पतङ्गम्।
शिरो अपश्यं पथिभिः सुगेभिररेणुभिर्जेहमानं पतत्रि॥

—ऋग्वेद १-१६३-६

अर्थात्—तेरी दूरस्थित चिनगारियाँ (जीवात्मा) अन्तरिक्ष में सुरक्षित शरीर तथा मन में गिरते हुए देखता हूँ।

गिरने वाले शिर (सूक्ष्म शरीर) यत्न करते हुए धूलिरहित सुगम मार्गों से आते हुए देखता हूँ।

आकर ये पृथिवी पर बने शरीरों में चले जाते हैं।

पृथिवी पर बने शरीरों के विषय में वेद में इस प्रकार कहा है—

माता पितरमृत आ बभाज धीत्यग्रे मनसा सं हि जग्मे।
सा बीभत्सुर्गभरसा निविद्धा नमस्वन्त इदुपवाकमीयुः॥

—ऋग्वेद १-१६४-८

अर्थात्—माता नियमानुसार पिता को प्राप्त करती है। धारण करने वाला पहले-पहल मन से संयुक्त होता है। वह गर्भ की इच्छा वाली माता बन्धन में बँध जाती है।

यहाँ इस वेद-मन्त्र में माता से अभिप्राय पृथिवी है और पिता से अभिप्राय है सूर्य। मन्त्र में कहा है कि पहले-पहल। इसका अभिप्राय यह है कि उस समय से पहले कोई माता-पिता नहीं थे।

इसके अतिरिक्त ऋग्वेद के १-१६४वें सूक्त के मन्त्रों के अध्ययन से हम इसी परिणाम पर पहुँचते हैं कि यहाँ माता-पिता अमैथुनीय सृष्टि के विषय में कहा है, उस समय सशरीर माता-पिता नहीं थे।

इससे पूर्व के मन्त्र (ऋ० १-१६४-३) में कहा है कि सात गतिशील अश्वों अर्थात् शक्तियों से चलाया जाता हुआ जिसमें सात धातु रहते हैं, वह उत्पन्न हो गया। यह एक प्राणी के शरीर की ओर संकेत है। शरीर में सात अश्व हैं—प्राण, अपान, उदान, व्यान, समान, और दो अश्विनौ—अर्थात् इन्द्राग्नि तथा ईश्वराग्नि।

शरीर में सात धातु हैं—रस, रक्त, मांस, मेद, मज्जा, अस्थि और वीर्य।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन्त्र में कहा है कि इनसे युक्त प्राणी उत्पन्न हो गया।

इससे अगले मन्त्र (ऋ० १-१६४-४) में कहा है कि—आरम्भ में उत्पन्न होने वाले—हड्डियों वाले और बिना हड्डियों वाले—प्राणी जिनमें प्राण, रुधिर आदि और जीवात्मा स्थित हैं, कैसे उत्पन्न हो गए। इसके जानने के लिए किसी विद्वान् से पता करना चाहिए।

इसके अनन्तर (ऋ० १-१६४-५) में कहा है कि मैं मन से ज्ञानवान हो गया हूँ और इस विषय के विद्वान् से जानना चाहता हूँ कि यह निहित पद (शरीर) कहाँ से आ गया।

इस प्रश्न के उत्तर में ही (ऋ० १-१६४-७ तथा ८ में) कहा है—

इह ब्रवीतु य ईमङ्ग वेदास्य वामस्य निहितं पदं वेः।
शीर्ष्णः क्षीरं दुहते गावो अस्य वब्रिं वसाना उदकं पदापुः॥

—ऋग्वेद १-१६४-७

अर्थात्—हे प्रिय! जो इस प्रशंसनीय नियत पद (शरीर) में आया है, उसे मैं जानता हूँ और बताता हूँ। उस गाय को दुहकर दूध और जल दिया जाता है।

यह सब प्रथम उत्पन्न हुए के लिए ही कहा है।

इसके उपरान्त मन्त्र ऋ० १-१६४-८ में कहा है। निश्चय से ही कहा जा सकता है कि इस मन्त्र में पृथिवी पर पहले उत्पन्न होने वालों के विषय में ही कहा है। उस समय सशरीर माता-पिता नहीं थे और यहाँ माता से अभिप्राय पृथिवी है और पिता से अभिप्राय है सूर्य।

इसे मन्त्र के आगे भी कहा है—

तिस्रो मातॄस्त्रीन्पितॄन्बिभ्रदेक ऊर्ध्वस्तस्थौ नेमवग्लापयन्ति।

—ऋग्वेद १-१६४-१०

अर्थात्—ऊपर से (शरीर) के तीन अंश आते हैं और नीचे से तीन अंश आते हैं।

नीचे से आने वाले अंश हैं—पृथिवी, जल और अग्नेय महाभूत तथा ऊपर से आने वाले अंश हैं—आकाश तथा इन्द्राग्नि महाभूत तथा ईश्वरीय अग्नि।

इस प्रकार प्राणी-सृष्टि हो जाने से जगत् रचना का कार्य पूर्ण हो गया प्रतीत होता है। विशेषरूप में मनुष्य के उत्पन्न हो जाने पर।

अब इसके आगे कुछ और बनने वाला है, ज्ञात नहीं।

यह सृष्टि-रचना का इतिहास भी—इतिहास की भारतीय परम्पराओं का अंग ही माना गया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अध्याय चार

: १ :

हमने अभी तक भारतीय इतिहास की एक परम्परा का वर्णन किया है। इसके अनुसार इतिहास जगत् की रचना से आरम्भ होता है। सब भारतीय शास्त्र और पुराण इसी प्रकार मानते हैं।

दूसरी परम्परा काल के विषय में है। जगत् की रचना कब हुई ? आज से कितने वर्ष पूर्व जगत् की रचना आरम्भ हुई थी ? इस प्रश्न के साथ ही काल-गणना का प्रश्न सम्बद्ध है।

जब भी कहीं नाप-तोल का कार्य करना होता है, पहले इकाई का निश्चय किया जाता है। उस इकाई से ही आगे की गणना आरम्भ होती है।

कभी-कभी ऐसा भी होता है कि प्राकृतिक इकाई बहुत बड़ी हो तो उस बड़ी इकाई के भी भाग किये जाते हैं।

उदाहरण के रूप में एक साधारण मनुष्य का एक पग एक इकाई मान उसे एक फुट मान लिया गया। परन्तु एक फुट बहुत बड़ी इकाई है। छोटी-छोटी लम्बाइयाँ इतनी बड़ी इकाई से नापी नहीं जा सकतीं। इस कारण फुट के छोटे-छोटे भाग निश्चित किये गये। एक फुट के १२ भाग करके एक भाग का नाम इंच रख दिया गया।

कई प्रकार की लम्बाइयों को नापने के लिये इंच भी एक बड़ी इकाई थी। अतः एक इंच के भी आठ भाग कर एक भाग का नाम सूत्र रख दिया गया।

इस प्रकार—

८ सूत्र = १ इंच।

१२ इंच = १ फुट।

अब फुट से बड़ी लम्बाइयों के लिये नाप बनाये गये। तीन फुट के नाप को एक गज का नाम दिया गया। इसके बाद फर्लांग और मील नियत किये गये।

इसी प्रकार काल को नापने के लिए एक इकाई नियत की गई। इसे दिन कहा जाता है। मध्याह्न के समय खुले मैदान में एक कीली गाड़ दी जाये। ज्यों-ज्यों दिन बढ़ता जायेगा, कीली का साया छोटा और छोटा होता जायेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिस समय साया सबसे छोटा हो और फिर अगले दिन जब पुनः साया सबसे छोटा हो इन दो समयों के भीतर के काल को एक दिन कहते हैं। यह पृथ्वी पर रहने वालों के लिए एक प्राकृतिक इकाई है।

परन्तु मनुष्य को काल नापने के लिए छोटी-छोटी इकाइयों की आवश्यकता पड़ती है और बहुत बड़े-बड़े काल भी नापने होते हैं। अतः छोटे-छोटे कालों को नापने के लिए दिन के छोटे भाग किये गये और बड़े कालों को नापने के लिए पक्ष, महीने, वर्ष और शताब्दियाँ बनाई गईं। इस पर भी इन सबका सम्बन्ध दिन रूपी प्राकृतिक इकाई से रखा गया है।

हमने बताया है कि धूप में एक कीली के छोटे-से-छोटे साये के समय से लेकर अगले दिन फिर छोटे-से-छोटे साये के होने के समय तक एक दिन (दिन-रात) होता है।

वर्तमान काल गणना के अनुसार इस (दिन-रात) काल को चौबीस भागों में बाँटा गया है। यह घण्टा कहलाता है। घण्टे के साठ भाग किये गये हैं और ऐसे एक भाग को मिनट कहते हैं। प्रत्येक मिनट को फिर साठ भागों में बाँटा गया है। यह एक सैकेण्ड का काल है।

कई गणनाओं के लिए सैकेण्ड भी एक बड़ी इकाई है। अतः सैकेण्ड का दसवाँ भाग, सौवाँ भाग इत्यादि को काल की गणना के लिए इकाइयाँ बनाया गया है।

३६० दिन का एक वर्ष माना जाता है। सौ वर्ष की एक शताब्दी मानी जाती है। परन्तु जब हम जगत्-रचना सम्बन्धी काल की गणना करना चाहेंगे तो वर्ष और शताब्दी भी एक छोटी इकाई सिद्ध होगी।

अतः इस वर्ष को, जिसे हमने ऊपर ३६० दिन-रात का बताया है, एक मानव वर्ष कहते हैं। ऐसे वर्ष को देवताओं का एक दिन-रात माना है। ३६० ऐसे वर्षों, अर्थात् देव दिन-रातों को एक देव वर्ष कहा गया है और १२,००० देव वर्षों का एक देव युग माना है।

मनुस्मृति के प्रथम अध्याय में इसका इस प्रकार वर्णन आया है—

अहोरात्रे विभजते सूर्य्यो मानुषदैविके।
रात्रिः स्वप्नाय भूतानां चेष्टायै कर्मणामहः॥
पित्र्ये रात्र्यहनी मासः प्रविभागस्तु पक्षयोः।
कर्मचेष्टास्वहः कृष्णः शुक्लः स्वप्नाय शर्वरी॥
दैवे रात्र्यहनी वर्षं प्रविभागस्तयोः पुनः।
अहस्तत्रोदगयनं रात्रिः स्याद्दक्षिणायनम्॥

मनु० १-६५, ६६, ६७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देव (परमात्मा) ने मनुष्य के लिए सूर्य द्वारा दिन और रात का निर्माण किया है। रात प्राणियों के सोने के लिए है और दिन काम करने के लिए। एक मास में पितरों का एक दिन और एक रात होती है। (शुक्ल पक्ष और कृष्ण पक्ष) दिन और रात पक्ष कहलाते हैं। शुक्ल पक्ष पितरों के काम करने का काल है और कृष्ण पक्ष सोने का। इसी प्रकार देवों के रात और दिन होते हैं। देवों के दिन-रात को उत्तरायण और दक्षिणायण कहते हैं और यह दोनों मिलकर मानवों के एक वर्ष के बराबर होता है। उत्तरायण देवों का दिन है और दक्षिणायण देवों की रात्रि है।

मनुस्मृति में ही इससे भी बडी इकाई की कल्पना की गई है—

चत्वार्याहुः सहस्राणि वर्षाणां तत्कृतं युगम्।
तस्य तावच्छती सन्ध्या संध्याशश्च तथाविधः॥
इतरेषु ससन्ध्येषु ससन्ध्यांशेषु च त्रिषु।
एकापायेन वर्तन्ते सहस्राणि शतानि च॥
यदेतत्परिसंख्यातमादावेव चतुर्युगम्।
एतद् द्वादशसाहस्रं देवानां युगमुच्यते॥
दैविकानां युगानां तु सहस्रं परिसंख्यया।
ब्राह्ममेकमहर्ज्ञेयं तावतीं रात्रिमेव च॥

मनु० १-६९, ७०, ७१,.७२

यहाँ देवों और मनुष्यों के दिन-रात के सम्बन्ध बताये हैं। यह ऊपर लिखा है। मानव का एक वर्ष देवों का एक दिन-रात है। अतः ऐसे (देवों के) ३६० दिन-रात का एक देव वर्ष होगा। अभिप्राय यह कि ३६० मानव वर्षों का एक देव वर्ष होता है।

चार हज़ार देव वर्षों का कृत युग और इसका दशांश ४०० देव वर्ष का सन्धि (युग पूर्व) काल और इतना ही संध्यांश (युग का पर काल) होता है। सब मिलाकर ४८०० देव वर्षों का सत् युग का काल है।

इस सत युग के काल से एक-एक सहस्र वर्ष कम कर और सध्या तथा संध्यांश के काल से १००-१०० वर्ष कम करने से क्रम से अन्य युगों (त्रेता, द्वापर और कलि) का परिमाण बनता है।

इस प्रकार चार युगों के परिमाणों को एक देव युग कहते हैं। इसका नाम चतुर्युगी भी है। इस चतुर्युगी अर्थात् देव युग का परिमाण १२,००० देव वर्ष होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सत् युग =४,८०० देव वर्ष ।
त्रेता =३,६०० देव वर्ष ।
द्वापर =२,४०० देव वर्ष ।
कलि युग =१,२०० देव वर्ष ।
कुल एक देव युग =१२,००० देव वर्ष ।

ऐसे सहस्र देव युगों का ब्रह्मा का एक दिन होता है और इतनी ही लम्बी ब्रह्मा की रात्रि होती है ।

ब्रह्मा का अभिप्राय परमात्मा की कर्तृ शक्ति है । इसका अभिप्राय यह निकलता है कि १,००० देव युगों (चतुर्युगियों) तक परमात्मा के जगत् की रचना रहती है और एक सहस्र देवयुग तक यह नहीं रहती ।

यहाँ यह स्मरण रखना चाहिये कि मानव दिन-रात, (धूप में गाड़ी गई कीली के छोटे-से-छोटे साये के समय से लेकर अगले दिन वैसे ही समय तक का समय काल) प्राकृतिक इकाई है । उसे मानव दिन (दिन-रात) कहते हैं । इसके अतिरिक्त शेष इकाइयाँ निश्चित करते समय अन्तरिक्ष में हो रहे परिवर्तनों से सम्बन्ध बनाने का यत्न किया गया है ।

अब इसको संक्षेप में इस प्रकार लिख सकते हैं ।

मानव दिन=कीली के छोटे-से-छोटे साये के समय से वैसे ही अगले दिन के समय तक का काल ।

३० मानव दिन=१ पितृ दिन-रात ।
१२ पितृ दिन-रात=१ देव दिन-रात (उत्तरायण+दक्षिणायण)
=३६० मानव दिन
३६० देव दिन-रात=१ देव वर्ष=३६०×१२×३०=मानव दिन
=१,२९,६०० दिन=३६० मानव वर्ष
सत् युग=सत् युग+संधि और संध्यांश काल=४,०००+४००+४००
=४८०० देव वर्ष
त्रेता युग =३,०००+३००+३००=३,६०० देव वर्ष
द्वापर =२,०००+२००+२००=२,४०० ,, ,,
कलि युग =१,०००+१००+१००=१,२०० ,, ,,
चतुर्युगी =देव युग=१२,००० देव वर्ष=१२,०००×३६०
=४३,२०,००० मानव वर्ष ।

एक सहस्र देव युग=१ ब्रह्म दिन=४,३२,००,००,००० मानव वर्ष ।
इतने ही काल की ब्रह्म रात्रि होती है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह हुआ काल परिमाण ऊपर की ओर। इसका आरम्भ किया था मानव दिन से।

अब नीचे की ओर अर्थात् दिन के छोटे भागों के नाम और काल के निश्चय करने की आवश्यकता है।

यह हम बता चुके हैं कि मध्य दिन, जब किसी गड़ी कीली का धूप में छोटे से छोटा साया बने, तब से वैसे ही अगले दिन के समय को दिन कहते हैं।

दिन के वर्तमान काल को वैज्ञानिक घण्टों, मिनटों और सैकेण्डों में नापते हैं। भारतीय शास्त्र में दिन का विभाजन इस प्रकार किया है :

निमेषा दश चाष्टौ च काष्ठा त्रिंशत्तु ताः कला।
त्रिंशत्कला मुहूर्तः स्यादहोरात्रं तु तावतः॥

मनु० १–६४

आँख झपकने के काल को निमेष कहते हैं = ०. १७° सैकेण्ड
१८ निमेष = १ काष्ठा = ३. १८६ = ३. २ सैकेण्ड
३० काष्ठा = १ कला = १. ६ मिनट = ९६ सैकेण्ड
३० कला = १ मुहूर्त = ४८ मिनट
३० मुहूर्त = १ दिन-रात = २४ घण्टे = १,४४० मिनट

निमेष तो एक फुट (पग) की भाँति एक प्राकृतिक इकाई है। सैकेण्ड एक सार्वभौमिक स्वीकार की हुई कृत्रिम इकाई है। दोनों के परिमाण का परस्पर सम्बन्ध बता दिया है। एक निमेष = ०. १७° सैकेण्ड। सात अंक के ऊपर बिन्दु का अभिप्राय है सात अनन्त बार लिखा जाना चाहिए। वैसे यह सर्वथा ठीक संकेत नहीं है।

यहाँ इतना और लिख दें तो ठीक होगा कि गणना का एक और भी ढंग है।

१ निमेष = $\frac{५}{६}$ विपल = १. १७° सैकेण्ड
१ विपल = $\frac{६}{५}$ निमेष = ३. ९८ सैकेण्ड = ४ सैकेण्ड
६० विपल = १ पल = $\frac{१}{४}$ (२.५) कला = २४ सैकेण्ड
६० पल = १ घड़ी = $\frac{१}{२}$ मुहूर्त = २४ मिनट
६० घड़ी = १ दिन = २४ घण्टे

दिन के टुकड़ों की गणना अब सार्वभौमिक इकाई सैकेण्डों, मिनटों और घण्टों में नापी जाती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिखने का अभिप्राय यह है कि काल की गणना एक निमेष से लेकर ब्रह्म दिन तक कर दी गई है। इसकी पूर्ण तालिका इस प्रकार बनती है।

१ निमेष = आँख झपकने का काल	=	१. ७° सैकेण्ड
१८ निमेष = १ काष्ठा	=	३. २ ,,
३० काष्ठा = १ कला	=	९६. ० ,,
३० कला = १ मुहूर्त	=	४८. ० मिनट
३० मुहूर्त = १ दिन-रात	=	२४. ० घण्टे
३० दिन = १ मास	=	१ पितरों का दिन-रात
१२ मास = १ वर्ष = देवी दिन-रात		
३६० वर्ष = १ देव वर्ष		
१२,००० देव वर्ष = १ देव युग = १ चतुर्युगी		
सत् युग = ४,८०० देव वर्ष		
त्रेता युग = ३,६०० ,, ,,		
द्वापर युग = २,४०० ,, ,,		
कलियुग = १,२०० ,, ,,		
कुल — १२,००० ,, ,,		
१,००० देव युग = ब्रह्म दिन	=	४,३२,००,००,००० मानव वर्ष
१,००० देव युग = ब्रह्म रात्रि	=	,, ,, ,, ,, ,, ,,

जहाँ तक गणना का प्रश्न है, वहाँ तक यह ठीक ही है। जगत् की लम्बी आयु गिनने के लिए एक नाप निर्माण किया गया है। आगे जो कुछ लिखा गया है, वर्तमान वैज्ञानिक उसे संदिग्ध मानते हैं। हम इसी विषय में लिखना चाहते हैं।

पहली बात तो यह कि ४,३२,००,००,००० मानव वर्ष तक जगत् बना रहता है। इसमें बनने का काल भी सम्मिलित है। वह काल कितना है? कितने वर्ष में सब-कुछ बन गया और कितने वर्ष तक इसको बिगड़ते लगेंगे और फिर ४,३२,००,००,००० मानव वर्ष तक यह बिगड़ा रहेगा। अर्थात् मूल प्रकृति के रूप में रहेगा, जिसका रूप हम अपने पूर्व अंशों में वर्णन कर आये हैं। बनने और बिगड़ने के काल के विषय में जो परम्परा है वह हम आगे चलकर लिखेंगे। यहाँ तो यह लिख रहे हैं कि यह परम्परा है, जिसको वर्तमान युग के वैज्ञानिक नहीं मानते।

इसी प्रकार दूसरी बात जिसको वे नहीं मानते, वह है ब्रह्म दिन के आरम्भ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होने के विषय में। भारतीय परम्परा के अनुसार ब्रह्म दिन, जिसे कल्प के नाम से भी स्मरण किया जाता है, को चौदह मन्वन्तरों में विभक्त किया गया है।

ब्रह्म दिन, जैसा कि हम ऊपर लिख आये हैं, ४,३२,००,००,००० मानव वर्ष का है। इसको १,००० देव युग (चतुर्युगियों) में भी विभक्त किया गया है। अतएव १ मन्वन्तर में १०००/१४ देव युग होंगे। एक मन्वन्तर बराबर है ७१.४२८ देव युग = ३०,८५,७१,४२८ मानव वर्ष।

ब्रह्म दिन की अवधि को १४ मन्वन्तरों में विभक्त करने का कारण यह है कि ब्रह्म दिन में इतने-इतने काल के उपरान्त जगत् की रचना में विशेष परिवर्तन होते हैं। जगत् रचना में मन्वन्तर के परिवर्तन पर परमात्मा रचना को एक विशेष दिशा देता है।

मीमांसकों का कहना है कि सात मन्वन्तर व्यतीत हो जाने के उपरान्त परिवर्तनों की दिशा ह्रास की ओर हो जायेगी और फिर प्रत्येक मन्वन्तर के उपरान्त जगत् की रचना ह्रास की ओर चलती जायेगी। अन्त में १४वें मन्वन्तर के अन्त पर पुनः तीन मूल-पदार्थ ही रह जायेंगे—परमात्मा, जीवात्माएँ और प्रकृति। प्रकृति शान्त और अचल हो जायेगी। जीवात्माएँ जो मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकीं, वे भी सो जाते हैं और परमात्मा सब-कुछ देखता, जानता और समझता हुआ ब्रह्माण्ड के किसी अन्य स्थल पर जगत् की रचना कर रहा होता है।

छः मन्वन्तर व्यतीत हो चुके हैं। प्रत्येक मन्वन्तर के आरम्भ में एक ब्रह्मा के उत्पन्न होने की कल्पना की जाती है। इस प्रकार सात ब्रह्मा अपना कार्य कर चुके हैं। प्रथम ब्रह्मा स्वयम्भुव मनु थे। उसके उपरान्त छः ब्रह्मा और हो चुके हैं। इसके नाम इस प्रकार हैं—

स्वारोचिषश्चोत्तमश्च तामसो रैवतस्तथा।
चाक्षुषश्च महातेजो विवस्वत्सुत एव च॥

मनु० १-६२

(१) स्वयम्भुव मनु, (२) स्वारोचिष, (६) उत्तम, (४) तामस, (५) रैवत, (६) चाक्षुष, (७) वैवस्वत।

कुछ विद्वानों का यह मत है कि ब्रह्मा और मनु पृथक्-पृथक् शक्तियों के नाम हैं। ब्रह्मा वे हैं जो मन्वन्तर के आरम्भ में जगत् रचना को दिशा देते हैं। और मनु वे हैं जो जो इस पृथिवी पर प्राणी सृष्टि का निर्माण करते हैं। इस प्रश्न पर विवेचना के लिए अभी पर्याप्त सामग्री नहीं है।

इस समय वैवस्वत मन्वन्तर चल रहा है। इसी बात को महाभारत में अलंकार के रूप में वर्णन किया है। ब्रह्मा के मुख से ही यह कहलाया गया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्रह्मा (शान्ति पर्व ३४७—३९,४०,४१,४२,४३ में) कहते हैं कि आप (परमात्मा) अव्यक्त से व्यक्त को उत्पन्न करने वाले हैं। आप अचिंत्य स्वरूप हैं। आप कल्याण करने के मार्ग पर चल रहे हैं। आप सम्पूर्ण प्राणियों का पालन करने वाले और सबमें व्यापक आत्मा रूप हैं। आप अयोनिज अर्थात् किसी योनि से उत्पन्न नहीं होते। आप जगत् के आधार स्वयम्भू है। मैं आपकी कृपा से उत्पन्न हुआ हूँ। मेरा प्रथम जन्म आपसे हुआ। वह द्विजों में पूजनीय हुआ। (स्वारोचिष) वह मानस जन्म था, आपके मन से उत्पन्न हुआ था। दूसरे जन्म में मैं आपके नेत्र से उत्पन्न हुआ (उत्तम)। तीसरा जन्म आपके वचन से (तामस) हुआ। चौथा जन्म कानों से (रैवत) हुआ। पाँचवाँ नासिका से (चौक्षुष) हुआ और छठा जन्म आपके अण्डे (हिरण्यगर्भ) से हुआ। सातवाँ जन्म कमल से हुआ जो वैवस्वत कहलाया।

महाभारत में लिखे उत्पत्ति स्थान और मनुस्मृति में लिखे नामों में समन्वय बनाने की आवश्यकता है। इतना तो स्पष्ट है कि सात मनु हो चुके हैं। मनु मन्वन्तरों के स्वामी माने जाते हैं, अर्थात् मन्वन्तरों में होने वाली क्रियाओं को वे सम्पन्न करते हैं।

अन्तिम मनु वैवस्वत के पुत्र कहलाये। वैवस्वत सूर्य को कहते हैं। सातवें मन्वन्तर के आरम्भ में सूर्य बन चुका था। पृथिवी बन चुकी थी। पृथिवी पर अति वृष्टि होने से पूर्ण पृथिवी जलमग्न थी। अभिप्राय यह है कि भौतिक जल और वायु बन चुके थे। पृथिवी पर, शतपथ ब्राह्मण में लिखे अनुसार फेन, मिट्टी, शुष्कापम्, ऊष, सिकता, शर्करा, अश्मा, अयः एवं औषधियाँ बन चुकी थीं।

उस समय कमल रूपी पृथिवी पर सूर्य किरणों के प्रभाव से मानवों का प्रथम व्यक्ति ब्रह्मा वैवस्वत मनु उत्पन्न हुआ। उससे वर्तमान मन्वन्तर में मानव-सृष्टि उत्पन्न हुई।

पृथिवी, सूर्य, जल, वायु पूर्ण पंच-भौतिक संसार हिरण्यगर्भ मे सूक्ष्म रूप में बनकर वैवस्वत मनु के काल से पूर्व ही स्थूल रूप में आ चुका था।

वर्तमान वैज्ञानिक इस भारतीय परम्परा को नहीं मानते। उनके न मानने का सबसे बड़ा कारण यह है कि वे प्रत्यक्ष प्रमाण को ही प्रमाण मानते हैं। और यह परम्परा अनुमान प्रमाण और शब्द प्रमाण से ही विदित है।

अनुमान प्रमाण का अर्थ है युक्ति, जिसका आधार सत्य हो। और आप्त प्रमाण का अर्थ है योगी द्रष्टाओं के कथन।

अर्थात् वर्तमान वैज्ञानिकों को पहले अनुमान प्रमाण और आप्त प्रमाण की सत्यता का दर्शन कराया जाये, तभी वे उक्त सृष्टि की काल-गणना को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानेंगे। इसके लिए इस पुस्तक में स्थान नहीं है। यहाँ हम केवल काल के विषय में ही युक्ति और प्रमाण देना चाहते हैं। हमने इस लेख में भारतीय ढंग से काल-गणना की इकाइयों के परिमाण और नाम बताये हैं और वर्तमान युग की काल-गणना में प्रयोग की जाने वाली इकाइयों से उनका सम्बन्ध बताया है।

यह बताया जा चुका है कि कल्प में १४ मन्वन्तर माने गए हैं। अतः कल्प की अवधि ४,३२,००,००,००० वर्ष को १४ से विभक्त करने पर मन्वन्तर की अवधि का ज्ञान हो जाएगा। यह बनेगी ३०,८५,७१,४२८ मानव वर्ष।

६ मन्वन्तर व्यतीत हो चुके हैं। उनकी वर्ष गणना = १,८५,१४,२८,५६८ वर्ष

अतः रचनाकाल होगा—६ मन्वन्तर = १,८५,१४,२८,५६८ वर्ष

सातवें मन्वन्तर की व्यतीत २७ चतुर्युगियाँ = ११,६६,४०,००० वर्ष

२८वीं चतुर्युगी सतयुग = १७,२८,०००

त्रेतायुग = १२,९६,०००

द्वापरयुग = ८,६४,०००

व्यतीत कलियुग = ५,०८६

३८,९३,०८६

कल्प का व्यतीत काल = १,९७,१९,६१,६५४

यह है सृष्टि की आयु सन् १९८६ ईसवी को।

गणना में प्रमाण

भारतीय काल-गणना का एक चित्र पिछली कण्डिका में प्रस्तुत किया गया है। इतने लम्बे वर्षों के काल की गणना पढ़कर आधुनिक विद्वान चकाचौंध रह जाते हैं। वे इस गणना पर दो आपत्तियाँ प्रस्तुत करते हैं। एक यह कि हिरण्यगर्भ के आरम्भ से पंचांग किसने लिखा था ? उस समय किसी मनुष्य का अस्तित्व हो ही नहीं सकता था; अतः ये गणनाएँ काल्पनिक हैं; इनमें सच्चाई का प्रमाण नहीं है। दूसरी आपत्ति यह की जाती है कि इतने वर्ष तक मनुष्य और पृथिवी टिकी कैसे रह सकी है ? ये दोनों आपत्तियाँ अल्प बुद्धि वालों के द्वारा ही की जा सकती हैं।

हिरण्यगर्भ तथा सूर्य, चन्द्र, पृथिवी इत्यादि का बनना अन्तरिक्ष की एक घटना है और यदि इसके विषय में कोई गणना हो सकती है, तो उसके प्रमाण अन्तरिक्ष में ही ढूंढने पड़ेंगे। भारतीय ज्योतिषियों ने अन्तरिक्ष का गहन अध्ययन कर उक्त गणना का ज्ञान प्राप्त किया है।

यह अध्ययन कैसे किया था ? किस-किस हिरण्यगर्भ का किस प्रकार अध्ययन करके ये परिणाम निकाले होंगे ? यह बताना कठिन है। हाँ, यह प्रमाणित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया जा सकता है कि यह गणना, प्राचीन काल में भारतवर्ष में स्वीकृत और प्रचलित हो चुकी थी। यह भी सिद्ध किया जा सकता है कि अन्य प्राचीन जातियों के विद्वानों ने इन गणनाओं को, अधिकांश रूप में, स्वीकार किया था।

प्राचीन काल में सूर्य-सिद्धान्त नाम का एक ग्रन्थ था। यह ज्योतिष शास्त्र का महान् ग्रन्थ माना जाता था। सतयुग के अन्त काल में यह लिखा गया था और अब अप्राप्य है। इसी प्राचीन सूर्य-सिद्धान्त के आधार पर वर्तमान सूर्य-सिद्धान्त लिखा गया प्रतीत होता है। दोनों सूर्य-सिद्धान्त उक्त युग-गणना का समर्थन करते हैं। नवीन सूर्य-सिद्धान्त, जो 'लाट कृत' कहा जाता है, उसमें प्राचीन सूर्य-सिद्धान्त की ही गणना लिखी है।

यह तो सर्वविख्यात है कि वेद सबसे प्राचीन ग्रन्थ हैं। इनमें भी युग-गणना उसी प्रकार है, जिस प्रकार वर्तमान ज्योतिष-शास्त्र में है।

अथर्व वेद में इस प्रकार वर्णन मिलता है—

कियता स्कम्भः प्र विवेश भूतं कियद् भविष्यदन्वाशयेऽस्य।
एकं यदंगमकृणोत् सहस्रधा कियता स्कम्भः प्र तिवेश तत्र॥

अ० १०-७-९

अर्थात्—भूत भविष्यमय काल रूपी घर, एक सहस्र खम्भों पर खड़ा है।

इसमें अलंकार के रूप में, एक कल्प में होने वाली एक सहस्र चतुर्युगियों का वर्णन किया गया है। फिर यह भी लिखा है—

"शतं तेऽयुतं हायनान् द्वेयुगे त्रीणि चत्वारि कृष्मः।"

अथर्व० ८-२-२१

अर्थात्—सौ आयुत वर्षों के आगे दो, तीन और चार की संख्या लिखने से कल्प काल आयेगा।

आयुत दस हजार का होता है। इसलिए सौ आयुत हुए १०,००,०००। दस लाख में सात अंक हैं। इसके सात शून्यों के पहले दो, तीन, चार के अंक लिखने से ४,३२,००,००,००० वर्ष होते हैं और यह एक कल्प अर्थात् ब्रह्म दिन की गणना है।

यजुर्वेद में चारों युगों के नाम आये हैं—

"...कृतायादिनवदर्षं त्रेतायं कल्पिनं द्वापरायाधि
कल्पिनम् आस्कन्दाय सभास्थाणुम्।..." ३०-१८

यह युग-गणना प्राचीन भारत वर्ष में प्रचलित थी। इसका एक प्रमाण यह भी है कि हिन्दुओं में प्रत्येक शुभ कार्य के समय संकल्प पढ़ाया जाता है और उसके शब्द इस प्रकार हैं—**"द्वितीयपरार्द्धे वैवस्वतमन्वन्तरे अष्टाविंशति कलौ युगे**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

५०६९ गताब्दे"। अर्थात् यह वैवस्वत मनु का अठाईसवाँ कलि है जिसके ५०६९ वर्ष व्यतीत चुके हैं। यह १९८६ ईसवी को कहा है।

युगों की गणना नक्षत्रों की गतियों से की गयी है। सूर्य सिद्धान्त में लिखा है—

अस्मिन् कृतयुगस्यान्ते सर्वे मध्यगता ग्रहाः।
विना तु पादमन्दोच्चान्मेषादौ तुल्यता मिताः॥

सूर्य० १-५७

सतयुग के अन्त में पाद मन्दोच्च को छोड़ कर सब ग्रहों का मध्य स्थान मेष में था।

इसी प्रकार कलियुग के विषय में लिखा है कि इसके आरम्भ में सूर्यादि सातों ग्रह एक ही राशि में थे।

महाभारत में भी ऐसा लिखा मिलता है—

ततो दिनकरैर्दीप्तैः सप्तभिर्मनुजाधिप।
पीयते सलिलं सर्वं समुद्रेषु सरित्सु च॥

वन० १८८।६७

युग की समाप्ति पर सातों सूर्य एक राशि में आ जाते हैं और तब ऊष्मा इतनी बढ़ जाती है कि पृथिवी का सब जल सूख जाता है।

इन नक्षत्रों के एकत्रित होने की गणना से एक यूरोपियन विद्वान् ने कलियुगारम्भ के काल की गणना की है।

योरोप के प्रसिद्ध ज्योतिषी बेली (Bailly) ने गणित द्वारा यह जानना चाहा कि कब सातों ग्रह एक युति में आये थे। उसकी गणना का वृत्तान्त Theogony of the Hindus by Count Bjornstjerna के पृष्ठ ३२ पर लिखा है—

> According to the astronomical calculation of the Hindus, the present period of the world, Kaliyuga, commenced 3,102 years before the birth of Christ on the 20th February at 2 hours, 27 minutes and 30 seconds, the time being thus calculated to minutes and seconds. They say that a conjunction of planets then took place, and their table show this conjunction. It was natural to say that a conjunction of the planets then took place. The calculation of the Brahmins is so exactly confirmed by our own astronomical tables that nothing but actual observation could have given so correspondent a result.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"हिन्दुओं के ज्योतिष शास्त्र की गणना के अनुसार कलियुग का आरम्भ ईसा के जन्म से ३१०२ वर्ष पहले २० फरवरी की रात को दो बज कर २७ मिनट और ३० सैकेण्ड पर हुआ था। वे (हिन्दू) कहते हैं कि उस समय नक्षत्रों का एक स्थान पर संग्रह हो जाता है। ब्राह्मणों की गिनती इतनी ठीक है कि हमारे ज्योतिषियों की गणना के अनुसार सत्य बैठती है। इसका अर्थ यह है कि उन्होंने भी नक्षत्रों की गति को देखकर ही गणना की है। अन्यथा इतनी ठीक न होती।"

सूर्य-सिद्धान्त में एक अन्य स्थान पर लिखा है—

"त्रिंशत् कृत्यो युगे भानां चक्रं प्राक्परिलम्बते।"

सू० ३-६

अर्थात्—एक महायुग (देवयुग) में भचक्र (राशि चक्र) पूर्व और पश्चिम दिशा में ३०० बार आता-जाता है। तीन सौ बार जाना और तीन सौ बार आना अर्थात् विषुवत् रेखा को ६०० बार काटता है। इससे भी युग-गणना की जा सकती है।

यहाँ इन प्रमाणों को देने का अभिप्राय यह है कि युग-गणना नक्षत्रों की गतियों से की जाती है। प्रत्येक युग के उपरान्त सात नक्षत्र एक स्थान पर एकत्रित हो जाते हैं। तब युग परिवर्तन होता है।

इस पूर्ण वृत्तान्त का अभिप्राय है कि सृष्टि रचना में प्राणी सृष्टि वैवस्वत मनु में उत्पन्न हुई। वैसे पृथिवी दूसरे मन्वन्तर में बनभी आरम्भ हो गई थी। उस समय तक हिरण्यगर्भ फटा नहीं था। हिरण्यगर्भ फटा था कल्प के सौवें भाग के व्यतीत हो जाने पर। अर्थात् पृथिवी का बनना उसी समय आरम्भ हो गया था। दूसरे मन्वन्तर में पृथिवी देवताओं से पृथक् हुई। उस समय पृथिवी का अर्थ ठोस पदार्थ था। इन ठोस पदार्थों में अन्य नक्षत्र भी लिए जाने चाहिएँ। तीसरे मन्वन्तर में पृथिवी से चन्द्र पृथक् हो गया। चौथे मन्वन्तर में पृथिवी जल से ढक गई। पाँचवें मन्वन्तर में पृथिवी जल से निकलनी आरम्भ हुई और वनस्पतियाँ उगीं। छठे में पशु और सातवें में मनुष्यों का जन्म हुआ।

इस प्रकार अपनी पृथिवी पर प्राणी अर्थात् वनस्पति की सृष्टि को हुए उतना ही काल व्यतीत हुआ है, जितना वैवस्वत मन्वन्तर को व्यतीत हो चुका है। यह काल १२,०५,३३,०६९ वर्ष है।

वर्तमान युगीन विद्वान और वैज्ञानिक इतना लम्बा काल इसको नहीं देते, परन्तु ऐसा न देने में उनके पास कोई प्रमाण नहीं हैं। इसके विपरीत प्राचीन जातियों में प्रचलित सम्वतों का अध्ययन किया जाये तो यह विश्वास होता है कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय विद्वानों की गणना में बहुत-कुछ सत्य है।

भारतीय परम्पराओं के अनुसार वनस्पति तथा प्राणी को पृथिवी पर अवतीर्ण हुए १२ करोड़ वर्ष से ऊपर हो चुके हैं।

चीन में एक प्राचीन सम्वत् माना जाता है। उसकी वर्षसंख्या ९,६०,०२,४२९ है। यह भारतीय वर्ष गणना से कुछ कम है।

खताई लोगों का सम्वत् ८,८८,४०,३०१ वर्ष है। यह चीन से कुछ कम है।

काल्डियन के प्राचीन निवासी सृष्टि-उत्पत्ति को २१५ मीरियड वर्ष मानते हैं। एक मीरियड १,००,००० वर्ष का होता है। इससे उक्त अवधि २,१५,००,००० वर्ष होती है।

जितरो ने कहा है कि उनके देश के विद्वानों के पास लिखित प्रमाण है कि मानव-सृष्टि ४,८०,००० वर्ष से है।

फिनिशिया के लोग मानते हैं कि वे उस देश में ३०,००० वर्ष से रहते हैं। ये सब तथ्य यह स्पष्ट करते हैं कि मानव-सृष्टि बहुत पुरानी है और इस विषय में भारतीय परम्परा को सत्य मानने में कोई बाधा नहीं है।

अभी तक प्राचीन जातियों में प्रचलित सम्वत् इस प्रकार बताये जा सकते हैं

यूरोप में ईसा का सम्वत् जो आज प्रचलित है	१९६८	वर्ष
मूसा के धर्म प्रचार आरम्भ का सम्वत्	३५३५	,,
कलि सम्वत्	५०६९	,,
इबरानियन सम्वत्	५९७१	,,
मिश्र वालों का वहाँ राज्य स्थापित करने का सम्वत्	२८६२१	,,
फिनीशिया में जाकर बसने का सम्वत्	३००००	,,
ईरान के प्रथम राजा का सम्वत्	१८९९४७	,,
काल्डियन सम्वत् (ज्योतिषियों की गणना से)	४७००००	,,
काल्डियन का पृथिवी उत्पत्ति काल	२१५०००००	,,
खताई सम्वत्	८८८४०३४०	,,
चीन के प्रथम राजा का सम्वत्	९६००२४६८	,,
भारतीय परम्परा वैवस्वत मनु सम्वत्	१२०५३३०६९	,,
,, ,, संकल्प सम्वत्	१९७२९४००६९	,,

इससे एक बात तो स्पष्ट है कि भारतीय परम्परा सृष्टि की उत्पत्ति और पृथ्वी के बनने तथा उस पर मानव-सृष्टि का काल अन्य सब प्राचीन जातियों से अधिक बताती है। वर्तमान वैज्ञानिक ढंग से अन्वेषण करने वाले कुछ विद्वान भी भारतीय परम्परा का समर्थन करते प्रतीत होते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाबू उमेशचन्द्र विद्यारत्न अपनी पुस्तक 'मानवेर आदि जन्म भूमि' के पृष्ठ २८ पर लिखते हैं कि सामवेद की आयु एक लाख वर्ष से कम नहीं।

अविनाश बाबू अपनी पुस्तक 'Rigvedic India' (pp. ५५६-५५७) में लिखते हैं कि ऋग्वेद के प्राचीन सूक्त उस समय लिखे गये, जिस समय राजस्थान समुद्र के नीचे था। वह 'टर्शरी' युग था। उनका अनुमान है कि यह युग आज से तीन-चार लाख वर्ष पूर्व था। भू-गर्भ सम्बन्धी साक्षियों से यह सिद्ध होता है कि संसार और भारत भूमि में 'टर्शरी' युग मायोसीन और प्लायोसीन विभाग में मनुष्य उन्नत अवस्था में था।

यही लेखक अपनी पुस्तक के पृष्ठ २३० पर लिखता है कि पूर्व की ऋग्वैदिक सभ्यता का काल इतनी दूर तक चला जाता है कि वह भूतकाल के अन्धकार में विलीन होता प्रतीत होता है। उसे कम-से-कम लाखों वर्ष व्यतीत हो चुके हैं। इसमें सन्देह करने को कोई स्थान नहीं। पुनः आप पृष्ठ ५५८ पर लिखते हैं—

> This goes to confirm the popular belief that the Vedas are eternal and not ascribable to any human agency (apaurusheya) and that they emanated from Brahma, the Creator Himself.

(इससे यह सिद्ध होता है कि वेद अनादि हैं और वे किसी मानव प्रयास का फल नहीं। वे अपौरुषेय हैं अर्थात् परमात्मा द्वारा दिये गये हैं।)

हमारे कथन का अभिप्राय यह है कि भारतीय परम्परा में ज्योतिष शास्त्र का और अन्य भारतीय ग्रन्थों का प्रमाण है। संसार की अन्य प्राचीन जातियों की साक्षी भी है और वर्तमान युग के वैज्ञानिक भी भारतीय परम्परा को ही ठीक मानते हैं। जो भी विद्वान पक्षपात रहित होकर बुद्धि का प्रयोग करेगा, वह भारतीय परम्परा को गलत नहीं कह सकता।

जो बात वर्तमान युग के शिक्षित वर्ग को परेशान करती है वह यह है कि कल्पारम्भ और पृथ्वी के बनने तथा उस पर मनुष्य-सृष्टि होने के काल की गणना किस प्रकार की होगी? इस विषय में हमने बताया है कि नक्षत्रों की गति से ही यह पता किया गया है। सूर्य-सिद्धान्त में यह लिखा है—

युगे सूर्यज्ञशुक्राणां खचतुष्कर दार्णवः।
कुजार्किगुरुशीघ्राणां भगणाः पूर्वयाविनाम्॥ (१-१)

अर्थात् एक चतुर्युगी में सूर्य, बुद्ध, शुक्र, मंगल, शनि और बृहस्पति ४,३२,००० भगण करते हैं। यह चतुर्युगी की गणना है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह गणना कल्पना मात्र नहीं है। कुछ विदेशी विद्वान् भी इसी परिणाम पर पहुँचे हैं। पारसियों के शास्त्र में लिखा है कि संसार की आयु १२,००० वर्ष है।

तैत्तिरीय ब्राह्मण में लिखा है—

एकं वा एतद्देवानामहः यत्संवत्सरः ३।९।२२

अर्थात् सम्वत्सर (एक मानव वर्ष) देवताओं का एक दिन है। अतः देवताओं का एक वर्ष ३६० मानव वर्ष के तुल्य है। हम यह बता चुके हैं कि १२,००० देव वर्षों का देव युग है। अतः पारसियों के शास्त्र की बात का समर्थन तैत्तिरीय ब्राह्मण में भी मिलता है।

यह हम बता चुके हैं कि १२,००० देव वर्ष = १२००० × ३६० = ४३,२०,००० मानव वर्ष। यह एक चतुर्युगी की अवधि है।

बाइबल में लिखा है कि मनुष्य के बनने तक ६ दिन व्यतीत हो सातवाँ दिन जा रहा था। यही बात हम अपनी ज्योतिष की गणना में लिख चुके हैं कि छः मन्वन्तर व्यतीत हो चुके हैं और सातवाँ मन्वन्तर चल रहा है। यह हम आगे चलकर बतायेंगे कि इस सातवें मन्वन्तर में प्राणी-जगत् उत्पन्न हुआ था।

यहाँ बाइबल की कुछ पंक्तियाँ लिख दें तो उपयुक्त होगा। बाइबल की उत्पत्ति की पुस्तक के प्रथम अध्याय में लिखा है—

(1) In the beginning God created the heavens and the earth.

(सर्वप्रथम परमात्मा ने द्युलोक और भूलोक की सृष्टि की।)

मनुस्मृति में लिखा है—

ताभ्यां स शकलाभ्यां च दिवं भूमिं च निर्ममे।
मध्ये व्योम दिशश्चाष्टावपां स्थानं च शाश्वतम्॥ १।१३

परमात्मा ने (उस अण्डे के दो टुकड़े कर) स्वर्ग तथा भूमि की सृष्टि की। मध्य में आकाश, आठ दिशाएँ तथा समुद्र की सृष्टि की।

(2) And the earth was without form and void and darkness was on the face of the deep. And the Spirit of God moved upon the face of the waters.

(उस समय भूलोक रूपरहित था और चारों ओर अन्धकार था। गहरा समुद्र था और परमात्मा उस समुद्र पर विचर रहा था।)

मनुस्मृति में लिखा है—

सोऽभिध्याय शरीरात्स्वात्सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः।
अप एव ससर्जाऽऽदौ तासु बीजमवासृजत॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तदण्डमभवद्धैमं सहस्रांशुसमप्रभम् ।
तस्मिञ्जज्ञे स्वयं ब्रह्मा सर्वलोकपितामहः ॥
आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः
ता यदस्यायनं पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः ॥ १—८ से १०

(उस परमात्मा ने अनेक प्रकार की प्रजाओं की सृष्टि करने की इच्छा से सबसे प्रथम जल की सृष्टि की और उसमें बीज छोड़ा ।

वह बीज सहस्रों सूर्य के समान प्रकाश वाला, सुवर्ण के समान शुद्ध अण्डा हो गया । उसमें सम्पूर्ण लोकों की सृष्टि करने वाले ब्रह्मा उत्पन्न हुए ।

जल को नारा कहते हैं क्योंकि वह नर (परमात्मा) की सन्तान है । जल परमात्मा का प्रथम आश्रय स्थान है इस कारण परमात्मा को नारायण कहते हैं।

उक्त उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि बाइबल का कथन अधूरा तथा विकृत है । आगे-पीछे भी है । अन्धकार की अवस्था तथा परमात्मा का समुद्रपर विचरण पृथिवी, नक्षत्र, देवता आदि के बनने से पहले था । 'जगत् की रचना' अध्याय में हमने बताया है कि जल तथा समुद्र किसको कहते हैं । आपा और महत् ही जल तथा समुद्र हैं ।

बाइबल में लिखा है—

(3) And God said, let there be light and there was light;

(4) And God said, let there be a firmament in the midst of waters and let it divide water from waters.

(परमात्मा ने कहा कि प्रकाश हो और प्रकाश हो गया । समुद्र में आकाश का निर्माण हो । समुद्र से समुद्र पृथक् हो ।)

मनुस्मृति में लिखा है—

ततः स्वयम्भूर्भगवा नव्यक्तो व्यञ्जयन्निदम् ।
महाभूतादि वृत्तौजाः प्रादुरासीत्तमोनुदः ॥ १-६

(तब स्वयम्भू, अव्यक्त, अपरिमित सामर्थ्य वाले और अन्धकार दूर करने वाले परमात्मा आकाशादि महाभूतों को व्यक्त करते हुए प्रकट हुए ।)

बाइबल का कथन आगे-पीछे तथा अस्पष्ट होते हुए भी उसी प्रकार है जैसा कि भारतीय शास्त्रों में वर्णित है ।

यह सब लिखने का अभिप्राय यह है कि प्राचीन काल में सृष्टि रचना काल के विषय में लगभग सब देशों में समान ज्ञान था । ठीक और स्पष्ट गणना तो भारतीय शास्त्रों में ही लिखी है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

: ३ :

पृथिवी की आयु

पृथिवी की आयु के विषय में इसके कई लक्षणों से वैज्ञानिकों ने अनुमान लगाने का प्रयत्न किया है। इसके कुछ आँकड़े 'The Age of the Earth' पुस्तक में इस प्रकार दिये हैं—

सूर्य ताप की गणना के आधार पर पृथिवी की आयु १८ से २० मिलियन वर्ष = २,००,००,००० वर्ष

भू ताप के आधार पर " २० से ६० मिलियन वर्ष = ६,००,००,००० "

समुद्र जल " " १०० " " = १०,००,००,००० "

रेडियो ऐक्टिविटी " ३७० " " = ३७,००,००,००० "

वैज्ञानिक नित्य नये ढंग से पृथिवी की आयु का अनुमान लगा रहे हैं और प्रत्येक आधुनिक उपाय पृथिवी की आयु को अधिकाधिक लम्बा प्रकट करता है। इन गणनाओं से भी भारतीय शास्त्रों द्वारा वर्णित पृथिवी की आयु प्रमाणित हो रही है। भारतीय गणना के अनुसार कल्पारम्भ से एक सम्वत्सर के उपरान्त हिरण्यगर्भ फटा था, जब पृथिवी और देवता पृथक्-पृथक् हुए। कल्पारम्भ को हुए १,९७,२९,४०,०६९ वर्ष हो चुके हैं। छः मन्वन्तर व्यतीत हो चुके हैं तथा सातवें मन्वन्तर का कलियुग चल रहा है। यह हम पूर्व-कण्डिका में बता चुके हैं।

इसमें से एक सम्वत्सर अर्थात् ब्रह्म दिन का एक सौवां भाग (४,३२,००,००० वर्ष) निकाल दें तो (१,९७,२९,४०,०६९—४,३२,००,०००) १,९२,९७,४०,-०६९ वर्ष शेष रहते हैं। यह है भारतीय शास्त्रानुसार पृथिवी की आज आयु। परन्तु इस पर वनस्पति, पशु, पक्षी इत्यादि बहुत बाद में उत्पन्न हुए।

१,९२,९७,४०,०६९ वर्ष तो पृथिवी को, हिरण्यगर्भ के फटने पर उससे पृथक् होने का काल है। इसके उपरान्त पृथिवी ठण्डी हुई; साथ ही अर्ध तरलावस्था से ठोस अवस्था में हुई। यह सब द्वितीय मन्वन्तर में होता रहा।

यहाँ मन्वन्तर की अवधि भी गिन डालें तो अच्छा रहेगा। पूर्ण ब्रह्म दिन = ४,३२,००,००,००० वर्ष। इस पूर्ण काल को १४ मन्वन्तरों में बाँटा गया है। अतः एक मन्वन्तर होगा ४,३२,००,००,००० का १४ वां भाग = ३०,८५,७१,४२८·०६ वर्ष।

यह हमने लिखा है कि पृथिवी हिरण्यगर्भ से पृथक् हुई थी कल्पारम्भ से ४,३२,००,००० वर्ष उपरान्त। अभिप्राय यह है कि यह घटना दूसरे मन्वन्तर में घटी और इसी मन्वन्तर में पृथिवी ठण्डी होने लगी थी तथा चाँद इससे पृथक्

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुआ था। भौतिक जल और वायु पाँचवें मन्वन्तर में बने। छठे मन्वन्तर में जल बरसा और पृथिवी जल मग्न हो गयी। सातवें मन्वन्तर में जल सूखने लगा और जल में से निकल रही कमल समान पृथिवी पर ब्रह्मा उत्पन्न हुए। तदनन्तर वनस्पतियाँ तथा इतर जीव-जन्तु बने और अन्त में बना मानव।

यह सारा वर्णन महाभारत में एक अलंकार के रूप में इस प्रकार लिखा है।

सातवें मन्वन्तर में ब्रह्मा देवताओं से प्रसारित वेद लिपि बद्ध कर रहा था। इस समय मधु और केटभ नाम के दो दैत्य वहाँ आये और वेदों का हरण कर ले गये। अतः ब्रह्मा बहुत दुःखी हुए। उन्होंने परमात्मा से कहा कि वेदों को इन दैत्यों से छुड़ायें। ब्रह्मा की प्रार्थना इस प्रकार लिखी है—

ओ३म् नमस्ते ब्रह्महृदय नमस्ते मम पूर्वज।
लोकाद्य भुवनश्रेष्ठ सांख्ययोगनिधे प्रभो॥
व्यक्ताव्यक्तकराचिन्त्य क्षेमं पन्थानमास्थित।
विश्वभुक् सर्वभूतानामन्तरात्मन्नयोनिज॥
अहं प्रसादजस्तुभ्यं लोकधाम स्वयम्भुवः।
त्वत्तो मे मानसं जन्म प्रथमं द्विजपूजितम्॥
चाक्षुषं वै द्वितीयं मे जन्म चासीत् पुरातनम्।
त्वत्प्रसादात् तु मे जन्म तृतीयं वाचिकं महत्॥
त्वत्तः श्रवणजं चापि चतुर्थं जन्म मे विभो॥
नासिक्यं चापि मे जन्म त्वत्तः परममुच्यते।
अण्डजं चापि मे जन्मत्वत्तः षष्ठं विनिर्मितम्॥
इदं च सप्तमं जन्म पद्मजन्मेति वै प्रभो।
सर्गे सर्गे ह्यहं पुत्रस्तव त्रिगुणवर्जित॥

महा भा० शा० ३४७-३८,३९,४०,४१,४२,४३

अर्थात्—हे चेतन स्वरूप परमात्मा! वेद आपका हृदय है। आप मेरे पूर्वज हैं, मैं आपको नमस्कार करता हूँ। आप जगत् के निर्माण करने वाले हैं। आप व्यक्ताव्यक्त जगत् का कल्याण करने वाले हैं। विश्वपालक और सम्पूर्ण प्राणियों के पालक हैं। आपकी कृपा से मेरा जन्म हुआ है। मेरे सात जन्म हो चुके हैं। प्रथम जन्म में मैं आपके मन से उत्पन्न हुआ था। यह द्विजों द्वारा सम्मानित था। दूसरा जन्म आपके नेत्र से हुआ। तीसरा जन्म आपकी वाणी से हुआ था। तदनन्तर चौथा जन्म आपके कानों से हुआ। पाँचवाँ नासिका से हुआ था। छठा आपके ब्रह्माण्ड से हुआ था। सातवाँ जन्म कमल से हुआ है।

ये जन्म मन्वन्तरों में हो रहे परिवर्तनों के प्रतीक हैं। इन्हीं से हमारा अनु-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मान है कि पाँचवें मन्वन्तर में वायु और जल उत्पन्न हुए और छठे मन्वन्तर में जल पूर्ण पृथिवी-मण्डल पर छा गया। सातवें मन्वन्तर में जल के सूखने पर कमल समान पृथिवी पर सृष्टि उत्पन्न हुई।

इसी के भाव के श्लोक मनुस्मृति में भी हैं—

स्वायम्भुवस्यास्य मनोः षड् वंश्या मनवोऽपरे।
सृष्टवन्तः प्रजाः स्वा महात्मानो महौजसः॥
स्वारोचिषश्चोत्तमश्च तामसो रैवतस्तथा।
चाक्षुषश्च महातेजा विवस्वत्सुत एव च॥ १-६१, ६२

ब्रह्मा का पहला जन्म साक्षात् परमात्मा (नारायण) से हुआ। तब इसका नाम स्वयम्भुव था। इसके उपरान्त छः मनु और हुए। उन्होंने भी अपनी-अपनी सृष्टि की। उनके नाम हैं—स्वारोचि, उत्तम, तामस्, रैवत, चाक्षुष, वैवस्वत।

इस पूर्ण कथा का अभिप्राय यह है कि कल्पारम्भ से सृष्टि रचना में सात मोड़ आ चुके हैं। प्रत्येक मोड़ के समय परमात्मा की विशेष शक्ति का प्रादुर्भाव होता है। उस शक्ति को ब्रह्मा कहते हैं। आरम्भ में वह शक्ति महत् रूपी समुद्र में स्थित हो एक सम्वत्सर पर्यन्त कार्य करती रहती है। तदनन्तर रचना में मोड़ आते रहे हैं। वैवस्वत मनु की उत्पत्ति और कमल की व्याख्या इस प्रकार लिखी है—

मानसस्येह या मूर्तिर्ब्रह्मत्वं समुपागता।
तस्यासनविधानार्थं पृथिवी पद्ममुच्यते॥
कर्णिका तस्य पद्मस्य मेरुर्गगनमुच्छ्रितः।
तस्य मध्ये स्थितो लोकान् सृजते जगतः प्रभुः॥

महा भा० शा० १८२-३७,३८

ब्रह्मा के इस रूप से मानस देव उत्पन्न हुआ। ब्रह्मा के आसन के लिये पृथिवी को ही कमल कहते हैं। इस कमल की कर्णिका मेरु पर्वत है, जो आकाश में बहुत ऊँचे तक गया है। उसी के मध्य भाग पर स्थित होकर जगदीश्वर ब्रह्मा सम्पूर्ण लोकों की सृष्टि करता है।

इसका अर्थ यह है कि जब सातवें मन्वन्तर में जल सूखने लगा, तब जल से निकली भूमि कमल थी। उस पर परमात्मा की कर्तृत्व शक्ति (ब्रह्मा) द्वारा प्राणी की रचना हुई।

न सस्यानि न गोरक्षा न कृषिर्न वणिक्पथः।
चाक्षुषस्यान्तरे पूर्वम् एतदासीत् पुरा किल॥
वैवस्वतेऽन्तरे तस्मिन् सर्वस्यैतस्य संभवः॥

वायु० ६२-१७२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चाक्षुष्य में और पहले गौ, कृषि और वनस्पतियाँ नहीं थीं। वैवस्वत में उन सबकी उत्पत्ति हुई।

यहाँ मधु और कैटभ द्वारा वेदों के हरण किये जाने की व्याख्या भी लिख दें तो ठीक होगा। वेद कैसे पृथिवी पर आये? यह हम जगत् रचना के प्रसंग में लिख चुके हैं। वेद देवताओं (अग्नि, आदित्य और अंगिरा) द्वारा उच्चारित हो तरंगों द्वारा पृथिवी पर आ रहे थे। पृथिवी पर ब्रह्मा (परमात्मा की शक्ति) इनको मानवी भाषा में रूपान्तरित कर ऋषियों को पढ़ा रहा था। वेद पढ़ने वाले ऋषि छः थे। कालान्तर में उन्होंने अन्य मानवों को वेदों का ज्ञान दिया।

जब ब्रह्मा वेदों को ग्रहण कर रहे थे, उस समय अन्तरिक्ष की विरोधी शक्तियाँ (मधु, कैटभ) वेद प्रसारण में बाधा खड़ी करने लगीं तो ब्रह्मा ने परमात्मा श्री हरि से प्रार्थना की कि वे उस बाधा का निवारण करें। वह बाधा परमात्मा के ह्यग्रीव अवतार से निवारण हुई। ह्यग्रीव का अर्थ सूर्य की रश्मियाँ हैं। अर्थात् जब वेदों की तरंगों का पृथिवी पर आना किसी कारण से रुका तो सूर्य ने उस बाधा को छिन्न-भिन्न कर पुनः वेदों का यहाँ आना सुगम कर दिया।

: ४ :

पृथिवी पर सृष्टि रचना

हमने ऊपर की कण्डिका में यह लिखा है कि पृथिवी को बने १,९२,९७,४०,०६९ वर्ष व्यतीत हो चुके हैं। इस पर जल और वायु पाँचवें मन्वन्तर में बने। छठे मन्वन्तर में वह सब जल वाष्प बनकर आकाश में छा गया। तदनन्तर वर्षा के रूप में पृथिवी पर आया और पृथिवी जलमग्न हो गयी। सातवें मन्वन्तर में जल सूखने लगा और ब्रह्मा ने इस पर वनस्पतियाँ उत्पन्न करनी आरम्भ कीं।

वनस्पतियाँ कैसे उत्पन्न हुईं? इनका बीज कहाँ से आया? इस विषय का भी शास्त्र में उल्लेख है।

जो पृथिवी जल से निकली, वह बहुत कम थी। उस समय यह आर्द्रा थी। शतपथ ब्राह्मण में उस समय का संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार मिलता है:

स श्रान्तस्तेपानः फ़ेनमसृजत।·····स श्रान्तस्तेपानो मृदं शुष्का-पयूष सिक्तं शर्कराम् अश्मानम् अयो हिरण्यम्-ओषधि-वनस्पति-असृजत। तेनेमां पृथिवीं प्राच्छादयत॥ ता वा एता नव सृष्टयः॥ ६।१।११।१३,१४

अर्थ है—उस श्रान्त और तप करते हुए प्रजापति ने (१) फेन को उत्पन्न किया·····उस श्रान्त और तप करते हुए ने (२) मृद् (३) शुष्कायम् (४) ऊषा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(५) सिकेता (६) शर्करा (७) अश्मा (८) अयः तथा हिरण्य और (९) औषधि-वनस्पति उत्पन्न की। इनसे पृथिवी ढक गयी। ये नौ सृष्टियाँ हैं।[1]

जल सूखने पर फेन (कीचड़) और फिर उसके बाद क्रमशः अगले रूप बने। उस समय पृथिवी अल्पः थी। अर्थात् बहुत थोड़ा भाग ही जल से बाहर निकला था और इस पर औषधियाँ (वनस्पतियाँ) उत्पन्न हुईं।

अथ वै तर्हि अल्पा पृथिव्यासीद् अजाता औषधयः।

तै०-सं० २-१-२

अर्थ है—पृथिवी पर औषधियाँ द्यु-लोक से यहाँ आयीं।

इस विषय में शास्त्र का प्रमाण इस प्रकार है :

सोम ओषधीभिरुदक्रामत् तां०॥ अथर्व० १९-१९-५

सोम से औषधियाँ उत्पन्न हुईं।

सोम के विषय में जेमिनीय ब्राह्मण में लिखा है—

सोमं वै राजनं यत् सुपर्ण आहरत् समभिनत् तस्य वा विपुणो अपतंस्ता एवेमा औषधयो भवन्। सर्वा उ ह वै सौम्या ओषधयः।

जेमिनीय ब्राह्मण १-३५५[2]

अर्थात्—सोम राज का सुपर्ण ने आहरण तथा भेदन किया था। उसके जो छींटे गिरे वे ही औषधियाँ हुईं। सब औषधियाँ सोम हैं, अर्थात् सोम से उत्पन्न हुई हैं।

इससे यही समझ में आता है कि सोम अन्तरिक्ष में स्थित कोई देवता है और सुपर्ण (परमात्मा) ने उसका आहरण और भेदन किया। उसमें से जो छींटे पृथिवी पर पड़े वे औषधियाँ बन गयीं।

पृथिवी पर से जल का सूखना पृथिवी का नग्न होना है। उसका उक्त (शतपथ ब्राह्मण-वर्णित) नौ अवस्थाओं में से गुज़रना और इस प्रकार प्राणी की सृष्टि के योग्य तैयार होना, कितने काल में हुआ होगा यह अनुसन्धान करने योग्य विषय है।

यह तो स्पष्ट है कि यह सब-कुछ सातवें मन्वन्तर में हुआ। इसके होने में कितनी चतुर्युगियाँ व्यतीत हो गयी होंगी, कहना कठिन है। ज्योतिष गणना के अनुसार इस मन्वन्तर की २७ चतुर्युगियाँ व्यतीत हो चुकी हैं और यह २८वीं चतुर्युगी चल रही है।

---

1. पं० भगवद्दत रचित वेद विद्या निदर्शन से उद्धृत।
2. पं० भगवद्दत जी के वेद-विद्या-निदर्शन से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्भवतः अट्ठाईसवीं चतुर्युगी के आरम्भ में प्राणी उत्पन्न हुए। प्राणी विवस्वान (सूर्य) के प्रयत्न से उत्पन्न हुए। ये सब प्राणी कैसे उत्पन्न हुए ? इस विषय में यह कहा गया है कि पहले विराट पुरुष बना और उसके फटने से सब प्राणी युवा अवस्था में बने।

श्रीमद्भागवत् पुराण में एक साहित्यिक कल्पना की गयी है। उसका साहित्यिक रूप उतारकर केवल ऐतिहासिक रूप देखा जाये तो बात स्पष्ट हो जायेगी। हम वह पूर्ण वृत्तान्त यथावत् उद्धृत कर रहे हैं। अन्त में हम पूर्ण वृत्तान्त में से ऐतिहासिक तथ्य वर्णन करेंगे।

लिखा है—

एते देवाः कला विष्णोः कालमायांशलिङ्गिनः।
नानात्वात्स्वक्रियानीशाः प्रोचुः प्राञ्जलयोविभुम्॥

भा० पु० स्कन्ध ३ ख० ५ श्लोक ३७

ये देव गण (जो महत् से बने (मनु०-१।१३),परमात्मा की कला (योग्यता) से बने। ये भगवान् की माया (शक्ति) का ही अंश हैं। जब ये आगे क्रिया चलाने में योग्य नहीं हुए तो ये हाथ जोड़ परमात्मा से प्रार्थना करने लगे।

इसके बाद देवताओं (सूर्य, चन्द्र, मरुत, इन्द्र, पृथिवी इत्यादि) की प्रार्थना लिखी है। उस प्रार्थना के उपरान्त परमात्मा ने क्या किया ? यह लिखा है—

इति तासां स्वशक्तीनां सतीनामसमेत्यसः।
प्रसुप्तलोकतन्त्राणां निशाम्य गतिमीश्वरः॥
कालसंज्ञां तदा देवीं बिभ्रच्छक्तिमुरुक्रमः।
त्रयोविंशतितत्त्वानां गणं युगपदाविशत॥
सोऽनुप्रविष्टो भगवांश्चेष्टारूपेण तं गणम्।
भिन्नं संयोजयामास सुप्तं कर्म प्रबोधयन्॥

भा० पु० ३-६-१,२,३

परपात्मा ने देखा कि तेईस गण बन गये हैं। (सांख्य दर्शन १-६१ में चौबीस गण लिखे हैं। चौबीसवाँ है महान्। यह २३ में नहीं गिना गया। तीन अहंकार, दस इन्द्रियाँ, पाँच तन्मात्राएँ तथा पाँच महाभूत।)

महत् को इस कारण नहीं गिना गया क्योंकि यह मन है और जीवात्मा से संयुक्त हो जाता है। यह जगत् रचना में गण नहीं कहा गया। सांख्य ने इसे २४वां गण कहा है, परन्तु सांख्य ने जीवात्मा को २५वां गण माना है। भागवत् पुराण के लेखक ने इन दोनों को पृथक् रखकर सृष्टि की रचना तेईस गणों से हुई कही है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परमात्मा ने देखा कि ये तेईस गण बन गये; परन्तु इनमें संयोग नहीं हो रहा। अतः प्राणी का शरीर नहीं बन पा रहा। इस कारण उचित काल देखकर इनमें अपनी क्रिया शक्ति से संयोग उत्पन्न किया।

प्रबुद्धकर्मा दैवेन त्रयोविंशतिको गणः।
प्रेरितोऽजनयत्स्वाभिर्मात्राभिरधिपूरुषम्॥

(भा० पु० ३।६।४)

जब वे तेईस गण कर्म में लग गये तो परमात्मा की प्रेरणा से अधि-पुरुष बना।

इस अधिपुरुष को ही विराट पुरुष कहा जाता है। यह विराट पुरुष उन तेईस गणों के संयोग से ही बना है। यह प्राणी का शरीर बना और उसमें चौबीसवाँ गण मन और पच्चीसवाँ गण पुरुष (जीवात्मा) प्रवेश हुए तो प्राणी बन गया।

सब प्राणी एक ही समय में युवावस्था में उत्पन्न हुए।

यह घटना सातवें मन्वन्तर सम्भवतया इसकी २८वीं चतुर्युगी में हुई। महाभारत (शा० १०२-३७,३८) के अनुसार जल से निकलती पृथिवी रूपी कमल पर बैठकर ब्रह्मा ने रचना की। (महा० भा० शा०—३४७-३८ ३९, ४०, ४१,४२,४३) सातवें ब्रह्मा कमल पर उत्पन्न हुए। इनसे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि सातवें मन्वन्तर में ही प्राणी सृष्टि बनी। इस मन्वन्तर में पहले वनस्पतियाँ उत्पन्न हुईं। यह हम बता आये हैं कि सोम द्वारा अन्तरिक्ष से वनस्पतियाँ इस पृथिवी पर आयीं। तदनन्तर प्राणी हुए। यह भी हमने इसी अध्याय में लिखा है।

ऐसा प्रतीत होता है कि इतर जीव-जन्तु वनस्पतियों के उपरान्त और मानव उन सबके अन्त में उत्पन्न हुए। पर्व की सत्ताईस चतुर्युगियों में यह सब होता रहा। **मानव अट्ठाइसवीं चतुर्युगी के आरम्भ में हुए।**

यहाँ इतना समझ लेना चाहिये कि सृष्टि उत्पत्ति के इस ढंग में और विकासवाद के अनुसार सृष्टि उत्पत्ति में विशेष अन्तर वही है जो साधारण विकासवादियों और डाक्टर एगासिज़ द्वारा अपनी पुस्तक 'Principles of Zoology में उस उद्धरण से प्रतीत होता है। अर्थात् पहले वनस्पतियाँ हुईं। तदनन्तर कीट, पतंग और पशु-पक्षी हुए। अन्त में मनुष्य की उत्पत्ति हुई। परन्तु यह उत्पत्ति एक से दूसरे में नहीं हुई। साथ ही जो भी जन्तु अथवा मानव जब उत्पन्न हुआ तो पूर्ण ही हुआ। यह ठीक है कि सब प्राणी एक समान सामर्थ्यवान् नहीं हुए। जो दुर्बल और दोषयुक्त थे, वे मर गये और उनकी जाति चल नहीं सकी। जो सबल और योग्य थे, वे बच गये। यह बात नहीं है कि योग्य अयोग्यों की सन्तान थे।

मनुष्य सृष्टि वर्तमान चतुर्युगी के आरम्भ में हुई, यह अनुमान है। यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्भव है कि पहली सत्ताईस चतुर्युगियों में भी मानव रहे हों, परन्तु चतुर्युगियों के बदलने पर महान् विप्लव हुए हैं और उन चतुर्युगियों में के जीव-जन्तु बच सके होंगे अथवा नहीं, कहा नहीं जा सकता।

हाँ, वर्तमान चतुर्युगी के सत्युग में मानव सृष्टि हुई। इसके प्रमाण मिलते हैं। इस अनुमान को यदि ठीक मान लिया जाये तो पृथिवी पर मानव को उत्पन्न हुए निम्न काल व्यतीत हुआ कहा जायेगा—

वर्तमान चतुर्युगी के सत्युग के	१७,२८,०००	मानव वर्ष
,, ,, त्रेतायुग के	१२,९६,०००	,, ,,
,, ,, द्वापरयुग के	८,६४,०००	,, ,,
,, ,, कलियुग के	५,०६९	,, ,,
कुल—	३८,९३,०६९	मानव वर्ष

वर्तमान युग के इतिहास लिखने वालों की बुद्धि, इतने वर्षों की बात सुनकर चकराने लगती है। वे इस गणना को स्वीकार नहीं करते। उनका कहना है कि सज्ञान मानव की सृष्टि आज से दस-बीस सहस्र वर्ष से अधिक पुरानी नहीं है।

सज्ञान से उनका अभिप्राय है कि जब मानव बौद्धिक वार्तालाप करने एवं व्यवहार रखने योग्य हुआ। इनके कथनानुसार ऋग्वेद इस पृथिवी पर सबसे पुरानी पुस्तक है। इसके संकलन होने से पहले भी मानव तो थे, परन्तु वे पशुओं से मानव कलेवर में आ रहे थे। ऋग्वेद से पूर्व मनुष्य, जो कुछ भी था, न जानने योग्य था। और मैक्समूलर ने ऋग्वेद का काल ईसा से १५०० वर्ष पूर्व माना है। बाल गंगाधर तिलक ने ओरायन में ४,००० वर्ष और उत्तर ध्रुव में १०,००० वर्ष माना है। उमेशचन्द्र दत्त विद्यारत्न ने (सोमदेव में) १,००,००० वर्ष और पावगी महोदय ने २४,००० वर्ष माना है।

अविनाश बाबू लिखते हैं—

> The age of the early Rigvedic civilization goes back to a period of time which is lost in the impenetrable darkness of the past to which hundreds of thousands, if not quite a million of years, can be safely assigned, without one being accused of romancing wildly.[1]

1. R. I. page 230

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

This goes to confirm the popular belief that the Vedas are eternal and not ascribable to any human agency (apourushey) and that they emanated from Brahma, the Creator himself.

अर्थात्—ऋग्वैदिक सभ्यता का समय इतना दूर, अदृश्य, प्राचीन काल से चला आता है, जिसको करोड़ों नहीं तो लाखों वर्ष कहा ही जा सकता है। ऐसा कहते हुए इस बात के आरोप का भय नहीं कि यह कल्पना भ्रम से कही जा रही है।

इससे यह सिद्ध होता है कि भारत में प्रचलित विचार कि वेद किसी मानव के बनाये नहीं, अपितु अपौरुषेय हैं, सत्य है। ये साक्षात् ब्रह्मा से उत्पन्न हुए हैं।

अविनाश बाबू योरोपियन ढंग से अन्वेषण करने वालों में से हैं। उनका कहना है कि वेदों में सरस्वती नदी सीधी समुद्र में मिलती लिखी है। अर्थात् वेद उस समय कहे गये जब कि राजस्थान सागर के नीचे था। यह भू-गर्भ के वैज्ञानिकों के अनुसार पृथिवी के टर्शरी युग में था। इस समय भारत में वेद लिखने वाले उपस्थित थे और उन्हीं वैज्ञानिकों के अनुसार इसको लाखों वर्ष हो चुके हैं।

हम इस युक्ति को इस कारण मान्यता नहीं देते क्योंकि हमारे विचार में वेदों में प्रयुक्त सरस्वती एवं समुद्र शब्द भौगोलिक नहीं हैं। ये अन्तरिक्ष में घटने वाली घटनाओं के प्रतीक हैं।

ऊपर जो कुछ लिखा है, वह तो योरोपियन वैज्ञानिकों का अभी तक यही कहते जाना कि वेद दस-बीस सहस्र वर्ष के लिखे ग्रन्थ हैं, को पक्षपातपूर्ण बताने के लिये है। वे अपने ढंग से किये गये अन्वेषण को भी सार्थक नहीं मानते।

हम ज्योतिष गणना को ठीक मानते हैं। सत्युग में मानव सृष्टि थी और उस समय मानव सभ्य, सुशील और बुद्धिमान थे। इसमें महाभारत का प्रमाण है—

नियतस्त्वं नरव्याघ्र शृणु सर्वमशेषतः।
यथा राज्यं समुत्पन्नमादौ कृतयुगेऽभवत्॥
न वै राज्यं न राजाऽऽसीन्न च दण्डो न दाण्डिकः।
धर्मेणैव प्रजाः सर्वा रक्षन्ति स्म परस्परम्॥

महा भा० शा० ५९-१३,१४

भीष्मजी युधिष्ठिर को बता रहे हैं—हे पुरुषसिंह! सत्युग में जिस प्रकार राजा और राज्य की उत्पत्ति हुई, यह सारा वृत्तान्त तुम एकाग्र होकर सुनो।

पहले न कोई राज्य था, न राजा। न दण्ड था और न दण्ड देने वाला। समस्त प्रजा धर्म द्वारा ही एक दूसरे की रक्षा करती थी।

(Ibid. p. 558)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इससे यह सिद्ध होता है कि सत्युग में भी मानव सृष्टि थी। तभी तो राजा की आवश्यकता हुई थी। आरम्भ में मनुष्य स्वतः धर्म का पालन करते थे, परन्तु वह स्थिति चिरकाल तक नहीं रही और तब राजा की आवश्यकता अनुभव हुई। राजा हुआ तो धर्म-व्यवस्था की भी आवश्यकता बन गयी। तब दण्ड विधान बना और न्यायालय इत्यादि बने।

: ५ :

प्रलय और मानव सृष्टि

भारतीय परम्परा यह है कि पृथिवी को बने १,९२,९७,४०,०६९ वर्ष हुए हैं। इस पृथिवी को मानवों और प्राणियों के रहने योग्य बने १२,०५,३३,०६९ वर्ष हुए हैं। यह वैवस्वत मन्वन्तर का व्यतीत हुआ काल है।

मनुष्य के होने के प्रमाण वर्तमान चतुर्युगी के आरम्भ तक तो मिले हैं। इस चतुर्युगी को आरम्भ हुए ३८,९३,०६९ वर्ष हो चुके हैं।

पृथिवी के बनने के समय (शतपथब्राह्मण के प्रमाण से) यह फेन-सी थी। फिर मिट्टी (कीचड़) की भाँति हो गयी। इसका तीसरा रूप शुष्कापम का बताया है। इस समय पूर्ण जल सूख गया था। चौथा रूप है ऊप। ऊष का अर्थ है ऊसर मिट्टी की भाँति। पाँचवाँ रूप हुआ सिकता अर्थात् रेत का। छठा रूप हुआ शर्करा अर्थात् कंकर। सातवाँ रूप है अश्मा (पत्थर) का। आठवाँ रूप है अयः (लोह अर्थात् स्वर्णादि धातुओं के) बनने का। नवाँ रूप है वनस्पतियों की उत्पत्ति का।

इन नौ रूपों के उपरान्त प्राणी सृष्टि हुई। इन सब परिवर्तनों को होते हुए कितने वर्ष लगे, नहीं कहा जा सकता। यह सम्भव है कि वर्तमान चतुर्युगी के पहले की चतुर्युगियों में भी प्राणी रहे हों और मनुष्य भी रहे हों, परन्तु प्रत्येक चतुर्युगी (देवयुग) के उपरान्त पृथिवी पर ऐसे विप्लव आते रहे हैं कि बहुत-कुछ विनष्ट हो जाता रहा है। इस कारण कहा नहीं जा सकता कि सत्ताईसवीं चतुर्युगी के अन्त में आये विप्लव में क्या कुछ नाश को प्राप्त हो गया था। प्रत्येक देव युग के अन्त में आये इस प्रकार के विप्लव को युगान्तर प्रलय कहा गया है। ऐसे एक प्रलय का उल्लेख महाभारत में आया है।

तस्मिन् युगसहस्रान्ते सम्प्राप्ते चायुषः क्षये
अनावृष्टिर्महाराज जायते बहुवार्षिकी ॥
ततस्तान्यल्पसाराणि सत्त्वानि क्षुधितानि वै।
प्रलयं यान्ति भूयिष्ठं पृथिव्यां पृथिवीपते ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ततो दिनकरैर्दीप्तैः सप्तभिर्मनुजाधिप ।
पीयते सलिलं सर्वं समुद्रेषु सरित्सु च ॥
यच्च काष्ठं तृणं चापि शुष्कं चार्द्रं च भारत ।
सर्वं तद् भस्मसाद् भूतं दृश्यते भरतर्षभ ॥
ततः संवर्तको वह्निर्वायुना सह भारत ।
लोकमाविशते पूर्वमादित्यैरुपशोषितम् ॥
ततः स पृथिवीं भित्वा प्रविश्य च रसातलम् ।
देवदानवयक्षाणां भयं जनयते महत् ॥
निर्दहन् नागलोकं च यच्च किञ्चित् क्षिताविह ।
अधस्तात् पृथिवीपाल सर्वनाशयते क्षणात् ॥
ततो योजनविंशानां सहस्राणि शतानि च ।
निर्दहत्यशिवो वायुः स च संवर्तकोऽनलः ॥
सदेवासुरगन्धर्वं सयक्षोरगराक्षसम् ।
ततो वहति दीप्तः स सर्वमेव जगद् विभुः ॥
ततो गजकुलप्रख्यास्तडिन्मालाविभूषिताः ।
उत्तिष्ठन्ति महामेघा नभस्यद्भुतदर्शनाः ॥
केचिन्नीलोत्पलश्यामाः केचित् कुमुदसंनिभाः ।
केचित् किञ्जल्कसंकाशाः केचित् पीताः पयोधराः ॥
केचिद्धारिद्रसंकाशाः कारण्डवनिभास्तथा ।
केचित् कमलपत्राभाः केचिद्भिङ्गुलसप्रभाः ॥
केचित् पुरवराकाराः केचिद् गजकुलोपमाः ।
केचिदञ्जनसंकाशाः केचिन्मकरसंनिभाः ॥
विद्युन्मालापिनद्धाङ्गाः समुत्तिष्ठन्ति वै घनाः ।
घोररूपा महाराज घोरस्वननिनादिताः ।
ततो जलधराः सर्वे व्याप्नुवन्ति नभस्तलम् ॥
तैरियं पृथिवी सर्वा सपर्वतवनाकरा ।
आपूर्यते महाराज सलिलौघपरिप्लुता ॥
ततस्ते जलदा घोरा रावणः पुरुषर्षभ ।
सर्वतः प्लावयन्त्याशु चोदिताः परमेष्ठिना ॥
वर्षमाणा महत् तोयं पूरयन्तो वसुंधराम् ।
सुघोरमशिवं रौद्रं नाशयन्ति च पावकम् ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ततो द्वादशवर्षाणि पयोवास्त उपप्लवे ।
धाराभिः पूरयन्तो वै चोह्यमाना महात्मना ।।

महा भा० वन० १८८—६५ से ८२

इन श्लोकों का अर्थ इस प्रकार है—

उन सहस्र (देव) युगों के (प्रत्येक के) अन्त में, जिनमें आयु क्षीण हो जाती है, कई वर्ष तक वृष्टि नहीं होती ।

इस अनावृष्टि काल में बहुत से दुर्बल प्राणी मर जाते हैं । तब प्रचण्ड तेज वाले सात सूर्य उदय होते हैं और वे सरिताओं तथा समुद्रों का सब जल सोख जाते हैं । तब सब-कुछ सूखकर भस्मवत् हो जाता है । इस समय संवर्तक नाम की गरम हवा बहने लगती है । इससे भूमि फट जाती है और गरम हवा उसकी दरारों में धँस जाती है । इस प्रकार सब-कुछ नष्ट हो जाता है ।

तदनन्तर सूर्य हट जाते हैं । अग्नि कम हो जाती है । गरमी कम होने से आकाश में बादल बन जाते हैं और वर्षा आरम्भ हो जाती है । अगाध जल-राशि बरसती है और संपूर्ण पृथिवी पर्वतों सहित जलमग्न हो जाती है । तदनन्तर मेघ हट जाते हैं । सूर्य से जल सूखने लगता है, पृथिवी कमल के समान जल से निकलने लगती है । उस पर परमात्मा की कृपा से सृष्टि होने लगती है ।

ऐसे युगान्तर प्रलय प्रत्येक देव युग के अन्त में होते हैं । महाप्रलय तो ब्रह्म दिन के अन्त में होती है । तब तो पूर्ण जगत् (galaxy) अव्यक्त में परिवर्तित हो जाता है ।

इस प्रकार महाभारत के वन पर्व १८८ में युगान्तर प्रलय का वर्णन है । ऐसी प्रलयों के पूर्व जो कुछ पृथिवी पर हुआ, वह भू-गर्भ विद्या से ही जाना जा सकता है ।

वास्तविक मानव-इतिहास वर्तमान चतुर्युगी के आरम्भ से ही जानना सम्भव है । तब ब्रह्मा (परमात्मा की कर्तृत्व शक्ति) उत्पन्न हुई । उसका नाम वैवस्वत मनु है । इसने अथवा ब्रह्मा ने विराट पुरुष से प्राणी की सृष्टि की । उनमें जो ऋषि उत्पन्न हुए, वे ब्रह्मा के मानस पुत्र कहलाये ।

ब्रह्मणो मानसाः पुत्रा विदिताः षण्महर्षयः ।
मरीचिरत्र्यङ्गिरसौ पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः ।।
मरीचेः कश्यपः पुत्रः कश्यपात् तु इमाः प्रजाः ।
प्रजज्ञिरे महाभागा दक्षकन्यास्त्रयोदश ।।

महा० भा० आदि० ६५—१०,११

मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह और क्रतु ये छः महर्षि ब्रह्मा के मानस पुत्र कहलाये । अभिप्राय यह कि इन ऋषियों ने वेद सुने और उनके अर्थ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समझ कर अन्य मानवों को उनकी शिक्षा दी।

मरीचि के पुत्र कश्यप थे और कश्यप से ही सब प्रजा उत्पन्न हुई। अन्य पुत्र थे दक्ष प्रजापति। उनकी तेरह कन्यायें हुईं और उनसे कश्यप ने प्रजा उत्पन्न की।

: ६ :

देव और असुर

सत्युग आरम्भ हुआ। उसमें ये छः महर्षि गण बने। और भी बहुत से प्राणी बने। महर्षियों ने वेद ज्ञान सबको देना चाहा, परन्तु सब प्राणी एक समान मेधावी नहीं थे। अतः सब उस ज्ञान से लाभ नहीं उठा सके।

वेद ज्ञान के अनुसार कार्य करने वाले और वेद ज्ञान की अवहेलना करने वाले ये दो प्रकार के प्राणी हो गये। आरम्भ में मानव इन ऋषियों की बात मानते रहे, परन्तु बाद में भूख, प्यास, यौन तृष्णा से पीड़ित और आलस्य प्रमाद से अभिभूत हो वे स्वेच्छा से विचरने लगे।

ऋषियों के कथनानुसार आचरण करने वाले देवता कहलाये और स्वेच्छा से विचरने वाले असुर कहलाये।

सत् युग का वृत्तान्त जो कुछ पुराणादि ग्रन्थों में मिलता है, उसका कुछ वृत्तान्त हम पुस्तक के अन्तिम खण्ड में लिखेंगे।

यहाँ हम यह लिखना चाहते हैं कि सत्युग का बहुत कम वृत्तान्त ज्ञात है। कारण यह है कि सत्युग के अन्त में अथवा त्रेता युग के आरम्भ में एक अत्यन्त विनाशकारी घटना घटी। उससे बहुत सा भू-भाग जलमग्न हो गया। अतः उससे पहले का इतिहास उपलब्ध नहीं रहा।

एक जल-प्लावन हुआ था। इसके विषय में प्रायः सब देशों की प्राचीन इतिहास की पुस्तकों में लिखा मिलता है। शतपथब्राह्मण में इस प्लावन का उल्लेख है। महाभारत और वाल्मीकि रामायण तथा पुराणों में भी इसका उल्लेख आता है। भारत के अतिरिक्त मिश्री, यहूदी, अवेस्तः, बवेरू, सुमेर दक्षिण अमेरिका के साहित्य और परम्परा में भी प्लावन को स्मरण किया गया है।

इससे यह सन्देह से परे है कि प्लावन की घटना घटी है। महाभारत में इस घटना के काल की ओर संकेत इस प्रकार मिलता है।

आदित्ये सवितुर्ज्येष्ठे विवस्वाञ्जगृहे ततः।
त्रेतायुगादौ च पुनर्विवस्वान्मनवे ददौ ॥

महा भा० शा० ३३६-४६, पूना संस्करण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्रेता युग के आरम्भ में यह ज्ञान विवस्वान के पुत्र मनु को मिला।

इसका अभिप्राय यह है कि मनु त्रेता युग के आरम्भ में हुआ था। पं० भगवद्दत जी ने अपनी पुस्तक 'भारतवर्ष का बृहद् इतिहास' में जल-प्लावन की घटना को आज से १६,००० वर्ष पहले का माना है।

इस तिथि पर हमें सन्देह है। पण्डितजी यह मानते हैं कि जल-प्लावन सतयुग और त्रेता की संधि पर हुआ और युग गणना के अनुसार सतयुग के अन्त को ५,०६९+८,६४,०००+१२,९६,०००=२१,६५,०६९ वर्ष व्यतीत हो चुके हैं।

पण्डितजी लिखते हैं कि यह तिथिकाल का अनुमान उनका अपना है। उनके विचार में यह कम से कम काल है। इससे अधिक कुछ भी हो सकता है। हमारा यह कहना है कि त्रेता युग के आरम्भ को १६,००० वर्ष पूर्व मानने में कोई कारण नहीं। कारण यह कि युगों की अवधि के विषय में हमें उसके अतिरिक्त अन्य कोई उल्लेख नहीं मिलता, जो हमने ऊपर दिया है।

युगों की गणना आर्यों के अतिरिक्त अन्य प्राचीन जातियों के इतिहास में भी मिलती है। इससे यह सिद्ध होता है कि प्राचीन काल में युगों की गणना से ही इतिहास की कल्पना की जाती है—

वायु पुराण में २४ त्रेता माने हैं। यह स्पष्ट है कि त्रेता के चौबीस भाग कर दिये हैं। इतिहास की दृष्टि से ऐसा किया गया है। वैसे वायु पुराण में भी लिखा है।

चत्वारि भारते वर्षे युगानि मुनयो विदुः।
कृतं त्रेता द्वापरं च तिष्यं चेति चतुर्युगम्॥
एतत् सहस्रपर्यन्तं अहर्यद्ब्रह्मणः स्मृतम्॥

२४-१,२

(मुनि लोग चार युग मानते हैं—सत् युग, त्रेता युग, द्वापर युग और कलि युग। ये (चारों) एक सहस्र (देव) वर्ष कहे गये हैं।)

इस अध्याय में प्राणी कब और कैसे उत्पन्न हुआ—इस विषय में भारतीय परम्परा का उल्लेख किया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अध्याय पाँच

: १ :

मानव सृष्टि आरम्भ

जगत् बना। उसमें पृथिवी (ठोस ग्रह), अन्तरिक्ष में उपस्थित देवता (इन्द्र, वरुण, मरुत, सरस्वत्यादि) बने और द्यू-लोक बना।

ग्रहों में पृथिवी बनी और उसकी अवस्था जब प्राणी (मनुष्य, पशु-पक्षी इत्यादि) के पालन के योग्य हुई, तब इस पर सृष्टि हुई। इस सृष्टि रचना से पूर्व वनस्पतियाँ हुईं।

बिना बीज के वृक्ष नहीं हो सकता। इस कारण यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि वनस्पतियों का और इसी प्रकार प्राणियों का बीज कहाँ से आया ?

यह हम पहले लिख आये हैं कि सोम से पृथिवी पर औषधियाँ आयीं। हमने जैमिनीय ब्राह्मण का प्रमाण दिया है। सोम द्यु-लोक में स्थित एक देवता (दिव्य गुण सम्पन्न शक्ति) है। वहाँ औषधियों के बीज बने और जब पृथिवी पर भूमि उनके लिये तैयार हुई तो सुपर्णा (परमात्मा) के प्रताप से सोम के छींटे पृथिवी पर पड़े और वनस्पतियाँ उत्पन्न होने लगीं।

यहाँ यह भी स्मरण रखना चाहिये कि ऐसी कोई बात नहीं कि प्रथम एक ही प्रकार के बीज आये और फिर उनसे, विकासवाद के सिद्धान्त के अनुसार, भिन्न-भिन्न प्रकार के पेड़-पौधे बने। सोम का आहरण (भेदन) किया तो उसके छींटे उड़कर पृथिवी पर गिरे और उनसे औषधियाँ हुईं।

मैत्रेयसंहिता के अनुसार पृथिवी औषधियों के उत्पन्न होने से पहले गंजी थी।

ऋक्षा ह वा इयमग्र आसीत्। तस्यां देवा रोहिण्यां वीरुधोऽरोहमन्।

मैत्रेय संहिता १।६।९।२

(वह पृथिवी पहले गँजी (लोम रहित) थी। उसमें रोहिणी ने लतायें लगायीं।)

सोम से रोहिणी और रोहिणी से पृथिवी में वनस्पतियाँ आयीं। अर्थात् इनका बीज पहले था। वह यहाँ पर आकर पड़ा और उससे यहाँ औषधियाँ बनीं।

औषधियों के उत्पन्न हो जाने पर यहाँ ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई। ब्रह्मा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परमात्मा की रचनात्मक शक्ति का प्रतीक है। इसके विषय में मनु ने इस प्रकार लिखा है—

यन्मूर्त्यवयवाः सूक्ष्मास्तस्येमान्याश्रयन्ति षट्।
तस्माच्छरीरमित्याहुस्तस्य मूर्तिं मनीषिणः॥

मनु०—१।१७

संसार जिन सूक्ष्म अवयवों से बना है, वह ही उस (ब्रह्मा) का शरीर है। उसी शरीर में बैठकर वह सृष्टि करता है।

इस ब्रह्मा के विषय में, जिसने प्राणी सृष्टि का सृजन किया, महाभारत में इस प्रकार लिखा है—

ततस्तेजोमयं दिव्यं पद्मं सृष्टं स्वयम्भुवा।
तस्मात् पद्मात् समभवद् ब्रह्मा वेदमयो निधिः॥

महा भा० शा०—१८१।१५

अर्थात्—इसके उपरान्त उस तेज से युक्त अद्वितीय शक्ति वाले पद्म पर स्वयं उत्पन्न हुए ब्रह्मा (मानस देव) ने, जो ज्ञानमय था, सृष्टि की।

यह ब्रह्मा परमात्मा के अतिरिक्त अन्य कोई नहीं। ऐसा ही महाभारत का आशय है। महाभारत इसी प्रसंग में कहता है—

स एष भगवान् विष्णुरनन्त इति विश्रुतः।
सर्वभूतात्मभूतस्थो, दुर्विज्ञेयोऽकृतात्मभिः॥

महा भा० शा०—१८२।२०

वह ही भगवान् विष्णु है जो अनन्त है, ऐसा प्रसिद्ध है। वह सर्व भूतों के अन्तःकरण में अन्तर्यामी के रूप में विद्यमान है।

भारतीय परम्परा के अनुसार जगत् रचना में कारण परमात्मा माना गया है। प्राणी की सृष्टि में भी वही कारण है।

ब्रह्मा (परमात्मा की कर्तृत्व शक्ति का प्रतीक) सृष्टि के लिये प्रादुर्भाव कहाँ हुआ और कैसे हुआ? इस विषय में बाल्मीकि रामायण में इस प्रकार वर्णन है—

ततः समभवद् ब्रह्मा स्वयंभूर्देवतैः सह॥
स वराहस्ततो भूत्वा प्रोज्जहार वसुंधराम्।
असृजच्च जगत् सर्वं सह पुत्रैः कृतात्मभिः।

वा० रा० अयोध्या०—११०।३-४

पहले (प्राणी सृष्टि से पूर्व) सब-कुछ जलमग्न था। उस जल में पृथिवी का निर्माण हुआ। तब देवताओं के साथ ब्रह्मा उत्पन्न हुए। तदनन्तर वराह ने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पृथिवी को जल से निकाला। तब उसने अपने कृतात्मा पुत्रों के साथ जगत् और सृष्टि की उत्पत्ति की।

बाल्मीकि रामायण में इन दो श्लोकों में उस पूर्ण प्रक्रिया को, जो जगत् रचना के आरम्भ से मानव सृष्टि होने तक हुई, संक्षेप में लिख दिया गया है।

यहाँ इतना और समझ लेना चाहिये कि वराह के अर्थ सूअर नहीं। निरुक्त में लिखा है—

वराहो मेघो भवति। वराहारः।
वरमाहारमाहार्षिरिति च ब्राह्मणम्। नि०—५।४

बादलों को वराह कहने का कारण यह है कि जल उसका आहार है।

अतएव रामायण के उक्त पाठ का यह अर्थ बनता है कि पृथिवी जल-मग्न थी और उस वराह (पानी पीने वाले बादलों ने) भूमि को जल से निकाला। उस पृथिवी पर ब्रह्मा ने अपने कृतात्मा पुत्रों से सृष्टि की रचना की।

इसी विषय में महाभारत का प्रमाण हम ऊपर दे चुके हैं। वहाँ यह बताया है कि मेरु पर्वत का शिखर ही वह स्थान है, जिसे कमल कहते हैं और जहाँ प्राणी की रचना हुई।

हमारा मत इसमें यह है। जल सूखने पर पृथिवी का वह भाग सबसे पहले जल से निकला, जो सबसे ऊँचा था। उस भाग को मेरु से नाम के स्मरण किया गया है। सम्भवतः यह तिब्बत का कोई उच्च पठार था। यहाँ पर परमात्मा की शक्ति से बृहदाकार अथवा अनेक आकार-विस्तार के अण्डे के समान पंचभौतिक पिण्ड बने। इन पिण्डों को विराट् पुरुष कहते हैं।

इन पिण्डों में से सब प्रकार के युवा प्राणी स्त्री-पुरुष उत्पन्न हुए और वे प्राणी पूर्व कल्प के अपने-अपने कर्मफल को लेकर आये।

आत्मा के विषय में दो मत हैं। एक मत यह मानता है कि परमात्मा स्वयं ही आत्मा का रूप धारण कर उक्त चेतनावस्था युक्त पंच-भौतिक शरीर में आ उपस्थित होता है। दूसरा मत यह है कि पूर्व कल्प की वे आत्मायें, जो ब्रह्म रात्रि के समय सुषुप्ति अवस्था में थीं, इन निर्माणाधीन चेतना-युक्त शरीरों में अपने-अपने कर्मफल से आ गये।

आत्मा तथा ब्रह्म एक नहीं। इस विषय में सुश्रुताचार्य अपने सुश्रुत ग्रन्थ में इस प्रकार लिखते हैं—

तत्र सर्वं एवाचेतन एष वर्गः पुरुषः पंचविंशतितमः स च कार्य्यकारण-संयुक्तश्चेतयिता भवति सत्यप्यचैतन्ये प्रधानस्य पुरुषकैवल्यार्थं प्रवृत्तिमुपदिशंति क्षीरादींश्च हेतूनुदाहरन्ति॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समस्त वर्ग (व्यक्त २४ तत्त्व) चेतना से रहित हैं। चेतना वाला पच्चीसवाँ पुरुष है (यहाँ पुरुष का अभिप्राय जीवात्मा है)। वह पुरुष, कार्य (पंच महाभूत) और कारण (अव्यक्त अष्टधा) प्रकृति से संयुक्त होकर ही चेतना करने वाला है। प्रकृति तो अचेतन है। पुरुष (जीवात्मा) की, कैवल्यार्थ (मोक्ष) की प्रवृत्ति होती है।

इसी भाव को एक अन्य आयुर्वेद पंडित भावमिश्र वर्णन करते हैं—

एवं चतुर्विंशतिस्भितत्त्वे सिद्धे वपुर्गृहे।
जीवात्मा नियतेर्निघ्नो वसतिः स्वांतदूतवान्॥

इस प्रकार चौबीस तत्त्वों से सिद्ध किये (रचे हुए) शरीर रूपी घर में नियति (कर्मों) के अधीन अपने दूत (मन) के साथ जीवात्मा रहता है। आगे चलकर सुश्रुताचार्य लिखते हैं—

न चायुर्वेदशास्त्रेषूपदिश्यन्ते सर्वगताः क्षेत्रज्ञा नित्याश्च असर्वगतेषु च क्षेत्रज्ञेषु नित्येषु पुरुषव्यापकान्हेतूनुदाहरंति॥

आयुर्वेदशास्त्रेष्वसर्वगताः क्षेत्रज्ञा नित्याश्च तिर्यग्योनिमानुषदेवेषु संचरंति धर्माधर्मनिमित्तम्॥

आयुर्वेद शास्त्र में क्षेत्रज्ञों (जीव) को (सर्वगत-सर्वव्यापक) नहीं मान गया। (यदि जीव सर्व-व्यापक होता तो एक ही समान सुख-दुःख सबको होता। ऐसा न होने से जीव सर्व-व्यापक नहीं। परन्तु नित्य है।) असर्वगत (एक शरीर व्यापी) जीवों में नित्य पुरुष व्यापक हेतुओं को देखते हैं।

असर्वगत जीव नित्य हैं। वे धर्म और अधर्म का निमित्त पाकर, तिर्यग्योनि (पशु कीटादि) तथा मनुष्य देह अथवा देव देह में विचरते हैं।

किसी शरीरधारी आदि पुरुष को भी ब्रह्मा माना जा सकता है। यह भी सम्भव है कि ब्रह्मा तो रचनात्मक शक्ति ही हो और फिर ब्रह्मा से उत्पन्न किये जाने वाले सदेह प्राणी बने हों। आदि पुरुष ब्रह्मा के शरीर में किसी पूर्व कल्प की अति श्रेष्ठ आत्मा को स्थान मिला मानना पड़ेगा।

: २ :

मानव सृष्टि की उत्पत्ति

मानव सृष्टि की उत्पत्ति के विषय में खोज करते हुए प्राय: पाश्चात्य और उनकी परिपाटी पर चलने वाले भारतीय विद्वान एक भारी भूल करने लग जाते हैं। वे वेदों में लिखे वर्णन को मानव इतिहास मान लेते हैं। यह भूल भारी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भ्रम का कारण हुई है।

उदाहरण के रूप में ऋग्वेद के एक मन्त्र में लिखा है कि अदिति के आठ पुत्र थे। मन्त्र इस प्रकार है—

अष्टौ पुत्रासो अदितेर्ये जातास्तन्व स्परि।
देवां उप प्रैत्सप्तभिः परा मार्ताण्डमास्यत्॥

ऋ० १०-७२-८

इस मन्त्र का अर्थ है—अदिति (प्रकृति) से आठ पुत्र (तत्त्व) हुए। इन देवों में से सात (नक्षत्र) नीचे रहे और मार्तण्ड ऊपर हुआ

परन्तु ये देवता और यह अदिति मानव शरीरधारी देवता नहीं थे। यहाँ अभिप्राय अष्टधा प्रकृति से है। यही अदिति है और प्रकृति के आठ पुत्र हैं।

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च।
अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा॥

भ० गी० ७।४

अर्थात्—पृथिवी, आपः, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहंकार, ये आठ प्रकृति से जन्म लेते हैं।

वास्तविकता यह है कि वेद में आये शब्दों से ही मनुष्यों ने अपने तथा अपनी सन्तानों के नाम रखे। अतः जब दक्ष के कन्यायें हुईं तो उसने एक का नाम अदिति रख दिया और अदिति के बारह पुत्र हुए। वे भी दिव्य गुण-सम्पन्न थे। अतः उनका नाम देवता पड़ा।

दक्ष कन्या अदिति के बारह पुत्र देवता थे। आदि प्रकृति अदिति के आठ पुत्र (तत्त्व) थे।

जब यह समझ लिया जाये कि वेदों में मानव इतिहास नहीं है तो फिर भ्रम होने की सम्भावना नहीं रहती। साथ ही भारतीय इतिहास स्पष्टतया समझ में आने लगता है।

ब्रह्मा परमात्मा की कर्तृत्व शक्ति को कहते हैं। वैवस्वत मन्वन्तर में मानव सृष्टि हुई। वैवस्वत मन्वन्तर में जो परमात्मा की कर्तृत्व शक्ति थी, वह विवस्वान कहलायी।

विवस्वान का अर्थ सूर्य भी है। सूर्य की किरणों ने मानव सृष्टि की उत्पत्ति की।

यह हम पहले लिख चुके हैं कि ब्रह्मा का सातवाँ जन्म कमल से हुआ।

इदं च सप्तमं जन्म पद्मजन्मेति वै प्रभो।

महा भा० शा० ३४७-४३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसकी व्याख्या भी महाभारत में है।

ततस्तेजोमयं दिव्यं पद्मं सृष्टं स्वयम्भुवा ।
तस्मात् पद्मात् समभवद् ब्रह्मा वेदमयो निधिः ॥
अहंकार इति ख्यातः सर्वभूतात्मभूतकृत् ।
ब्रह्मा वै स महातेजा य एते पञ्च धातवः ॥

महा भा० शा०—१८२—१५,१६

लिखा है कि जब पृथिवी वन गई तब उस पर दिव्य पदम् उत्पन्न हुआ और उस पर स्वयंभुव मानस देव उत्पन्न हुए। वे 'वेदमय' ज्ञानमय थे। वे ब्रह्मा थे।

ब्रह्मा अहंकार नाम से भी विख्यात हैं। वे सब भूतों की आत्मा हैं और भूतों की सृष्टि करने वाले हैं। वे पंचभूतों से उत्पन्न हुए थे।

आगे चल कर लिखा है —

अर्थात्·····(ब्रह्मत्व) परमात्मा की कर्तृत्व-शक्ति मानस देह में मूर्ति के रूप में प्रकट हुई। उनके आसन के लिये जो पृथिवी जल से निकली, वही पद्म (कमल) है।

ब्रह्मा जिन देवताओं के साथ प्रकट हुए, वे वही थे, जिनका वेद (१०-७२-८) में वर्णन आया है। अभिप्राय स्पष्ट है कि परमात्मा मानव सृष्टि करने में उन देवताओं की आवश्यकता अनुभव करते थे। वे देवता थे अदिति (आदि प्रकृति) के पुत्र—महत्, बुद्धि, अहंकार तथा पंच महाभूत। इनकी सहायता से ही शरीर, इन्द्रियाँ, मन और बुद्धि बनीं और जब शरीर बन गये तो आत्मायें उनमें प्रवेश करने लगीं।

क्या ब्रह्मा पंचभौतिक शरीर वाला था ? यह असम्भव नहीं। वैसे तो प्रत्येक प्राणी में कर्तृत्व शक्ति रहती है। इसी से वह सन्तान निर्माण करता है। प्राणी के पंचभौतिक शरीर में ही यह कर्तृत्व शक्ति रहती है। अतएव ब्रह्मा का पंच-भौतिक शरीर में होकर मानव सृष्टि का निर्माण कर सकना असम्भव प्रतीत नहीं होता।

प्रथम मानव जो बना, वह मानव देह-मूर्ति रूप में प्रकट हुआ। (महा-भा० शा० १८८-३७).

ब्रह्मा ने सृष्टि रचना उस समय आरम्भ की होगी, जब भूमि जल से निकल चुकी होगी और उस पर वनस्पतियाँ उत्पन्न हो चुकी होंगी तथा वन, पशु भी बन चुके होंगे। यह तो हम इस पुस्तक के पूर्वांश में बता ही चुके हैं कि वनस्पतियाँ कहाँ से आयीं और इतर जीव-जन्तु कैसे उत्पन्न हुए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्रह्मा ने कई प्रकार के शरीर निर्माण किये।

भागवत् पुराण में इस प्रकार वर्णन आया है—

ससर्जाग्रेऽन्धतामिस्रमथ तामिस्रमादिकृत्।
महामोहं च मोहं च तमश्चाज्ञानवृत्तयः॥
दृष्ट्वा पापीयसीं सृष्टिं नात्मानं बह्वमन्यत।
भगवद्ध्यानपूतेन मनसान्यां ततोऽसृजत्॥
सनकं च सनन्दं च सनातनमथात्मभूः।
सनत्कुमारं च मुनीन्निष्क्रियानूर्ध्वरेतसः॥

३-१२-२,३,४

सबसे पहले ब्रह्मा ने तम, मोह, महामोह, तामिस्र और अन्ध तामिस्र प्रकृतियों वाली सृष्टि रची।

तम के अर्थ हैं अविद्या। मोह अस्मिता अर्थात् अर्ध चेतना को कहते हैं। महामोह राग का नाम है। तामिस्र द्वेष को कहते हैं और अन्ध तामिस्र आसक्ति को कहते हैं। इसका अभिप्राय है कि पहले इतर जीव-जन्तु उत्पन्न किये। इस सृष्टि में पूर्व कल्प की पापात्मायें आ बैठीं।

ब्रह्मा को इस सृष्टि के रचने से प्रसन्नता नहीं हुई। अतः उसने पुनः प्रयत्न करके सनक, सनन्द, सनातन और सनत्कुमार, ये चार निवृत्तिपरायण उर्ध्वरेता मुनि उत्पन्न किये।

इन्होंने आगे सृष्टि चलाने से इन्कार कर दिया।

इस प्रकार भिन्न-भिन्न प्रकार की सृष्टि उत्पन्न करके अन्त में उन्होंने दस पुत्र उत्पन्न किये, जिन्होंने मानव सृष्टि उत्पन्न की।

अथाभिध्यायतः सर्गं दश पुत्राः प्रजज्ञिरे।
भगवच्छक्तियुक्तस्य लोकसन्तानहेतवः॥
मरीचिरत्र्यंगिरसौ पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः।
भृगुर्वसिष्ठो दक्षश्च दशमस्तत्र नारदः॥

भा० पु० ३।१२-२१,२२

अर्थात्—परमात्मा की शक्ति से सम्पन्न ब्रह्मा जी ने सृष्टि के संकल्प से दस पुत्रों को जन्म दिया। इनके नाम हैं मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, भृगु, वसिष्ठ, दक्ष और नारद। ऐसा ही मनु० १-३५ में भी लिखा है।

ब्रह्मा के इन दस पुत्रों में छः ऋषि थे और वे ब्रह्मा के मानव पुत्र कहलाये। इनके विषय में महाभारत मे लिखा है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्रह्मणो मानसाः पुत्रा विविताः षण्महर्षयः।
मरीचिरत्र्यंगिरसौ पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः॥

महा भा० आदि० ६५-१०

मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु—ये ब्रह्मा जी के छः पुत्र महर्षि कहलाये।

शेष चार भृगु, वसिष्ठ, दक्ष और नारद विद्वान तो थे, परन्तु ऋषि नहीं थे। ऋषि उनको कहते थे जो वेदों की ऋचाओं को सुनकर उनको मानव भाषा में कह सकते थे और जो उन ऋचाओं के अर्थ बता सकते थे। नारद इत्यादि देवताओं द्वारा उच्चारित ऋचाओं को सुन और समझ नहीं सकते थे। विद्वान् लोग इन ऋषियों की बतायी बात को ऋचाओं में स्वीकार करते थे। ये छः ऋषि ही ब्रह्मा के मानस पुत्र कहे जाते हैं।

ब्रह्मा ने कुछ कन्याएँ भी उत्पन्न कीं। एक शतरूपा थी और फिर शतरूपा से अकूति, देवहूति और प्रसूति उत्पन्न हुईं।

प्रसूति का विवाह दक्ष प्रजापति से हुआ और उससे तेरह कन्यायें अदिति इत्यादि उत्पन्न हुईं। इनका विवाह मरीचि के पुत्र कश्यप से हुआ और इन तेरह पत्नियों से बहुत सन्तान हुई।

यहाँ अदिति से अभिप्राय उस अदिति से नहीं, जिसका उल्लेख ऋग्वेद (१०-७२-८ में आया है। वहाँ अदिति से अभिप्राय मूल प्रकृति से है और उसके आठ पुत्र कहे हैं। इस स्थान पर अदिति दक्ष की कन्या का नाम है और उसके बारह पुत्र हुए।

वैदिक नामों से तत्कालीन मनुष्यों के नाम रखे जाते थे। अदिति के बारह पुत्र आदित्य हुए। इनके नाम भी दिये हैं—धाता, मित्र, अर्यमा, इन्द्र, वरुण, अंश, भग, विवस्वान्, पूषा, सविता, त्वष्टा, विष्णु।

दक्ष की दूसरी कन्या थी दिति। इसके (कश्यप से) एक ही पुत्र उत्पन्न हुआ। नाम था हिरण्यकशिपु। (महा भा० आदि ६५–१७)

कुछ पुराणों में दिति के दो पुत्र लिखे हैं। दूसरे का नाम हिरण्याक्ष कहा है।

दिति के पुत्र दैत्य कहलाये। भाग्य से दिति के पुत्र स्वभाव के और कर्म के अति क्रूर तथा दुराचारी थे। इस कारण दैत्य नाम के अर्थ ही दुराचारी, क्रूर स्वभाव और कर्म वाले हो गये।

हमने यह मानव सृष्टि की उत्पत्ति रामायण, महाभारत, पुराण और भागवत् महापुराण में से वर्णन की है। ये सब ग्रन्थ इतिहास पुराण और धर्म ग्रंथ हैं। इतिहास उस वृत्तान्त को कहते हैं जो वास्तव में घटा हो। पुराण घटना का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कारण और उसके परिणामों को बताते हैं। धर्म शास्त्र उस ग्रंथ को कहते हैं जिसमें मानव कल्याण के कर्मों का उल्लेख हो। उक्त ग्रंथ इन सब गुणों को रखते हैं। हमने इतिहास अंश को ही यहाँ लिखने का यत्न किया है।

महाभारत में लिखा है—

अस्मिन्नर्थश्च धर्मश्च निखिलेनोपदिश्यते।
इतिहासे महापुण्ये बुद्धिश्च परिनैष्ठिकी॥

महा भा० आदि० ६२–१७

अर्थात्—महाभारत में पूर्ण रूप से धर्म और अर्थ का उपदेश है। इसमें इतिहास भी है। महापवित्र मोक्ष दिलाने वाली बुद्धि का भी उपदेश है।

विद्वान पुरुषों को इनको पृथक्-पृथक् कर समझना चाहिये।

ब्रह्मा में अमैथुनीय सृष्टि उत्पन्न करने की शक्ति थी। उस काल के कुछ अन्य ऋषियों में भी यह शक्ति थी। मरीचि का पुत्र कश्यप भी अमैथुनीय उपज था। या तो उस समय पृथिवी पर ऐसी स्थिति थी कि पंच महाभूत स्वयमेव एकत्रित हो शरीर निर्माण करते थे और उनमें आत्माएं आकर निवास पा जाती थीं अथवा यह मानना पड़ेगा कि ब्रह्मा, मरीचि इत्यादि विशेष सामर्थ्यवान थे और वे ऐसी सृष्टि कर सकते थे।

मानव के उत्पन्न होने की कथा और मानवों के वंश चलने की बात वेदों में नहीं है। जगत् रचना की कथा अवश्य वेदों में है। पृथिवी नक्षत्र इत्यादि के बनने का वृत्तान्त भी है। इस पृथिवी पर के मानवों का इतिहास वेदों में नहीं है। मानव का इतिहास कुछ तो ब्राह्मण ग्रंथों में मिलता है और कुछ पुराणादि ग्रंथों में है।

मानवों के जैसे कुछ नाम वेदों में मिलते हैं। परन्तु वहाँ ये नाम जगत् रचना के कुछ पदार्थों के लिये प्रयुक्त हुए हैं। वास्तव में मनुष्यों के नाम उन वेद शब्दों पर रखे गये हैं। इसका प्रमाण हम मनुस्मृति में से दे चुके हैं।

भारतीय प्राचीन साहित्य में तीन प्रकार के देवताओं का उल्लेख मिलता है। एक देवता हैं जिनका वर्णन हम पीछे (ऋ० १०–७२–८) कर आये हैं। दूसरे देवता हैं जिनका उल्लेख मनुस्मृति (१–१३) में आया है। जब हिरण्य-गर्भ विखण्डित हुआ तो पृथिवी (नक्षत्रादि) और देवता बने। ये देवता सूर्य, मरुत, इन्द्र, वरुण इत्यादि थे। तीसरे देवता थे दक्ष कन्या अदिति के बारह आदित्य पुत्र। इनमें इन्द्र, वरुण, विष्णु आदि थे।

यहाँ पर यह समझने की आवश्यकता है कि तीनों देवता भिन्न-भिन्न हैं। अदिति के पुत्र इन्द्र, विष्णु इत्यादि देवता मानवों के पूर्वज थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

: ३ :

कश्यप और उसकी वंशावली

वर्तमान चतुर्युगी के आरम्भ में ब्रह्मा ने मानव सृष्टि चलायी। इसको आरम्भ हुए ३८,९३,०६९ वर्ष हो चुके हैं। इस काल में सतयुग में क्या होता रहा है, बहुत कम विदित है। कारण यह कि सतयुग के अन्त में और त्रेता युग के आरम्भ में इस पृथिवी पर एक बहुत भारी जल-प्लावन हुआ था। इस जल-प्लावन के उपरान्त मनु से पुनः मानव समाज चला था।

प्लावन के विषय में सब पुराणों में, शतपथब्राह्मण और महाभारत में वर्णन मिलता है। इस प्लावन के विषय में विदेशों के साहित्य में भी वर्णन मिलते हैं। काल्डिया, सुमेर, यहूदी, दक्षिणी अमरीका, चीनी साहित्य में भी इस प्लावन का उल्लेख है।

महाभारत में इसका घटना काल और इसमें क्या-क्या हुआ, सबका वर्णन है। यह पहले हम सब लिख चुके हैं।

यहाँ हम यह बताना चाहते हैं कि पुराणादि ग्रन्थों के आधार पर इस प्लावन के पूर्व और चतुर्युगी आरम्भ के बीच के काल में इस पृथिवी पर मानव और जीव-जन्तु थे।

मानवों के विषय में हम लिख चुके हैं कि उनका आरम्भ कैसे हुआ? प्रथम पीढ़ी के मानव अयोनिज थे। ये दस थे। इनके नाम हम लिख चुके हैं। इनमें छः ऋषि थे। इनके अतिरिक्त भी कुछ थे जो उत्पन्न हुए। उनमें स्त्रियाँ भी थीं।

दक्ष इन दस अयोनिज मानवों में से एक था। इसका विवाह प्रसूति से हुआ था। इन दोनों ने बहुत लड़कियाँ उत्पन्न कीं। इनकी गणना पचास तक मानी जाती है। इनमें से दक्ष ने तेरह कन्यायें मरीचि ऋषि के पुत्र कश्यप से विवाह दीं। कश्यप भी अयोनिज था।

कश्यप ने अदिति से बारह पुत्र उत्पन्न किये। दिति से एक उत्पन्न हुआ। महाभारत के अनुसार कश्यप की वंशावली इस प्रकार बनती है।

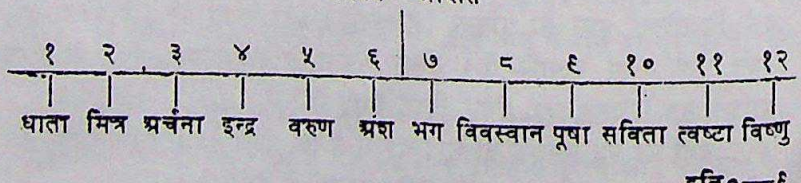

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

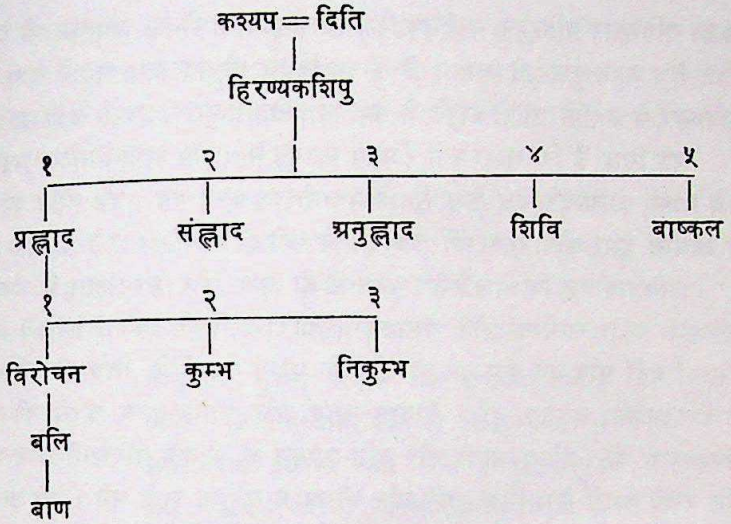

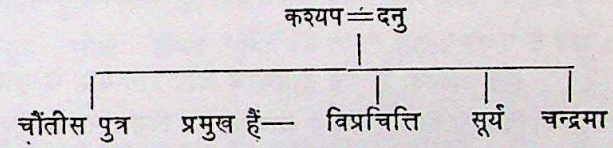

यहाँ यह स्मरण रखना होगा कि मानवों के नाम देवताओं के नाम पर भी रखे जाते थे। सूर्य, चन्द्र अन्तरिक्ष के देवता हैं और उन्हीं के नामों से इन दानवों के नाम सूर्य इत्यादि रखे गये थे।

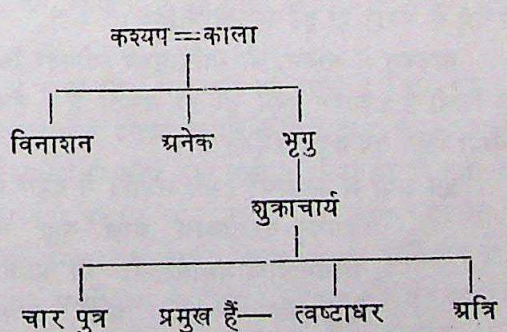

इस प्रकार दक्ष प्रजापति से और कश्यप से मानव सृष्टि की रचना हुई। स्थानाभाव के कारण सबकी पूर्ण वंशावली नहीं दी जा सकती। इतना समझ लेना चाहिये कि त्रेता के आरम्भ में प्लावन तक पृथिवी मानवों से भर गयी थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तब का सविस्तार इतिहास, यहाँ तक कि राजा-महाराजाओं का इतिहास भी देना कठिन है। बहुत-कुछ तो प्लावन के कारण विनष्ट हो गया था। मनु के साथ जो ऋषि बचे थे उन्होंने अपनी स्मृति से तब का इतिहास पुराण ग्रन्थों में लिखा है।

यह सिद्ध है कि आरम्भ में (आदि सतयुग में) लोग प्रायः धर्मात्मा प्रकृति के थे परन्तु कालान्तर मोह के अधीन वे अधर्माचरण करने लगे। तब नीति शास्त्र का निर्माण हुआ और राज्य की कल्पना की गयी।

अभिप्राय यह कि आरम्भिक काल में ही सुख और सम्पन्नता में अन्तर आने लगा था। सम्पन्न और अभावग्रस्त आरम्भ में ही होने लगे थे। जब बस्तियाँ बनीं और वन कुछ दूर हो गये तब भोज्य पदार्थ के लिये भी परिश्रम की आवश्यकता अनुभव हुई। निवास-स्थान और पत्नी प्राप्त करने की भी आवश्यकता थी। जो पुरुषार्थी और बुद्धि-सम्पन्न थे, वे कम परिश्रमी और कम बुद्धि रखने वालों से अधिक सुखी और जीवन से सन्तुष्ट रहने लगे। जो उतना कुछ प्राप्त करने में असमर्थ हुए उन्होंने छीना-झपटी आरम्भ कर दी और फिर धर्म से परस्पर रक्षा कठिन हो गयी।

ऐसी अवस्था में सब बुद्धिशील और राग-मोह से मुक्त लोगों ने एक सभा में एकत्रित हो विचार करना आरम्भ कर दिया कि क्या किया जाये? उस सभा के प्रधान थे ब्रह्मा।

इसी से यह सिद्ध होता है कि राग-मोह का उद्रेक सतयुग के आरम्भ अर्थात् मानव-सृष्टि के होने के कुछ ही बाद हुआ था। ब्रह्मा को कितना भी दीर्घ-जीवी क्यों न मान लिया जाये तब भी यह छीना-झपटी आरम्भ से कुछ सौ वर्ष के भीतर ही हुई माननी चाहिये।

बाइबल में आदम, जो आदि पुरुष स्वीकार किया गया है, की आयु ९३० वर्ष लिखी है। आदम ब्रह्मा ही हो सकता है। जब उक्त देवताओं की सभा बुलायी गयी, तब ब्रह्मा जीवित थे।

इस सभा में देवताओं (भले लोगों) ने ब्रह्मा से कहा—

भगवन् नरलोकस्थं ग्रस्तं ब्रह्म सनातनम्।
लोभमोहादिभिर्भावैस्ततो नो भयमाविशत्॥
ब्रह्मणश्च प्रणाशेन धर्मो व्यनशदीश्वर।
ततः स्म समतां याता मर्त्यैस्त्रिभुवनेश्वर॥
अत्र निःश्रेयसं यन्नस्तद् ध्यायस्व पितामह।
त्वत्प्रभावसमुत्थोऽसौ स्वभावो नो विनश्यति॥

महा भा० शा० ५९—२४, २५ व २७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थात्—भगवन् ! मनुष्य लोक में लोभ, मोह आदि दूषित भावों ने सनातन वैदिक ज्ञान विलुप्त कर डाला है। इस कारण बहुत बड़ा भय हो गया है। वैदिक ज्ञान का लोप हो जाने से यज्ञ, धर्म नष्ट हो गया है। इस कारण हम देवता भी (उन) मनुष्यों के समान हो गये हैं।

अतः जिस उपाय से हमारा कल्याण हो सके, वह सोचिये। आपके प्रभाव से जो हमें दैवी स्वभाव (श्रेष्ठ स्वभाव) मिला था, वह विलुप्त हो रहा था।

यह एक इसी प्रकार का सम्मेलन था, जैसे आज कल की सरकारें राष्ट्र पर विपत्ति आ पड़ने पर किया करती हैं अथवा विद्वान लोग बुलाया करते हैं।

तानुवाच सुरान् सर्वान् स्वयम्भूर्भगवांस्ततः।
श्रेयोऽहं चिन्तयिष्यामि व्येतु वो भीः सुरर्षभाः॥
ततोऽध्यायसहस्राणां शतं चक्रे स्वबुद्धिजम्।
यत्र धर्मस्तथैवार्थः कामश्चैवाभिवर्णितः॥
त्रिवर्ग इति विख्यातो गण एष स्वयम्भुवा।
चतुर्थो मोक्ष इत्येव पृथगर्थः पृथग्गुणः॥

महा भा० शा० ५९—२८,२९,३०

अर्थात्—सम्मेलन में सब देवताओं की बातों को सुनकर ब्रह्मा ने कहा, "सुर-गण ! तुम्हारा भय दूर हो जाना चाहिये। मैं तुम्हारे कल्याण का मार्ग विचार करूँगा। तब ब्रह्मा जी ने एक लाख अध्याय (श्लोक) का एक नीति शास्त्र लिखा, जिसमें धर्म, अर्थ और काम का विस्तारपूर्वक वर्णन किया। यह नीति शास्त्र त्रिवर्ग कहलाया। चौथा वर्ग मोक्ष है। वह पृथक् रखा और उसके गुण भी पृथक् हैं।

इसी नीति शास्त्र में राजा और राज्य का भी वर्णन है। जब यह नीति-शास्त्र लिखा गया, तब देवताओं ने इसको चलाने के लिये राजा की कामना की।

राजा बनने योग्य व्यक्ति की खोज होने लगी। परमात्मा की कृपा से एक विरजा नाम के व्यक्ति का पता चला। लोग उसके पास पहुँचे और उसे राजा बनाना चाहा। परन्तु उसने इन्कार कर दिया। विरजा के पुत्र कीर्तिमान को कहा गया। उसने भी राजा बनना अस्वीकार कर दिया। कीर्तिमान के पुत्र कर्दम ने भी इस पद को स्वीकार नहीं किया। कर्दम के पुत्र अनंग ने राजा बनना स्वीकार किया। वह मानव लोक में पहला राजा हुआ। उसके विषय में लिखा है कि वह—

प्रजा रक्षयिता साधुर्दण्डनीतिविशारदः॥

महा० भा० शा० ५९—९१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह साधु स्वभाव प्रजा की रक्षा करने में समर्थ और दण्डनीति का जानने वाला था।

अनंग का पुत्र था अतिबल। यह शौर्यवान तो था परन्तु इन्द्रिय-लोलुप हो गया। इसकी एक पत्नी थी सुनीता। उससे वेन उत्पन्न हुआ। वेन राग और द्वेष के अधीन प्रजाओं को दुःख देने लगा। इस पर ऋषियों ने मन्त्रभूत कुशों द्वारा उसको मार डाला। तदनन्तर उन्होंने वेन के पुत्र पृथु को राजगद्दी दी

इसने शपथ ली कि वह अधर्मियों को अपने बाहुबल से पराजित करेगा। सब प्राणियों के प्रति समभाव रखेगा और ब्राह्मणों का मान करेगा।

महाराज पृथु ने समाज की बहुत उन्नति की। समाज में वर्णाश्रम धर्म की स्थापना की।

वेन और पृथु के काल के विषय में वायु पुराण में संकेत मिलता है। वहाँ लिखा है—

चाक्षुषस्यान्तरेतीते प्राप्ते वैवस्वते पुनः।
वैन्येनेयं मही दुग्धा यथा ते कीर्तितं मया॥

वायु ६३—१९

इसका अर्थ है कि चाक्षुष मन्वन्तर के व्यतीत हो जाने के उपरान्त वैवस्वत मन्वन्तर में वेन पुत्र पृथु ने पृथिवी में से (अन्न) ऐसे उत्पन्न किया था जैसे दुग्ध दुहा जाता है। ऐसा करने से वह कीर्तिमान् हुआ था।

महाभारत में भी ऐसा उल्लेख है कि वेन पुत्र पृथु ने पृथिवी को दोह कर १४ प्रकार के अन्न उत्पन्न किये।

यहाँ एक बात का उल्लेख कर देना उचित है। पण्डित भगवद्दत्त जी ने अपने भारतवर्ष के इतिहास के दूसरे भाग में पृष्ठ ४१ पर लिखा है. 'चाक्षुष मन्वन्तर' वर्तमान चतुर्युगी का कृत युग है।

वायु पुराण के उक्त श्लोक से ही उनका यह अनुमान है। हम समझते हैं कि यह अनुमान गलत है। उक्त श्लोक में और सब इतिहास-पुराणों में चाक्षुष मन्वन्तर के उपरान्त वैवस्वत मन्वन्तर माना गया है। वैवस्वत मन्वन्तर की २७ चतुर्युगियाँ व्यतीत हो चुकी हैं और वर्तमान चतुर्युगी अट्ठाईसवीं है। अतः इस वर्तमान चतुर्युगी में चाक्षुष मन्वन्तर का प्रश्न ही नहीं उठता। उक्त श्लोक में भी यही लिखा है कि चाक्षुष मन्वन्तर के उपरान्त वैवस्वत के ये काल व्यतीत हो जाने पर वैन्य (वेन पुत्रों) ने भूमि को दोहा था।

इस श्लोक में वैवस्वत मन्वन्तर का उल्लेख है। इससे यही प्रतीत होता है कि वेन पुत्र पृथु वर्तमान चतुर्युगी के सतयुग के आरम्भ में हुआ था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पृथु के बाद उसका राजवंश चला।

युग गणना के अनुसार सत युग १७,२८,००० वर्ष तक रहा। इसमें मनुष्य दीर्घजीवी थे और बहुत अधिक सन्तान उत्पन्न करते थे। इस काल में युद्ध भी होते थे। वे युद्ध देवासुर-संग्रामों के नाम से प्रसिद्ध हुए। देवासुर-संग्राम त्रेता युग में भी चलते रहे। वास्तव में ये आजकल भी चलते हैं।

देवता और असुर किन्हीं जातियों के नाम नहीं थे। ये नाम गुण, कर्म और स्वभाव के अनुसार दिये जाते थे। यह प्राचीन आर्यों का मत है कि पूर्व जन्म के कर्म, इस जन्म के माता-पिता, शिक्षा-दीक्षा और देश का वातावरण मनुष्य के गुण, कर्म और स्वभाव पर प्रभाव डालता है। इस पर भी मनुष्य का मूल्य उसके इस जन्म के गुण, कर्म और स्वभाव से ही लगाया जाता था। भले ही पूर्व जन्म के कर्म से बने हों, माता-पिता की संगत से बने हों अथवा शिक्षा-दीक्षा से बने हों।

देवता उनको कहते थे जो अपने कर्म और अपने स्वभाव से वेदानुकूल, धर्मानुकूल और सबसे समभाव रखते थे। असुर उनको कहते थे जो जीवन को जन्म से मरण-पर्यन्त मानने वाले, आत्मतत्त्व को और कर्म-फल को न मानने वाले होते थे। इन्द्रिय सुखों में लीन असुर कहे जाते थे।

दोनों प्रकार के मानवों में विवाद और युद्ध होते थे। कभी असुर जीत जाते थे और कभी देवता। जीत-हार का आधार शक्ति तथा निर्बलता है।

सतयुग की कुछ घटनायें हम पुस्तक के अन्तिम अध्याय में लिखेंगे। यहाँ तो हम परम्पराओं का ही वर्णन लिख रहे हैं।

परम्परा यह है कि सतयुग का इतिहास बहुत संक्षेप में और उन ऋषियों की स्मरण-शक्ति द्वारा लिखा गया है जो प्लावन में बच गये थे।

: ४ :

जल-प्लावन

महाभारत में जल-प्लावन का उल्लेख है—

आदित्ये सवितुर्ज्येष्ठे विवस्वान्जगृहे ततः ॥
त्रेतायुगादौ च पुनर्विवस्वान्मनवे ददौ ।
मनश्च लोकभत्यर्थं सतायेक्ष्वाकवै ददौ ॥
महा भा० शा०, पूना संस्करण गोरखपुर शा०—३४८-५०, ५१

आदित्य के वंशज विवस्वान के परिवार में त्रेता युग के आरम्भ में विवस्वान्

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनु उत्पन्न हुआ और उसने पुनः मनुष्य समाज उत्पन्न किया और इक्ष्वाकु को जन्म दिया।

यह संकेत है इस बात का कि जो मनु प्लावन में बचा था और जिसने पुनः मानव-सृष्टि की थी, त्रेता युग के आरम्भ में हुआ था।

ऐसे एक जल-प्लावन का वृत्तान्त मत्स्य पुराण में और महाभारत (वन पर्व) में लिखा है। महाभारत में लिखा वृत्तान्त पीछे दिया जा चुका है।

त्रेता युग के प्लावन और उस प्लावन से बचे मनु का उल्लेख महाभारत में इस प्रकार आता है—

विवस्वतः सुतो राजन् महर्षिः सुप्रतापवान्।
बभूव नरशार्दूल प्रजापतिसमद्युतिः॥
ओजसा तेजसा लक्ष्म्या तपसा च विशेषतः।
अतिचक्राम पितरं मनुः स्वयं च पितामहम्॥
तं कदाचित् तपस्यन्तमार्द्रचीरजटाधरम्।
चीरिणीतीरमागम्य मत्स्यो वचनमब्रवीत्॥
भगवन् हि कृता रक्षा त्वया सर्वा विशेषतः।
प्राप्तकालं तु यत् कार्यं त्वया तच्छ्रूयतां मम॥
अचिराद् भगवन् भौममिदं स्थावरजङ्गमम्।
सर्वमेव महाभाग प्रलयं वै गमिष्यति॥
सम्प्रक्षालनकालोऽयं लोकानां समुपस्थितः।
तस्मात् त्वां बोधयाम्यद्य यत् ते हितमनुत्तमम्॥
नौश्च कारयितव्या ते दृढा युक्तवटारका।
तत्र सप्तर्षिभिः साधर्मारुहेथा महामुने॥
बीजानि चैव सर्वाणि यथोक्तानि द्विजैः पुरा।
तस्यामारोहयेर्नावि सुसंगुप्तानि भागशः॥
बीजान्यादाय सर्वाणि सागरं पुप्लुवे तदा।
नौकया शुभया वीर महोर्मिणमरिंदम॥
नृत्यमानमिवोर्मीभिर्गर्जमानमिवाम्भसा।
क्षोभ्यमाणा महावातैः सा नौस्तस्मिन् महोदधौ॥
सर्वमाम्भसमेवासीत् खं द्यौश्च नरपुङ्गव।
एवंभूते तदा लोके संकुले भरतर्षभ॥
अदृश्यन्तर्षयः सप्त मनुर्मत्स्यस्तथैव च।
एवं बहून् वर्षगणांस्तां नावं सोऽथ मत्स्यकः॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चकर्षातन्द्रितो राजंस्तस्मिन् सलिलसंचये ।
ततो हिमवतः शृंगं यत् परं भरतर्षभ ।।

महा भा० वन० १८७-२,३,६,२७,२८,२९,३१,३२,३७,४३,४५,४६,४७

विवस्वान के एक अत्यन्त प्रतापी पुत्र (वंशज) हुए जो प्रजापति के समान कान्तिमान् और महान् ऋषि थे। वे ओज, तप और कान्ति में अपने पूर्वजों से भी आगे निकल गये। यह मनु थे। एक दिन मनु गीले कपड़ों को और जटा धारण किये चीरिणी नदी के तट पर तपस्या कर रहे थे कि उनको एक मत्स्य (सम्भवतः जलपोत निर्माता) आकर मिला और बोला—

'भगवन् ! आपने मेरी सब प्रकार से रक्षा की है। अतः मैं आपको एक रहस्य की बात बताता हूँ। वह यह कि शीघ्र ही सम्पूर्ण चराचर एवं पार्थिव जगत् नष्ट होने वाला है। जगत् का प्रलय होगा। सब लोकों के प्रक्षालन (पाप धोने) का समय आ गया है। अतः मैं आपको सचेत करता हूँ और आपके हित की बात बताता हूँ।

'आपको एक सुदृढ़ और साधनयुक्त (जो प्रलय में रह सके) नाव बनवानी चाहिये। तदनन्तर सप्तर्षिः के साथ उस नाव पर चढ़ जाइये। विद्वानों के कथनानुसार सब आवश्यक पदार्थों के बीज उस नाव में रख लीजिये।'

जल-प्लावन आया तो मनु उत्ताल तरंगों वाले सागर में तैरने लगे। वह मत्स्य (नौका निर्माण करने वाला) उस नौका को बचाता हुआ ले गया। उस समय आकाश और पाताल सब जलमय ही प्रतीत होते थे। केवल मनु, सप्तर्षि और मत्स्य तथा नौकारोही ही वहाँ रह गये थे। बहुत वर्षों तक जल में रहते हुए उन्होंने हिमालय की चोटी जल से बाहर देखी तो नौका वहाँ ले गये और वहाँ पर वे भूमि पर उतरे।

मनु ने पुनः सृष्टि उत्पन्न की।

मार्तण्डस्य मनुर्धीमानजायत सुतः प्रभुः ।
यमश्चापि सुतो जज्ञे ख्यातस्तस्यानुजः प्रभुः ।।
धर्मात्मा स मनुर्धीमान् यत्र वंशः प्रतिष्ठितः ।
मनोर्वंशो मानवानां ततोऽयं प्रथितोऽभवत् ।।
ब्रह्मक्षत्रादयस्तस्मान्मनोर्जातास्तु मानवाः ।
ततो भवन्महाराज ब्रह्म क्षत्रेण संगतम् ।।
ब्राह्मणा मानवास्तेषां साङ्गं वेदमधारयन् ।
वेनं धृष्णुं नरिष्यन्तं नाभागेक्ष्वाकुमेव च ।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कारूषमथ शर्यातिं तथा चैवाष्टमीमिलाम् ।
पृषध्रं नवमं प्राहुः क्षत्रधर्मपरायणम् ।।
नाभागारिष्टदशमान् मनोः पुत्रान् प्रचक्षते ।
पञ्चाशत् तुमनोःपुत्रास्तथैवान्येऽभवन् क्षितौ ।।
अन्योन्यमेदात् तेसर्वे विनेशुरिति नः श्रुतम् ।
पुरूरवास्ततौ विद्वानिलायां समपद्यत ।।

महा भा० आदि० ७५—१२,१३,१४,१५,१६,१७,१८

विवस्वान के पुत्र (सन्तान) बुद्धिमान और धर्मात्मा मनु हुए । ये बहुत प्रभावशाली थे । मनु का एक छोटा भाई भी था । वह यम के नाम से विख्यात था । इन मनु से ही मानव वंश चला । ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि सब मानव कुल उत्पन्न हुए । जो ब्राह्मण स्वभाव के थे उन्होंने वेद पढ़े और धर्म-कर्म में लग गये । जो क्षत्रिय स्वभाव के थे उनके नाम इस प्रकार हैं—

वेन, धृष्णु, नरिष्यन्त, नाभाग, इक्ष्वाकु, कारूष, शर्याति, इला, पृषध्र और नाभागरिष्ट ।

मनु के और भी पुत्र हुए, परन्तु वे परस्पर लड़ते-झगड़ते हुए मारे गये । क्षत्रियों में दो ने अपने वंश चलाये । एक था इक्ष्वाकु और दूसरी एक लड़की थी इला । इला का विवाह बुध से हुआ और दोनों से पुरूरवा उत्पन्न हुआ, जिसने पुरु वंश चलाया । इक्ष्वाकु का वंश सूर्य वंश के नाम से विख्यात हुआ ।

: ५ :

जल-प्लावन के उपरान्त

त्रेता युग के मानव और अन्य जीव-जन्तु प्लावन से बचे हुए प्राणियों की सन्तान ही हैं ।

वर्तमान मानव सन्ततियों में मुख्यतः आर्य, मंगोल, हब्शी जातियाँ ही पायी जाती हैं । अन्य जातियाँ भी हैं, परन्तु वे सब-की-सब, इनमें से जलवायु के प्रभाव से अथवा इनके संयोग से ही विकसित हुई प्रतीत होती हैं ।

ये तीनों-की-तीनों जातियाँ मनु के वंश में से हैं, अथवा प्लावन-पूर्व के काल की सृष्टि से बची थीं, कहना कठिन है । पुराणों के अध्ययन से प्रतीत होता है कि दस्यु, दानव, असुर, दैत्य, राक्षस, गन्धर्व, देवता तो मनु के वंशज ही हैं । इनमें दस्यु, असुर तो कर्मों के कारण विभिन्न हो गये । दानवों और यक्षों की सन्तान को राक्षस नाम दिया गया । दानव और दैत्य दनु और दिति की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन्तान माने जाते हैं। यदि यह इस प्रकार है तो यह मानना पड़ेगा कि वर्तमान प्लावन से मनु के अतिरिक्त अन्य लोग भी बच गये थे। दिति, अदिति, दनु इत्यादि कश्यप की पत्नियाँ थीं। कश्यप ब्रह्मा की तीसरी पीढ़ी में माना जाता है। यह प्लावन-पूर्व की सृष्टि का जीव था।

दस्यु, दानव इत्यादि सभ्यताओं के नाम भी हैं। इनका आरम्भ दानव इत्यादि सन्ततियों से ही हुआ होगा, परन्तु बाद में सन्ततियाँ (races) तो मिश्रित हो गयी प्रतीत होती हैं और सभ्यताएँ रह गयी हैं।

सैमिटिक, आर्य, मंगोल, दस्यु अब सभ्यताओं के नाम रह गये हैं। यातायात के साधनों में विस्तार के साथ पुनः सन्ततियाँ मिश्रित हो रही हैं और सभ्यताओं का आधार सन्ततियाँ नहीं रह गया। अपितु इनका मुख्य सम्बन्ध विचार और आचरण से है। इन विचारों और आचरणों में भी अन्तर आता है। इनका वर्णन हम उचित स्थान पर करेंगे।

यहाँ तो यही कहा जा सकता है कि सम्भवतया मनु की ही सन्तान, भिन्न-भिन्न देशों की जलवायु और वहाँ के खान-पान के कारण भिन्न-भिन्न आचार-विचार की बन गयी है। कोई बहुत पहले पूर्वजों से पृथक् हुए और कोई कुछ समय के उपरान्त।

एक बात निश्चित है कि जिस प्रकार का वर्णन आर्य ग्रंथों और पुराणादि ग्रंथों में मिलता है, वैसा विवरण हब्शी तथा मंगोल सन्ततियों के ग्रंथों में नहीं है। इससे उनके विषय में कहना कठिन है।

हम यहाँ पर आर्य सन्ततियों का ही वर्णन लिखेंगे। काल्डियन, बैबिलोनियन, मिश्राणी, यूनानी, रोमन तथा सैक्सन और नार्मन, ये तथा अन्य भी आर्य सन्तान हैं। देवताओं के विषय में स्पष्ट नहीं कहा जा सकता कि वे मनु की सन्तान हैं अथवा नहीं, क्योंकि इसके कहीं प्रमाण उपलब्ध नहीं।

इसके तो प्रमाण मिलते हैं कि देवता ब्रह्मा की सन्तान हैं। इससे यदि यह मान लिया जाये कि तिब्बत के पठार में रहते हुए देवता भी प्लावन से बच गये थे तो हम सत्य के अधिक समीप हो जायेंगे।

ब्रह्मा से मनु तक की सृष्टि का एक धुंधला-सा वृत्तान्त प्राचीन शास्त्रों में मिलता है। यह स्वाभाविक भी है। प्लावनों ने बहुत-कुछ विनष्ट कर दिया होगा। जो कुछ प्राचीन पुराणों में मिलता है, वह प्लावन में बचे हुए व्यक्तियों के स्मरण रहे वृत्तान्तों से ही हो सकता है।

मनु वेदों का ज्ञाता था। मनु के साथ सात ऋषि भी प्लावन से बचे थे। इससे वेद तथा अन्य कई प्रकार के प्लावन पूर्व के ज्ञान के अंश बच कर मनु सन्तान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को प्राप्त हुए।

मनु सन्तान ही आर्य कहलायी। इस सन्तान को वेद उत्तराधिकार में प्राप्त हुए थे। इस कारण आर्य संसार में श्रेष्ठ कहलाये।

मनु के पश्चात् का वृत्तान्त अधिक स्पष्ट, अधिक विस्तृत और उपयोगी ढंग पर लिखा मिलता है। परन्तु यहाँ भी एक बात स्मरण रखनी चाहिए कि प्लावन को हुए आज २१,१५,०६९ वर्ष व्यतीत हो चुके हैं। इसका इतिहास भी उस ढंग से लिखना सम्भव नहीं था, जो ढंग आजकल के इतिहास लिखने का है। परन्तु इसका अर्थ यह भी नहीं कि इतिहास शब्द और इतिहास के लिखने का प्रयोजन उस काल के लेखकों को विदित था ही नहीं। आर्य लोगों ने समय-समय का इतिहास व्याख्या से भी लिखा होगा, परन्तु साधारण रूप में वे व्यतीत हो रहे काल में केवल उन घटनाओं का वृत्तान्त लिख गये हैं, जिन्होंने युग परिवर्तन का कार्य किया था।

आधुनिक इतिहास-लेखकों की प्रथा के अनुसार राजा-महाराजाओं के जीवन की वे घटनाएँ भी लिखी जाती हैं जो सर्वथा अनावश्यक होती हैं तथा मानव-जीवन पर किसी प्रकार का भी प्रभाव नहीं रखतीं।

हम इस वर्तमान ढंग की आलोचना नहीं करते, परन्तु इतना अवश्य कहेंगे कि जिस ढंग से नैपोलियन अथवा किसी भी शासक का इतिहास लिखा गया है, उस ढंग से सब राजा-महाराजाओं का इतिहास लिखा जाता, जो इक्कीस लाख वर्ष में हुए हैं, तो उससे कुछ भी लाभ न होता। उसको कोई पढ़ता भी नहीं। नैपोलियन के जीवन का, यदि सार रूप में वर्णन करें तो गीता के इस श्लोक में सब समा जाता है—

सङ्गात्संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते ।।
क्रोधाद्भवति संमोहः संमोहात्स्मृतिविभ्रमः ।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति ।।

भ० गी० २–६२, ६३

अर्थात्—आसक्ति (किसी कार्य में लिप्त हो जाना) से काम (कामना-इच्छा) उत्पन्न होती है। इच्छा के पूर्ण न होने से क्रोध उत्पन्न होता है। क्रोध से सम्मोह (मिथ्या दृष्टि) उत्पन्न होता है। मिथ्या दृष्टि से स्मृति नष्ट हो जाती है। स्मृति नष्ट हो जाने से बुद्धि (विवेक) नष्ट होती है; तदनन्तर (बुद्धि नष्ट होने के उपरान्त) मनुष्य का नाश होता है।

किसी भी तानाशाह का इतिहास उठा लें। सिद्धान्त रूप में यही कहानी सब जगह मिलेगी। हिटलर, मुसोलिनी तो अभी निकट भूतकाल के प्राणी हुए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। रावण, कंस, दुर्योधन का इतिहास भी ले लें तो यही एक कथा सब स्थानों पर दृष्टिगोचर होगी।

तो फिर उसको बार-बार लिखने में क्या प्रयोजन है? यह भारतीय परम्परा प्रतीत होती है कि युग-प्रवर्तक घटनाओं का ही उल्लेख किया जाये और उनमें कार्य-कारण का सम्बन्ध जोड़कर मानव का मार्ग-दर्शन किया जाये। मानव, जैसा सृष्टि के आरम्भ में था, वैसा ही अब है। मन के विकार और उनके परिणाम ज्यों के त्यों ही घटते रहते हैं। व्याख्या में कहीं-कहीं, काल, स्थान एवं परिस्थितियों में अन्तर के कारण, भेद दिखाई देता है, परन्तु कारण, प्रक्रिया और परिणाम न्यूनाधिक सर्वत्र एक समान ही दिखाई देते हैं।

अतः भारतीय विद्वानों ने इतिहास को पुराणों में, जो मानव-विकारों और उनके परिणामों की कथायें हैं, लिखकर ही सन्तोष कर लिया है। यदि अशोक ने अपने ९० सम्बन्धियों की हत्या कर राज्य प्राप्त किया और औरंगजेब ने चार की हत्या करके राज्य लिया तो सिद्धान्त में अन्तर नहीं आया।

अशोक पूर्ण हत्याकाण्ड के बाद बौद्ध हो गया था तो औरंगज़ेब भी गाज़ी बन गया था। कहने का अभिप्राय यह है कि इतिहास बार-बार अपने को दोहराता है। एक ही कहानी बार-बार लिखने में कुछ लाभ नहीं। जो बुद्धिमान हैं, वे एक बार पढ़कर भी लाभ उठाते हैं और जो निर्बुद्धि अथवा अदूरदर्शी हैं, वे सौ बार सौ घटनाओं को पढ़कर भी अशिक्षित ही रह जाते हैं।

मनु की सन्तान आर्य कहलाई। मनु की नौका हिमालय मेरु में पर्वत पर लगी थी और वहाँ पर से, ज्यों-ज्यों जल उतरता गया, उसकी सन्तान दूर-दूर देशों में जाकर बसती गयी।

: ६ :

मनु की वंशावली अथवा नामावली

यह भारतीय परम्परा है कि वंशावली अथवा वंश में नामावली ब्रह्मा से आरम्भ की जाये, परन्तु ब्रह्मा से मनु तक की वंशावली बहुत ही संक्षिप्त लिखी गयी है। हम महाभारत और रामायण के अनुसार वंशावलियों के इस भाग को पृथक् पृथक् लिखेंगे।

वाल्मीकीय रामायण के अनुसार वंशावली है

ब्रह्मा → मरीचि → कश्यप → विवस्वान → मनु।

महाभारत के अनुसार वंशावली के इस भाग को इस प्रकार लिखा गया है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रचेता → पुत्र-प्रचेता → अचेतस → दक्ष → अदिति (कश्यप-पत्नी) → विवस्वान → मनु → { इक्ष्वाकु—सूर्यवंश / इला—चन्द्रवंश }

प्रचेता ब्रह्मा का दूसरा नाम है।

इन दोनों वंशावलियों में अन्तर इस कारण है कि विवस्वान को माता की ओर से ब्रह्मा से छठी पीढ़ी में गिनाया गया है और पिता की ओर से चौथी पीढ़ी में। इसमें हमारा मत यह है कि ये वंशावलियाँ नहीं, वंश के मुख्य-मुख्य व्यक्तियों की नामावली है।

यह बात मनु के पश्चात् की वंशावली से सिद्ध हो जाती है। बाल्मीकीय रामायण में मनु के बाद की वंशावली इस प्रकार है—

मनु → इक्ष्वाकु → कुक्षि → विकुक्षि → बाण → अनरण्य → पृथु → त्रिशंकु → धुंधुमार → युवनश्च → मान्धाता → सुसन्धि → ध्रुव-सन्धि → भरत → असित → सागर → असमंज → अंशुमान → दिलीप → भगीरथ → कुकुत्स्थ → रघु → प्रवृद्ध → शंखण → सुदर्शन → अग्निवर्ण → शीघ्रग → मरु → पशुश्रुक → अम्बरीष → नहुष → ययाति → नाभाग → अज → दशरथ → राम।

इन छत्तीस पीढ़ियों में राम त्रेता युग के अन्त में हुए थे। इस प्रकार १२,९६,००० (लगभग तेरह लाख) वर्ष को पैंतीस पीढ़ी में बांटा जाये तो प्रति पीढ़ी सैंतीस सहस्र वर्ष औसत पड़ती है। यह स्मरण रखना चाहिए कि यह वह काल है जो एक व्यक्ति के जन्म से लेकर उसके घर सन्तान उत्पन्न होने तक व्यतीत होता है। क्या सूर्यवंशियों के घर में औसत से ३७ हजार वर्ष की आयु में सन्तान होती थी ?

अतः इस बात को स्वीकार करने के अतिरिक्त अन्य कोई उपाय ही नहीं कि यह वंशावली नहीं, प्रत्युत वंश की नामावली है।

जिस प्रकार भारतीय परम्परा में इतिहास लिखने की कला वर्तमान पाश्चात्य परम्परा से भिन्न है, उसी प्रकार वंशावली लिखने की विधि भी भिन्न है।

नीचे महाभारत के अनुसार चन्द्रवंश की वंशावली, मनु से लेकर युधिष्ठिर तक लिख रहे हैं। महाभारत में दो वंशावलियाँ दी गयी हैं। एक वैशम्पायन के अनुसार एवं दूसरी महर्षि कृष्ण द्वैपायन के अनुसार। महर्षि कृष्ण द्वैपायन की वंशावली मनु से आरम्भ होती है। वह इस प्रकार है—

मनु → इला → पुरुरवा → आयु → नहुष → ययाति → पुरु → जनमेजय → प्राचिन्वान् → संयाति → अहंयाति → सार्वभौम → जयत्सेन → अवाचीन → अरिह →

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाभौम → अयुतनायी → अक्रोधन → देवातिथि → अरिह → ऋक्ष → मतिनार → तंसु → ईलन → दुष्यन्त → भरत → भुमन्यु → सुहोत्र → हस्ती → विकुण्ठन → अजमीढ़ → संवरण → कुरु → विदूर → अनश्वा → परिक्षित → भीमसेन → प्रतिश्रवा → प्रतीप → शान्तनु → (देवव्रत) → विचित्रवीर्य → { धृतराष्ट्र → दुर्योधन / पाण्डु → युधिष्ठिर }

कुल ४३ पीढ़ियाँ हुईं।

महाभारत में वैशम्पायन द्वारा कथित एक संक्षिप्त वंशावली भी है। इस वंशावली में बहुत से नाम छोड़ दिये गए हैं तथा छोड़े नामों के पश्चात् आने वाले नाम को भी पुत्र ही लिखा है। वैसे वह बड़ी वंशावली में कई पीढ़ी उपरान्त लिखा गया है।

उदाहरण के रूप में भरत का पुत्र भुमन्यु हुआ और भुमन्यु का सुहोत्रा। ये दोनों पीढ़ियाँ दोनों वंशावलियों में समान लिखी हैं, परन्तु इसके उपरान्त वैशम्पायन वाली वंशावली में लिखा है—

ततो दिविरथो नाम भुमन्योरभवत् सुतः।
सुहोत्रश्च सुहोता च सुहविः सुयजुस्तथा॥
पुष्करिण्यामृचीकश्च भुमन्योरभवन् सुताः।
तेषां ज्येष्ठः सहोत्रस्तु राज्यमाप महीक्षिताम्॥

म० भा० आदि० ९४–२४, २५

इसका अर्थ है कि भुमन्यु के दिविरथ, सुहोत्र, सुहोता, सुहवी, सुथजु तथा ऋचीक पुत्र हुए। सुहोत्र ज्येष्ठ था, उसने वंश चलाया।

आगे चलकर लिखा है—

ऐक्ष्वाकी जनयामास सुहोत्रात् पृथिवीपतेः।
अजमीढं सुमीढं च पुरुमीढं च भारत॥

म० भा० आदि० ९४–३०

इसका अर्थ है कि इक्ष्वाकु वंश की कन्या से सुहोत्र का विवाह हुआ और उससे तीन पुत्र उत्पन्न हुए, अजमीढ़, सुमीढ़, पुरुमीढ़।

अजमीढ़ ने वंश चलाया।

इसी सुहोत्र के विषय में द्वैपायन जी की वंशावली में लिखा है—

सुहोत्रः खल्विक्ष्वाकुकन्यामुपयेमे सुवर्णां नाम॥
तस्यामस्य जज्ञे हस्ती; य इदं हास्तिनपुरं स्थापयामास।
एतवस्य हास्तिनपुरत्वम्॥

म० भा० आदि० ९५–३४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुहोत्र ने इक्ष्वाकु कुल की कन्या सुवर्णा से विवाह किया। उसके गर्भ से हस्ति नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसने हस्तिनापुर नाम का नगर बसाया। हस्ति के बसाने से ही हस्तिनापुर कहलाया।

इन दो उद्धरणों को देने का प्रयोजन यह है कि जहाँ संक्षिप्त वंशावली में सुहोत्र और इक्ष्वाकु कुल की कन्या के गर्भ से अजमीढ़ की उत्पत्ति लिखी है वहाँ दूसरी बड़ी वंशावली में सुहोत्र और इक्ष्वाकु कुल उत्पन्न कन्या से हस्ति नाम के पुत्र की उत्पत्ति लिखी है। अजमीढ़ तो इस विस्तृत वंशावली में कई पीढ़ी आगे जाकर आया है।

हस्ति ने त्रिगर्तराज की पुत्री यशोधरा से विकुण्ठन को उत्पन्न किया। विकुण्ठन ने दशार्ह कुल की कन्या सुदेवी से अजमीढ़ को उत्पन्न किया। इसका अर्थ है कि अजमीढ़ सुहोत्र का पौत्र था। इस पर भी संक्षिप्त वंशावली में पुत्र ही लिखा है।

यह सब लिखने का अभिप्राय यह है कि वंशावली में पुत्र का अर्थ वंशोत्पन्न लेना चाहिये। यह पौत्रं-प्रपौत्र और इससे भी आगे की पीढ़ी में कोई हो सकता है।

पिछले अध्याय में भारतीय परम्परा की यह बात हमने बतायी थी कि लाखों वर्षों के इतिहास में लेखकों ने केवल उन घटनाओं का उल्लेख किया है जो प्रवर्तक रही हैं। अन्य आवश्यक और साधारण मानवों और राजा-महाराजाओं के जीवन-वृत्तान्त लिखने का कुछ प्रयोजन नहीं समझा गया।

इस अध्याय में हमने वंशावलियों के विषय में भारतीय परम्परा का उल्लेख किया है। लाखों वर्षों में यदि राजा-महाराजाओं की वंशावली पूर्ण लिखी जाती तो व्यर्थ का बोझ ही बनता। इस कारण वंश में केवल मुख्य-मुख्य व्यक्तियों के नाम लिखे हैं। इसमें प्रमाण भी है। संजय ने महाराज धृतराष्ट्र को वंश के नष्ट हो जाने पर सान्त्वना देते हुए पुरु वंश के अनेकानेक विख्यात कामों को सुना कर यह कहा था—

एते चान्ये च राजानः शतशोऽथ सहस्रशः।
श्रूयन्ते शतशश्चान्ये संख्याताश्चैव पद्मशः॥
हित्वा सुविपुलान् भोगान् बुद्धिमन्तो महाबलाः।
राजानो निधनं प्राप्तास्तव पुत्रा इव प्रभो॥

महा भा० आदि १—२३९, २४०

लाखों-करोड़ों अन्य राजा-महाराजा हो चुके हैं जो मर चुके हैं, जैसे आप-के पुत्र मर गये हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमने बताया है कि मनु का काल इस त्रेता युग के आरम्भ में था। नक्षत्र गणना से चतुर्युगी में त्रेता युग का काल १२,९६,००० वर्ष होता है। इस युग के आरम्भ में मनु ने सृष्टि की।

इससे पूर्व कई युगान्तर प्रलय का होना माना जाता है। अन्तिम प्रलय, जिसमें मनु इत्यादि लोग बचे थे, के कारण पूर्व इतिहास का बहुत कम उल्लेख मिलता है। जो कुछ भी है, वह केवल मौखिक वृत्तान्तों से ही मनु भी सन्तान को प्राप्त हुआ।

हम यह ऊपर लिख आये हैं कि मनु की दो सन्तान इला और इक्ष्वाकु ने वंश चलाए। इला की सन्तान चन्द्रवंशी कहलायी व इक्ष्वाकु की सूर्यवंशी।

हमने ऊपर लिखा है कि जब कोई किसी का पुत्र लिखा जाता है तो पुत्र का अभिप्राय वंश में उत्पन्न से लेना चाहिये। अतः इक्ष्वाकु और इला बहिन-भाई थे अथवा उनमें भी कई पीढ़ियों का अन्तर था, कहा नहीं जा सकता।

यह कहा गया है कि इला की सन्तान चन्द्रवंशी कहलायी। ऐसा क्यों? सम्भवतः इला की सन्तान चन्द्र देव के वंश में से होगी। वह पुरखा थी। यह भी कथा है कि चन्द्रदेव के पुत्र बुद्ध देव इला की सन्तान हुई। पीछे इला पुरुष हो गयी और वह पुरुष सुद्युम्न कहलाया।

अधिक सम्भव यह प्रतीत होता है कि चन्द्र के पुत्र बुद्ध ने सन्तान तो उत्पन्न कर दी, परन्तु राज्य की लालसा न रखने के कारण इला को ही राज्य सौंप देवलोक को चला गया।

इस उल्लेख से यह भी अनुमान लगाया जा सकता है कि प्लावन से देव लोक (तिब्बत के पठार) पर भी बहुत से लोग बच गये थे जो देवता कहलाये। चन्द्रमा भी देवलोक का प्राणी था और बुद्ध उसका पुत्र था।

मनु की सन्तान दो दिशाओं में फैली। एक तो मेरु से पश्चिम् की ओर व दूसरी पूर्व की ओर। इक्ष्वाकु इत्यादि पूर्व की ओर गये और इला की सन्तान पश्चिम की ओर बढ़ी।

एक बात और प्रतीत होती है कि जहाँ इक्ष्वाकु वंश में प्रायः श्रेष्ठ मनुष्य उत्पन्न हुए वहाँ इला के वंश के विषय में यह बात नहीं कही जा सकती।

इला का पुत्र पुरुरुवा—

लोभान्वितो बलमदान्नष्टसंज्ञो नराधिपः।

म० भा० आ० ७५–२३

लोभ से अभिभूत हो, बल के गर्व में आकर अपनी विवेक शक्ति खो बैठा।

-पुरुरुवा बलपूर्वक देवलोक से उर्वशी तथा विविध स्थापित अग्नियों को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धरातल पर ले आया। उर्वशी से पुरुरुवा के घर पुत्र हुए। ये अग्नियाँ क्या थीं, विचारणीय है।

पुरुरुवा अपने बल-पराक्रम से उन्मत्त होकर ब्राह्मणों पर अत्याचार करने लगा। देवता और विद्वान लोग इसको समझाते रहे, परन्तु वह न माना। अन्त में ऋषियों ने इसको नष्ट कर दिया और इसकी सन्तानों में आयु इसका उत्तराधिकारी हुआ।

आयु की सन्तानों में नहुष हुआ। इसने भी देवलोक पर अधिकार कर इन्द्र को बन्दी बना लिया। इन्द्रासन पर बैठकर तो नहुष के अहंकार की सीमा न रही। उसने ऋषियों व महर्षियों से भी कर प्राप्त करना आरम्भ कर दिया। अन्त में शची (इन्द्र की पत्नी) से विवाह के लोभ में महर्षियों को पशु की भाँति वाहन बनाकर वह उनकी पीठ पर सवारी करने लगा।

ऋषियों ने इस पापी को शाप देकर नष्ट कर दिया। नहुष का पुत्र ययाति राजा बना। नहुष के मरने पर देवता पुनः अपने लोक में स्वतन्त्र हो गये और ययाति उत्तर पांचाल में राज्य करने लगा।

इस प्रकार यह वंश चलता गया। चन्द्रवंश व सूर्य वंश दोनों में असंख्य राजा-महाराजा हुए तथा उनमें कई पराक्रमी एवं चक्रवर्ती भी हुए। जब-जब राजा लोग बल से मदान्ध हुए, ब्राह्मणों तथा ऋषि-महर्षियों ने उनको सन्मार्ग पर लाने का यत्न किया, अन्यथा उनको दण्ड देकर राज्यच्युत कर दिया। आवश्यकता पड़ी तो उनका जीवनान्त भी कर दिया।

चन्द्र वंश अर्थात् इला की सन्तानों में जो नहुष तथा ययाति लिखे हैं, वे नहीं हैं, जिनका उल्लेख सूर्य-वंशावली में आया है। मनु से चलकर सूर्यवंशियों के नहुष और ययाति तो बहुत पीछे आये हैं। राम व दशरथ से कुछ ही पीढ़ी पहले। इसके विपरीत चन्द्रवंशीय नहुष और ययाति तो इला के कुछ ही पीढ़ी पीछे उत्पन्न हुए थे।

सूर्यवंशीय नहुष की पीढ़ियाँ इस प्रकार लिखी हैं—

नहुष → ययाति → नाभाग → अज → दशरथ → राम। और चन्द्रवंशीय नहुष की पीढ़ियाँ ऐसे हैं—

नहुष → ययाति → { यदु → यदुकुल
जनमेजय → प्राचिन्तवान → संयाति इत्यादि
चन्द्रवंशी राजे-महाराजे।

सतयुग में, मनुष्य की आयु तथा व्यवहार के विषय में मनुस्मृति में लिखा है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आरोगाः सर्वसिद्धार्थाश्चतुर्वर्षशतायुषः ।
कृते त्रेतादिषु ह्येषामायुर्ह्रसति पादशः ॥

मनु० १–८३

अर्थात्—सत्युग में सब रोगरहित होते थे । उनके सम्पूर्ण मनोरथ पूर्ण होते थे । आयु ४०० वर्ष की होती थी । अगले युगों में आयु १००-१०० वर्ष से कम होती गयी ।

जब पृथिवी पर जनसंख्या कम हो और फल, फूल, कन्द, अन्न पर्याप्त मात्रा में हो तो आयु का लम्बा होना तथा शरीर का रोगरहित होना स्वाभाविक ही है । 'सर्व मनोरथ सिद्ध होते थे' का अर्थ है कि आयु सम्बन्धी सभी कामनायें पूर्ण होती थीं ।

वेद में मनुष्य की आयु सौ वर्ष लिखी है ।

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छत ँ समाः ॥

यजु० ४०।२

(हे मनुष्यो ! कर्म करते हुए १०० वर्ष तक जीने की इच्छा करो ।)

तो क्या यह समझा जाये कि वेद में यह मन्त्र केवल कलियुगी जीवों के लिये है ? हम समझते हैं कि न्यूनातिन्यून आयु एक सौ वर्ष मानी है और उतनी ही आयु तक सब प्रकार के कर्म करते हुए जीना चाहिए । इसका अर्थ यह नहीं लेना चाहिए कि आयु अधिक हो नहीं सकती थी ।

जैसा कि हमने ऊपर बताया है, सत्युग में भोजन सामग्री प्रचुर मात्रा में होने से तथा वायु मण्डल में अधिक शुद्धता के कारण प्रायः मानवों की आयु १०० वर्ष से बहुत अधिक थी । मनु के उक्त श्लोक लिखने का आशय है कि सत्युग में ४०० वर्ष की औसत आयु थी ।

: ७ :

मनु से वंशों का आरम्भ

यह परम्परा है कि ब्रह्मा वेदों के साथ उत्पन्न हुए । वेदों का अर्थ है सब विद्याओं का मूल ज्ञान । इस परम्परा का उल्लेख भारत के सब शास्त्रों में मिलता है । राजनीतिशास्त्र, जिसमें धर्म, अर्थ और काम की शिक्षा है, ब्रह्मा के त्रिवर्ग-शास्त्र में वर्णित है । ब्रह्मा ने मोक्ष धर्म की भी शिक्षा अपने मानस पुत्रों को दी । आयुर्वेद, ज्योतिष-शास्त्र, काव्य और नाद कला, इतिहास इत्यादि की विद्या, अभिप्राय यह है कि प्रत्येक विद्या के ब्रह्माजी ज्ञाता थे और उन विद्याओं की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिक्षा उन्होंने मानवों को दी।

परन्तु युगान्त-प्रलय के पश्चात् ये सब विद्यायें मनु और ऋषियों द्वारा ही मानवों को मिलीं।

ब्रह्मा के अमित ज्ञान का स्वामी होने की भारतीय परम्परा का समर्थन इब्रानी प्राचीन ग्रंथों में भी मिलता है। ब्रह्मा का नाम उनकी भाषा में आदम (प्रथम मानव) है। आदम के विषय में स्टानले लिखते हैं—

> The Hebrew doctors ascribe to Adam various compositions on the subject of Ethics, Theology and Legislation, as well as a book on the creation of the world, which he bequeathed to his posterity; and which together with the book of Seth and Edris as the Arabians denominate Enoch were deposited in a chest, which many centuries after the deluge was found by the patriarch Abraham, in the country of the Sabians. This information is given to us by Stanley, out of the old Chaldean and Arabian authors, in the following passage:
>
> Kissaeus, a Mahomedan writer, asserts that the Sabians possessed not only the book of Seth and Edris, but also others written by Adam himself; for Abraham, after his expulsion from Chaldea by the tyrant Nimrod, going into the country of the Sabians opened the chest of Adam, and behold! in it were the books of Adam, as also those of Seth and Ediris; and the names of all the prophets that were to succeed Abraham.[1]

अर्थात्—इब्रानी विद्वानों ने यह माना कि आदम (ब्रह्मा) ने चरित्र (धर्म), विश्वासों (मतों) और राजनीति पर पुस्तकें लिखी थीं। उसने संसार की उत्पत्ति पर भी पुस्तकें लिखी थीं, जो उसने भावी सन्तानों के लिये दे दीं। उनकी पुस्तक व उनके साथ Seth (वसिष्ठ) की और Edris(अत्रि)की पुस्तकें भी एक पेटी में बन्द कर दबा दी थीं, जो कई सौ वर्ष प्लावन के पश्चात् अब्राह्म पितामह ने निकाली थीं, जब वह सीबियन के देश में गया था।

यह सूचना स्टैनले ने काल्डियन और अरबी लेखकों को पढ़कर निम्न शब्दों में दी है।

---

1. **Stanley on the Oriental Philosophy, lib. 3, cap. 3. p. 36 qtd. by Bhagwaddatta, in भारतवर्ष का वृहद् इतिहास, भाग २, पृ० २६।**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किसंस, एक मुसलमान लेखक कहता है कि सेवियन के पास न केवल सेठ (विसिष्ठ) की और अद्रीस (अत्रि) की पुस्तकें थीं, प्रत्युत दूसरी पुस्तकें, जिनको आदम (ब्रह्मा) ने स्वयं लिखा था, थीं। इब्राह्म, जब वह आततायी निम्रूद द्वारा काल्डिया से निकाला गया था और जब वह सेबिया के देश में पहुँचा तो उसने वह पेटी खोली जो आदम की थी। और उसमें से आदम की तथा सेठ व अद्रीस की पुस्तकें निकल आयीं। उन पुस्तकों में उन (ऋषियों) के नाम भी थे जो इब्राह्म के उपरान्त आने वाले थे।

दूसरे लेख से इस रहस्य का पता चलता है कि ब्रह्मा इत्यादि द्वारा लिखित शास्त्र, प्लावन आने से पूर्व, एक पेटिका में रखकर भूमि में गाड़ दिये गये थे, जो प्लावन के पश्चात् खोदकर निकाले गये। एक अन्य बात का पता चलता है कि लेखन-कला व सामग्री, प्लावन पूर्व के लोगों को भी ज्ञात थी; साथ ही इस बात का समर्थन भी मिलता है कि वेदादि शास्त्र सृष्टि के आदि काल से ही मिले होंगे।

इस बात के प्रमाण मिलते हैं कि वर्तमान चतुर्युगी के आरम्भ में भी पुराणादि ग्रन्थ थे। उक्त उद्धरण में सृष्टि आरम्भ का इतिहास Book on the Creation of the World लिखने की बात भी है। यही तो पुराणों का आरम्भ है। इससे यह भी अनुमान लगता है कि बहुत सी पुस्तकें प्लावन में विनष्ट हो गयी होगीं।

भारतीय परम्परा में यह है कि मनु ने प्लावन पूर्व का ज्ञान ऋषियों द्वारा प्लावन पश्चात् की सृष्टि में प्रचलित किया।

प्लावन-पूर्व के काल को यदि आदि युग के नाम से स्मरण किया जाये तो अधिक उपयुक्त होगा। प्लावन के पश्चात् तो इतिहास क्रमबद्ध एवं आवश्यकतानुसार मिलता है।

प्लावन के पश्चात् जो पहली घटना लिखी मिलती है वह मनु के पुत्रों के विषय में है। मनु के कई पुत्र परस्पर वैमनस्य के कारण नाश को प्राप्त हुए। इससे यह स्पष्ट होता है कि जैसे आदि युग में ब्रह्मा की कई सन्तानें पापमय प्रवृत्ति वाली हो गयी थीं, वैसे ही मनु की सन्तानें भी ऐसी हो गयी थीं। अर्थात् दिन व रात की भाँति दैवी और आसुरी स्वभाव वाले मनुष्य आदि काल से होते रहे हैं। ये अनन्त काल तक होते रहेंगे। इनकी उत्पत्ति पूर्व जन्म के कर्म-फलों के अधीन होती है। आदि-युग के आरम्भ में पूर्व कल्प की आत्मायें ही अपने अच्छे-बुरे कर्मों को लेकर इस कल्प में आयी हैं।

इससे यह कहना ठीक प्रतीत होता है कि सतयुग में भी सब लोग श्रेष्ठ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आचार-विचार के नहीं थे। मनु की अपनी सन्तान ही दुष्ट थी।

मनु के कई धर्मात्मा पुत्र भी हुए। उनमें इक्ष्वाकु एक था। इला भी सद्गुणयुक्त कन्या थी। दोनों ने अपनी योग्यता के आधार पर राज्य-वंशों की नींव रखी। यहाँ यह स्मरण रखना चाहिये कि इक्ष्वाकु तथा इला, जो सूर्य वंश और चन्द्रवंश चलाने वाले थे, मनु की पहली पीढ़ी में ही हुए थे, यह आवश्यक नहीं। यह हम लिख आये हैं कि पुत्र-पुत्री के अर्थ सन्तान के ही हैं और सन्तान पहली अथवा बाद की पीढ़ी में भी हो सकती है। दूसरी, तीसरी और इससे अगली पीढ़ियों में उत्पन्न भी सन्तान के रूप में लिखी जाती थी। इतना स्पष्ट है कि मनु और इक्ष्वाकु तथा मनु और इला के मध्य में कोई उल्लेखनीय सन्तान नहीं हुई। इसके पश्चात् हम दोनों वंशों की मुख्य-मुख्य सन्तानों के सम्बन्ध में लिखेंगे।

यह हम लिख चुके हैं कि इला की, चन्द्र के पुत्र बुद्ध से, पुरुरुवा सन्तान हुई। इला स्वयं शासन करती थी। तत्पश्चात् उसने अपने पुत्र पुरुरुवा को राज्यगद्दी पर बिठाया। पुरुरुवा अभिमानी एवं क्रूर प्रकृति का राजा था। इसने अपने राज्य से बाहर भी हाथ पसारे थे। गन्धर्व लोक की अप्सरा उर्वशी को पकड़कर लाया था और उसको अपनी पत्नी बनाकर उसने सन्तान उत्पन्न की थी। पुरुरुवा वहाँ की त्रिविध अग्नियों को भी ले आया था।

अग्नि का शब्द प्राचीन वैदिक वाङ्मय में दैवी शक्ति के लिये प्रयुक्त होता है। इसलिये पुरुरुवा कौनसी गन्धर्वों की शक्तियों को उठा लाया था, जिनका वर्णन, लाखों वर्ष पश्चात् भी, महर्षि व्यास करना आवश्यक मानते थे, विचारणीय है। ये शक्तियाँ अवश्य ही अद्भुत रही होंगी, जो मानवों के पास नहीं होंगी अथवा जिनका ज्ञान मानवों को नहीं होगा।

पुरुरुवा के बाद आयु नाम की एक सन्तान विख्यात हुई है। आयु की ख्याति कदाचित् इतनी ही थी कि उसने नहुष को जन्म दिया था। आयु ने स्वर्भानुकुमारी नाम की स्त्री से विवाह किया और उसके गर्भ से पाँच पुत्र उत्पन्न हुए। उनके नाम थे नहुष, वृद्धशर्या, रजि, गय और अनेना। राज्यभार नहुष ने सम्भाला था। नहुष का जीवन-वृत्तान्त हम विस्तार से आगे चलकर लिखेंगे।

नहुष का पुत्र ययाति हुआ, जिसको उल्लेखनीय माना गया है। ययाति का वंश दो भागों में बंट गया। एक यदुकुल कहलाया, जिसमें पीछे चलकर कृष्ण उत्पन्न हुए। दूसरा वंश पुरु ने चलाया। यह पुरुवंश था जिसमें आगे चलकर कौरव इत्यादि राजा-महाराजा हुए। पुरुवंश में अन्य अनेक यशस्वी, शूरवीर, चक्रवर्ती राजा-महाराजा हुए। दोनों युग त्रेतायुग से चलते हुए द्वापर के अन्त तक चलते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहे। महाभारत युद्ध के कुछ ही काल बाद यदुवंशी परस्पर लड़ते-लड़ते विनाश को प्राप्त हुए। पुरु का वंश भी, महाभारत युद्ध में प्रायः समाप्त होने जा रहा था। इस कुल का एक बालक जो गर्भ में था, वच सका। वह पीछे जाकर राजा परीक्षित के नाम से विख्यात हुआ। राजा परीक्षित की सन्तान मुसलमानों के आक्रमण आरम्भ होने के समय भी विद्यमान थी। पञ्जाब का राजा जयपाल चन्द्र-वंशी ही माना जाता था। यों तो अंग्रेज़ी राज्य के समय, भरतपुर तथा कुछ अन्य राजस्थान के राजा-महाराजा भी यदुकुल के अवशेष कहे जाते थे।

यह कुल बहुत लम्बा चला। इसमें कारण यह था कि समय-समय पर इस कुल में धर्मात्मा, शूरवीर, बुद्धिमान घटक उत्पन्न होते रहे।

इसी प्रकार इक्ष्वाकु वंश की परम्परा भी चली। उस वंश में भी अनेक यशस्वी और धर्मात्मा राजा-महाराजा उत्पन्न हुए। इनमें त्रिशंकु, मान्धाता, प्रसेनजित, सगर, दिलीप, भगीरथ, रघु, दशरथ एवं राम हुए।

सूर्यवंश की परम्परा भी चलती रही। मुसलमानी काल तक इस वंश का अयोध्या में राज्य चलता रहा प्रतीत होता है। यों तो अनेक राजा-महाराजा, जो राजस्थान में राज्य करते थे अथवा अन्य राज्यों में थे, अपने को सूर्यवंशी ही बताते थे।

सूर्यवंश एवं चन्द्रवंशियों की अनेक शाखायें-उपशाखायें पूर्ण भारतवर्ष में विद्यमान थीं। इनका अब अन्त हो गया है। भारत में अब राजा-महाराजा समाप्त होकर प्रजातन्त्र शासन चल पड़ा है। यह प्रजातन्त्र सड़क कूटने वाले इंजिन की भाँति सबको समान रूप में चकनाचूर कर एक तह में बिठाने वाला सिद्ध हो रहा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अध्याय छः

: १ :

वेद

भारतीय परम्परा के अनुसार वेद सब सत्य विद्याओं के ग्रन्थ हैं, अर्थात् इन ग्रन्थों में इहलौकिक एवं पारलौकिक सब विद्यायें बीज रूप में विद्यमान हैं। अतः इन ग्रन्थों के विषय में संक्षेप में लिख देना ठीक रहेगा।

यह हम लिख चुके हैं कि कैसे वेद अन्तरिक्ष के देवताओं द्वारा मानव ऋषियों को मिले? भारतीय परम्परा यह है कि मनुष्यों में ज्ञान स्वयमेव उत्पन्न नहीं होता। आज उन्नत कहे जाने वाले युग में भी यदि किसी मनुष्य को उत्पन्न होते ही पूर्ण मानव-समाज से पृथक् रख दिया जाये तो वह स्वयमेव कुछ भी नहीं सीख सकता।

विकासवादी तो आज के युग को उस युग से, जब ब्रह्मा की उत्पत्ति का वर्णन मिलता है, बहुत उन्नत मानते हैं। मनुष्य ने, उनके विचारानुसार, अपनी मानवीय शक्तियों में बहुत उन्नति की है। जब इस काल में मनुष्य अपने माता-पिता, भाई-बन्धुओं, मित्र एवं गुरुओं से सीखे बिना पशु का पशु रहता है, तो ब्रह्मा के युग में यह सम्भव ही नहीं हो सकता था कि बिना कहीं से ज्ञान प्राप्त किये, उस युग के लोग सीख सके होंगे।

इसी कारण यदि हम उन प्रमाणों को सत्य मानें, जिनसे ब्रह्मा के काल में अनेकानेक ज्ञान-विज्ञान की बातों का पता चलता है, तो यह मानना पड़ेगा कि आदि मनुष्य को किसी ने ज्ञान दिया होगा। चाहे तो यह मानें कि परमात्मा ने दिया था, चाहे सांप ने, इससे इन्कार नहीं किया जा सकता कि ज्ञान किसी के देने से ही मिला। भारतीय परम्परा यह है कि आदि युग के आरम्भ में मानव-कल्याण के लिये वेद मनुष्यों को मिले।

ब्रह्मा के विषय में यह कहा जाता है कि वह वेदों का ज्ञाता था। उसने वेद-ज्ञान मरीचि इत्यादि अपने मानस-पुत्रों को दिया। साथ ही एक विस्तृत ग्रन्थ, जिसका नाम त्रिवर्ग-शास्त्र रखा गया, लिखा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेद परमात्मा ने ब्रह्मा को दिये। इस विषय में प्रमाण मिलते हैं। यह भी प्रमाण मिलता है कि इनका ज्ञान ब्रह्मा को अग्नि, वायु, आदित्य, अङ्गिरा के द्वारा हुआ···

अयं सहस्रमा नो दृशे कवीनां
मतिर्ज्योतिर्विधर्मणि ॥ अथर्व० ७।२२।१

अर्थात्—बलवान एवं सर्वशक्तिमान परमात्मा बुद्धिमान विशेष गुणयुक्त आत्मा में प्रकाशमान होकर कवियों का-सा ज्ञान देता है।

अथर्ववेद में यह भी लिखा है—

यस्मादृचो अपातक्षन् यजुर्यस्मादपाकषन्।
सामानि यस्य लोमान्यथर्वाङ्गिरसो मुखम्।
स्कंभं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः॥

अथर्व० १०।७।२०

अर्थात्—जिससे ऋक्, यजुर्वेद, साम और अथर्व वेद प्रकाशित हुए हैं, वह परमात्मा ही है।

त्रीणिच्छन्दांसि कवयो वि येतिरे पुरुरूपं दर्शतं विश्वचक्षणम्।
आयो वाता ओषधयस्तान्येकस्मिन् भुवन् आर्पितानि॥
रपद् गन्धर्वीरप्या च योषणा नदस्य नादे परि पातु नो मनः···।

अथर्व० १८।१।१७, १९

अर्थात्—तीनों वेदों का वर्णन करने के लिये परमात्मा को लक्ष्य में रखकर ही करो। जिस प्रकार जल, वायु और औषधियाँ भूलोक में उत्पन्न होती हैं, उसी प्रकार वेद उस परमात्मा के आश्रित हैं, अर्थात् उससे उत्पन्न होते हैं।

स्त्री के समान सेवन करने योग्य वेद-वाणी हमारे मन को ईश्वर का ऐश्वर्य-गान करने में लगाये और रक्षा करे।

शतपथ ब्राह्मण में लिखा है—

परमात्मा ने अग्नि, वायु, आदित्य से ऋक्, यजु एवं साम की उत्पत्ति की—

यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै।

श्वेताश्व० ६–१८

जो सृष्टि के आरम्भ में ब्रह्मा को पैदा करता है और उसके लिये वेदों को बनाता है, वह परमात्मा है।

अग्निवायुरविभ्यस्तु त्रयं ब्रह्म सनातनम्।
दुदोह यज्ञ सिद्धचर्थमृग्यजुःसामलक्षणम्॥

मनु० १–२३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यज्ञ (लोक-कल्याण) की सिद्धि के लिये परमात्मा ने अग्नि, वायु, आदित्य द्वारा ऋक्, यजु, साम, सनातन वेदों का ज्ञान दिया।

इस प्रकार पूर्ण भारतीय साहित्य में वेदों को सत्य और लोक-कल्याण के निमित्त माना गया है।

: २ :

त्रिवर्ग-शास्त्र

समय व्यतीत होने पर—

ते मोहवशमापन्ना मनुजा मनुजर्षभ।
प्रतिपत्तिविमोहाच्च धर्मस्तेषामनीनशत्॥
नष्टायां प्रतिपत्तौ च मोहवश्या नरास्तदा।
लोभस्य वशमापन्नाः सर्वे भरतसत्तम॥
अप्राप्तस्याभिमर्शं तु कुर्वन्तो मनुजास्ततः।
कामो नामापरस्तत्र प्रत्यपद्यत वै प्रभो॥
अगम्यागमनं चैव वाच्यावाच्यं तथैव च।
भक्ष्याभक्ष्यं च राजेन्द्र दोषादोषं च नात्यजन्॥
विप्लुते नरलोके वै ब्रह्म चैव ननाश ह।
नाशाच्च ब्रह्मणो राजन् धर्मो नाशमथागमत्॥

महा भा० शा० ५९–१६, १७, १८, २०, २१

अर्थात्—सब लोग मोहवश हो गये। वे कर्त्तव्याकर्त्तव्य के ज्ञान से शून्य हो गये तथा धर्म का लोप हो गया। कर्त्तव्याकर्त्तव्य का ध्यान छूट जाने पर मनुष्य मोहवश (अधीन) हो गये।

लोभ के अधीन होने से अन्य दोष क्रोध, काम एवं अहंकार उत्पन्न होने लगे।

इससे वे अगम्यागम्य, वाच्यावाच्य, भक्ष्याभक्ष्य तथा दोष-अदोष का विचार छोड़ बैठे।

मनुष्य लोक में धर्म का विलोप हो जाने पर वेदों के स्वाध्याय का भी लोप हो गया। वैदिक ज्ञान के लोप होने से यज्ञादि कार्यों का नाश हो गया।

ऐसे समय में ब्रह्मा ने—

श्रेयोऽहं ये चिन्तयिष्यामि ध्येतु वो भीः सुरर्षभाः॥

महा भा० शा० ५९–२८

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन (लोगों) के श्रेय के लिये विचार किया और—

ततोऽध्यायसहस्राणां शतं चक्रे स्वबुद्धिजम् ।
यत्र धर्मस्तथैवार्थः कामश्चैवाभिवर्णितः ॥
त्रिवर्ग इति विख्यातो गण एष स्वयम्भुवा ।
चतुर्थो मोक्ष इत्येव पृथगर्थः पृथग्गुणः ॥

म० भा० शा० ५९–२९, ३०

अपनी बुद्धि से एक लाख अध्याय का एक ऐसा नीति-शास्त्र रचा जिसमें धर्म, अर्थ और काम का विस्तारपूर्वक वर्णन है। यह नीतिशास्त्र त्रिवर्ग के नाम से विख्यात है।

चौथा वर्ग मोक्ष है। उसका प्रयोजन और गुण इन तीनों से भिन्न है।

ब्रह्माजी का यह नीति-शास्त्र आज प्राप्त नहीं है। कदाचित् इतना बड़ा ग्रन्थ प्लावन जैसे प्रलय में सुरक्षित रखना सम्भव नहीं था, परन्तु परम्परा से इस ग्रन्थ में लिखा विषय मनु को विदित था। मनु ने अपने शास्त्र (मनुस्मृति) में उसका उल्लेख भी किया है और उसका संक्षेप भी दिया है।

मनु कहते हैं—

इदं शास्त्रं तु कृत्वाऽसौ मामेव स्वयमादितः ॥

मनु० १–५८

इसी नीति-शास्त्र को ब्रह्मा ने रचकर मुझको पढ़ाया। महाभारत में भी ब्रह्मा के नीति-शास्त्र से अन्य नीति-शास्त्रों के निर्माण का उल्लेख है। यहाँ पर पढ़ाने का अभिप्राय उनसे प्राप्त करना समझना चाहिये।

लिखा है कि ब्रह्मा ने सबसे पहले भगवान् शंकर को यह नीति-शास्त्र पढ़ाया। जब शिव ने देखा कि प्रजागणों की आयु तथा शारीरिक शक्तियों का ह्रास हो रहा है तो उन्होंने इस वृहद् नीति-शास्त्र को संक्षिप्त कर दिया। तब इस शास्त्र का नाम वैशालाक्ष हो गया। शंकरजी से इस संक्षिप्त शास्त्र को इन्द्र ने पढ़ा। उस समय इसमें दस हज़ार अध्याय थे। इन्द्र ने भी इसका संक्षेप किया और यह पाँच हज़ार अध्यायों का ग्रन्थ हो गया। उस समय यह बाहु-दन्तक नीति-शास्त्र के नाम से विख्यात हुआ।

तदनन्तर सामर्थ्य बृहस्पति ने इसका संक्षेप किया और इसको बार्हस्पत्य नाम से तीन हज़ार अध्याय का बना दिया। इसके बाद शुक्राचार्य ने इसको और भी संक्षिप्त कर दिया तथा इसको केवल एक हज़ार अध्याय का रहने दिया।

इतना संक्षिप्त प्लावन पूर्व काल में ही हो गया था। मनु तो इन सबके उपरान्त आये हैं। प्लावन के उपरान्त मनु ने अपनी स्मृति से यह नीति-शास्त्र रचा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनु ने यह तो बताया है कि यह वही है जो ब्रह्मा से उसने सीखा था। इसका अर्थ हम यह समझते हैं कि उसकी मनुस्मृति ब्रह्मा के बनाये नीति-शास्त्र के अनुसार है। मनुस्मृति में १२ अध्याय रह गये हैं और श्लोक २,८१८ हैं। निस्सन्देह यह उससे बहुत छोटा है जो ब्रह्मा, शंकर, इन्द्र, बृहस्पति तथा शुक्राचार्य ने लिखा था।

मनु के बाद याज्ञवल्क्यादि ऋषियों ने भी स्मृतियाँ लिखी हैं।

: ३ :

विज्ञानोन्नति

वर्तमान युग में विज्ञान के अर्थ प्रकृति के ज्ञान को कहते हैं। भारतीय शास्त्रों में विज्ञान का अर्थ विशेष-ज्ञान से है। भारतीय परम्परा में प्रकृति के अतिरिक्त दो अन्य पदार्थ भी माने गये हैं, जिनका विशेष ज्ञान प्राप्त करना विज्ञान के अन्तर्गत आता है। ये दो पदार्थ हैं, परमात्मा और आत्मा। इन तीनों के सम्यक् ज्ञान का नाम विज्ञान है। इन तीनों को ब्रह्म के नाम से स्मरण किया गया है। श्वे० १–९

और भी लिखा है—

एतज्ज्ञेयं नित्यमेवात्मसंस्थं नातः परं वेदितव्यं हि किञ्चित्।
भोक्ता भोग्यं प्रेरितारं च मत्वा सर्वं प्रोक्तं त्रिविधं ब्रह्ममेतत्॥

श्वे० १–१२

अर्थात्—अपने आत्मा में विद्यमान ब्रह्म को जानना चाहिये। इससे बढ़ कर और कोई ज्ञातव्य पदार्थ नहीं। भोक्ता (जीव), भोग्य (जगत्) और प्रेरक (ईश्वर), ये तीन प्रकार के ब्रह्म हैं, ऐसा सब कहते हैं।

इसका अर्थ यह है कि भारतीय परम्परा में विज्ञान का अर्थ वर्तमान विज्ञान के अर्थ से विशाल है। देखने की बात यह है कि प्रकृति के ज्ञान में भी क्या वर्तमान विज्ञान ने भारतीय विज्ञान से अधिक उन्नति की है ? जहाँ तक आत्मा एवं परमात्मा का सम्बन्ध है, आज का विज्ञान शून्य के समान है।

प्रकृति-विषयक विज्ञान के दो अंग हैं। एक है प्रकृति की वास्तविकता को जानना। दूसरा अंग है उस वास्तविकता को जानकर प्रकृति का प्रयोग करना। एक अंग को शुद्ध विज्ञान (pure science) कहते हैं और दूसरे को तकनीकी (technology अथवा applied science) कहते हैं। विज्ञान के प्रयोग को देखकर आज के पढ़े-लिखे लोग कहते हैं कि वर्तमान युग में, प्राचीन भारत से,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विज्ञान में अधिक उन्नति हुई है।

वास्तविकता इसके विपरीत है। जो विज्ञान को जानते हैं, उनको विदित है कि पिछले दो सौ वर्ष में विज्ञान की उन्नति किस स्थान से चलकर कहाँ तक पहुँची है।

डाल्टन (१७९४ A.D.) से पहले प्रकृति पाँच तत्त्वों की बनी मानी जाती थी—जल, पृथिवी, वायु, अग्नि और आकाश। स्मरण रहे कि ये पाँच महाभूत नहीं थे; प्रत्युत ये स्थूलभूत थे और इनको तत्त्व माना जाता था।

डाल्टन ने अपनी 'अटौमिक थ्यौरी' संकलन की। उसमें उसने तब तक के ज्ञान का पंजीकरण कर दिया, जिसका नाम डाल्टन नियम है। उसने बताया कि ये पाँच वस्तु जल, पृथिवी इत्यादि तत्त्व नहीं हैं। तत्त्व तो और अधिक हैं। उस समय पच्चीस के लगभग तत्त्व ज्ञात थे।

डाल्टन का विचार था कि लोहा, सोना, चाँदी, राँगा, सीसा इत्यादि और ऑक्सीजन, हाईड्रोजन, नाईट्रोजन इत्यादि तत्त्व हैं। इनके बहुत छोटे-छोटे कण होते हैं, जो अपने तत्त्व के गुण रखते हैं और आगे इनको तोड़कर उनके टुकड़े नहीं किये जा सकते। इन टुकड़ों का नाम उसने ऐटम रखा। इस प्रकार इस विद्वान के मत के अनुसार बीस-पच्चीस तत्त्वों से पृथिवी पर के सब पदार्थ बने हैं और संसार में इतने ही प्रकार के ऐटम हैं। ऐटम दो-दो, तीन-तीन मिलकर संयोग बनाते हैं और भिन्न-भिन्न संयोग से भिन्न-भिन्न पदार्थ बनते हैं। यह थी डाल्टन की atomic theory।

पाश्चात्य वैज्ञानिक ने नये-नये तत्त्वों का आविष्कार करना आरम्भ किया और कुछ ही वर्षों में तत्त्वों की संख्या ९० तक ले गये। आज संख्या १०० से ऊपर है।

इस शताब्दी के आरम्भ में यह पता चला कि कुछ तत्त्वों के एटम स्वयमेव टूटते रहते हैं और उनमें से उनसे भी बारीक कण निकलते हैं। इस आविष्कार ने डाल्टन के विचार को गलत सिद्ध कर दिया। तत्पश्चात् कई अन्य तत्त्व पता किये गये, जिनके ऐटम स्वयमेव टूटते रहते हैं। यह भी पता चला कि सब प्रकार के ऐटम के टूटने से जो कण निकलते हैं, वे एक ही प्रकार के होते हैं। इन कणों का नाम electron रखा गया। अधिक अध्ययन से दो अन्य प्रकार के कण देखे गये। ये थे proton और neutron। सब टूटने वाले ऐटमों में तीन प्रकार के कण निकलते हैं और ये सब एक समान एक ही भार एवं एक ही आकार के होते हैं। सब electron परस्पर समान होते हैं। proton तथा सब neutron आपस में समान होते हैं।

अब यह निश्चित हो चुका है कि सबके सब प्रकार के परमाणुओं (ऐटमों)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में ये तीन प्रकार के कण होते हैं। अतः संसार में केवल तीन तत्त्व ही रह गये हैं। इसके साथ यह भी सिद्ध हो चुका है कि कभी-कभी एक ऐटम टूटता है तो उससे दो छोटे-छोटे ऐटम बन जाते हैं। ऐसे अवसरों पर प्रायः दो बनने वाले ऐटमों का संयुक्त भार मूल ऐटम के भार से कम होता है, शेष भार प्रकाश एवं ताप में परिवर्तित होता है। उदाहरण के रूप में जब युरेनियम का परमाणु तोड़ा जाता है तो दो परमाणु बनते हैं। दोनों का भार युरेनियम से कुछ कम होता है। यह कमी शक्ति में बदल जाती है। यह कमी इस कारण होती है कि एक proton गुम हो जाता है। इसी प्रकार अब यह पता किया गया है कि हाईड्रोजन, जिसके atoms सबसे हल्के हैं, संयुक्त होकर हीलियम का एक परमाणु बनता है। जब हाईड्रोजन के चार ऐटम संयुक्त होते हैं तो एक हीलियम का ऐटम बनता है। परन्तु चार हाईड्रोजन ऐटमों का भार एक हीलियम के ऐटम के भार से कुछ अधिक होता है। अतः हाईड्रोजन के परमाणु जब संयुक्त होते हैं तो हाईड्रोजन का कुछ अंश नष्ट हो जाता है और यह शक्ति के रूप में प्रकट होता है।

यही सूर्य में हो रहा है। वहाँ जब एक पौण्ड हाईड्रोजन के ऐटम संयुक्त होकर हीलियम के ऐटम बनते हैं तो हीलियम बनती है ·९९२५ पौण्ड। प्रति पौण्ड हाईड्रोजन के हीलियम में परिवर्तन से ·००७५ पौण्ड हाईड्रोजन शक्ति में बदल जाती है। यही शक्ति सूर्य में प्रकाश और ताप उत्पन्न कर रही है।

यही हाईड्रोजन बम का रहस्य है।

अर्थात्—पिछले दो सौ वर्षों के अनवरत प्रयत्नों से और योरोप तथा अमेरिका के राज्यों के पद्मों पौण्ड का व्यय करके वे डाल्टन से चलकर इस अवस्था तक पहुँचे हैं और यह रहस्य प्राप्त कर पाये हैं कि पृथिवी पर के सब पदार्थ तीन प्रकार के कणों (particles) से बने हैं। ये कण हैं electron, proton एवं neutron। ये जब विनाश को प्राप्त होते हैं तो शक्ति में परिवर्तित हो जाते हैं।

हमारा यह मत है कि वर्तमान शुद्ध विज्ञान (pure science) भारतीय विज्ञान से अभी भी बहुत पीछे है।

हम यह वर्णन कर आये हैं कि आदि प्रकृति से महत् बनता है और महत् से तीन अहंकार बनते हैं—सात्त्विक, तेजस एवं भूतादि। तेजस् और भूतादि अहंकार संयोग से पंच महाभूत बनते हैं। हमने यह भी बताया है कि इस संयोग में थोड़ा अंश सात्त्विक् अहंकार का भी रहता है और हिरण्यगर्भ में तो महत् से ३ अहंकार बनते हैं और सूर्य की भाँति की चक्राकार गति से अहंकार पृथक्-पृथक् होते हैं, जिनसे अपार ताप और प्रकाश उत्पन्न होता है। हमारा यह कथन सांख्य दर्शन के आधार पर है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसकी तुलना यदि हम वर्तमान विज्ञान की उन्नति के साथ करें तो पता चलेगा कि सात्त्विक् अहंकार=neutron, तेजस अहंकार=electron और भूतादि अहंकार=proton हैं। ये परस्पर मिलकर भिन्न-भिन्न प्रकार के ऐटम बनाते हैं। इन सबमें कुछ अंश प्रत्येक अहंकार का रहता है।

जहाँ तक तकनीकी अर्थात् technology का सम्बन्ध है, आज के वैज्ञानिकों ने बहुत उन्नति की प्रतीत होती है। इस विषय में यह लिखा तो मिलता है कि प्राचीन काल के लोगों के पास विमान थे एवं दिव्य अस्त्र थे और वे बड़े-बड़े मोहल्लों और नगरों में रहते थे। उन नगरों की सफाई एवं स्वच्छता का भी वर्णन लिखा मिलता है।

इस विषय में हम यदि अयोध्या का विवरण दें तो उस समय की उन्नति का भास हो जायगा। अयोध्या कोशल राज्य की राजधानी थी। वहाँ इक्ष्वाकुवंश का राज्य था।

आयता दश च द्वे च योजनानि महापुरी।
श्रीमती त्रीणि विस्तीर्णा सुविभक्तमहापथा॥

वा० रामा० बाल० ५—७

यह शोभाशालिनी महापुरी बारह योजन लम्बी और तीन योजन चौड़ी थी। एक योजन साढ़े चार मील का होता है। इसका अर्थ यह हुआ कि चौवन मील लम्बी एवं साढ़े तेरह मील चौड़ी थी। (इसकी तुलना करिये वर्तमान युग के किसी नगर के साथ।) नगर के मध्य में एक चौड़ा मार्ग बना हुआ था जो दूसरे मार्गों से कटा हुआ था। उस मार्ग पर—

मुक्तपुष्पावकीर्णेन जलसिक्तेन नित्यशः॥

बाल० ५—८

दोनों ओर खिले हुए फूल के पौधे रहते थे। उनको नित्य जल से सींचा जाता था।

कपाटतोरणवतीं सुविभक्तान्तरापणाम्।
सर्वयन्त्रायुधवतीमुषितां सर्वशिल्पिभिः॥

बाल० ५—११

वह पुरी बड़े-बड़े फाटकों एवं द्वारों से सुशोभित थी। पृथक्-पृथक् व्यवसायों के बाज़ार थे। उनमें सब प्रकार के यन्त्र तथा अस्त्र-शस्त्र संचित थे। वहाँ सभी कलाओं के शिल्पी निवास करते थे।

उच्चाट्टालध्वजवतीं शतघ्नीशतसंकुलाम्॥

बाल० ५—११

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसमें ऊँची-ऊँची अट्टालिकायें थीं। उन पर ध्वज फहराते थे। सैकड़ों शताब्दियों से वह पुरी सुरक्षित थी।

शतघ्नि उस अस्त्र को कहते हैं जो एक ही वार में सैकड़ों क़ो खेत कर दे। आजकल की तोप की तुलना उससे हो सकती है।

वधूनाटकसंघैश्च संयुक्तां सर्वतः पुरीम् ॥ बाल० ५–१२

नगरी में स्थान-स्थान पर नाटक-मण्डलियाँ थीं, जिनमें स्त्रियाँ भी नाटक करती थीं।

नगरी में सामन्त कर देने के लिये आते रहते थे। नाना देशों के व्यापारी व्यापार करने भी आते थे।

प्रासादै रत्नविकृतैः पर्वतैरिव शोभिताम्।
कूटागारैश्च सम्पूर्णामिन्द्रस्येवामरावतीम् ॥ बाल० ५–१५

वहाँ के प्रासादों में रत्न जड़े रहते थे और वे पर्वतों के समान विशाल और ऊँचे थे।

सर्वरत्नसमाकीर्णां विमानगृहशोभिताम् ॥ बाल० ५–१६

नगरी सब प्रकार के रत्नों से भरी-पूरी तथा सात-मंज़िले प्रासादों से सुशोभित थी; इत्यादि।

आगे चलकर लिखा है—

तस्मिन् पुरवरे हृष्टा धर्मात्मानो बहुश्रुताः।
नरास्तुष्टा धनैः स्वैः स्वैरलुब्धाः सत्यवादिनः ॥

बाल० ६-६

उस श्रेष्ठ पुरी में निवास करने वाले सभी मनुष्य प्रसन्न, धर्मात्मा, बहुश्रुत, निर्लोभी, सत्यवादी तथा अपने-अपने धन से सन्तुष्ट रहने वाले थे।

नाल्पसंनिचयः कश्चिदासीत् तस्मिन् पुरोत्तमे।
कुटुम्बी यो ह्यसिद्धार्थोऽगवाश्वधनधान्यवान् ॥
कामी वा न कदर्यो वा नृशंसः पुरुषः क्वचित्।
द्रष्टुं शक्यमयोध्यायां नाविद्वान् न च नास्तिकः ॥
नाकुण्डली नामुकुटी नास्रग्वी नाल्पभोगवान्।
नामृष्टो न नलिप्ताङ्गो नासुगन्धश्च विद्यते ॥
नामृष्टभोजी नादाता नाप्यनङ्गदनिष्कधृक्।
नाहस्ताभरणो वापि दृश्यते नाप्यनात्मवान् ॥

बाल० ६–७,८,१०,११

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उस नगरी में कोई भी ऐसा कुटुम्बी नहीं था, जिसके पास उत्कृष्ट वस्तुओं का संग्रह अधिक मात्रा में न हो, जिसके धर्म, अर्थ और काममय पुरुषार्थ सिद्ध न हो गये हों तथा जिसके पास गाय, बैल, घोड़े, धन-धान्य आदि का अभाव हो।

यहाँ कोई भी कामी, कृपण, क्रूर, मूर्ख और नास्तिक देखने को नहीं मिलता था।

वहाँ कोई भी कुण्डल, मुकट, पुष्पाहार से शून्य न था। किसी के पास भोग-सामग्री की कमी नहीं थी। कोई ऐसा नहीं था, जो नहा-धोकर साफ-सुथरा न हो, जिसके अंगों में चन्दन का लेप न हुआ हो तथा जो सुगन्ध से वंचित हो।

अपवित्र अन्न का भोजन करने वाला, दान न देने वाला तथा मन को वश में न रखने वाला मनुष्य वहाँ दिखाई नहीं देता था। कोई भी मनुष्य ऐसा नहीं दिखाई देता था जो बाजूबन्द, निष्क (स्वर्ण पदक) तथा हाथ के आभूषण धारण न किये हो, इत्यादि।

हमारा यह कथन है कि यदि यह चित्र काल्पनिक नहीं तो तकनीकी उन्नति अवश्य उच्च स्तर की होगी। भले ही बड़े-बड़े कारखाने न हों, परन्तु सबको सुख-सुविधा की सामग्री उपलब्ध थी।

इसके साथ लंका में पुष्पक-विमान और देवताओं के पास भाँति-भाँति के विमान होने का भी उल्लेख है।

यह कहा जा सकता है कि यह सब कल्पना मात्र है। हमारा यह कथन है कि कल्पना भी तो उस वस्तु की ही की जा सकती है, जिसके दर्शन हुए हों। साथ ही यदि कल्पना की जा सकती है, तो निर्माण भी हो सकता है।

हमारा मत है कि दिव्यास्त्रों का अर्थ ऐटम बम इत्यादि के समान अस्त्रों से है। अन्तर यह है कि आज विद्वान् और कलाकार केवल धन के लोभ से अपनी योग्यता बेचते हैं। तब यह था कि विमान और शस्त्रास्त्र धनियों के पास नहीं होते थे, प्रत्युत गुण-सम्पन्न व्यक्ति ही उनको प्राप्त कर सकते थे। उनके निर्माण का रहस्य भी योग्य अधिकारियों को ही दिया जाता था।

इस पर प्रश्न यह उपस्थित होता है कि यदि यह सब-कुछ था तो इसका लोप क्यों हो गया ? इसका उत्तर इतिहास में ही मिलता है।

जब-जब और जहाँ-जहाँ क्षत्रियों ने ब्राह्मणों पर प्रभुत्व स्थापित किया है, ज्ञान-विज्ञान का लोप हुआ है। महाभारत में ऐसे काल का उल्लेख मिलता है, जब क्षत्रिय निरंकुश हो गये थे। तब सब-कुछ नष्ट हो गया।

ऐसा एक तो कौरव-पाण्डव युद्ध का काल था। महाभारत युद्ध के पूर्व

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कितने लोग दुर्योधन को समझाने आये थे। महर्षि, विद्वान्, ब्राह्मण, मुनि और ऋषि भी आये। सब समझाते रहे कि युधिष्ठिर आदि को राज्य न देने में कोई कारण नहीं। इस पर भी दुर्योधन अपने हठ पर डटा रहा कि वह सुई की नोक के बराबर भूमि भी युद्ध के बिना पाण्डवों को नहीं देगा।

दुर्योधन को वृद्ध-जन भीष्म, द्रोणाचार्य, धृतराष्ट्र और गन्धारि ने भी समझाया था। वह नहीं माना। परिणामस्वरूप युद्ध हुआ तथा देश और राष्ट्र का घोर पतन हुआ।

यदि यह मान लिया जाये कि यान्त्रिक उन्नति बहुत कम थी, तब भी एक बात तो निर्विवाद है कि शुद्ध विज्ञान (pure science) में भारतीयों ने बहुत उन्नति की थी। ज्योतिष (astronomy), भौतिकी (physics), रसायन (chemistry), स्थापत्य कला (archaeology), आयुर्वेद (medical science) इत्यादि अनेक विद्याओं में बहुत उन्नति हुई थी।

भारतीय ज्ञान-विज्ञान की उन्नति का एक और प्रमाण मिलता है। भारत के रहने वालों का राज्य (चक्रवर्ती राज्य) तिब्बत, चीन इत्यादि देशों में (उत्तर में समुद्र तट तक) पश्चिम में गन्धार, ईरान, काल्डिया तथा अरब तक और कदाचित् इससे भी दूर तक रहा है। महाभारत काल तक अनेक बार चक्रवर्ती राज्य भारत के सम्राटों का हुआ। यह तब तक सम्भव नहीं हो सकता था, जब तक भारत शस्त्रास्त्र में विदेशों से अधिक उन्नत न रहा हो। शस्त्रास्त्र में उन्नति के लिये पड़ोसियों से भौतिक विद्या में अधिक उन्नत होना आवश्यक था। भारत निस्सन्देह जहाँ शुद्ध विज्ञान (pure science) में उन्नत था, वहाँ प्रायोगिक विज्ञान (applied science) में भी उन्नत रहा होगा, अन्यथा ये चक्रवर्ती राज्य स्थापित न हो सकते।

: ४ :

वेदों में इतिहास

वेदों के विषय में कुछ अर्वाचीन विद्वानों का मत है कि इनमें इतिहास एवं भारत के नदी, नालों का वर्णन मिलता है। इन आचार्यों में सायण और महीधर तो भारतीय ही हैं। कई एक पाश्चिमात्य आचार्यों ने भी यह बात लिखी है। इन्होंने वेदों में इन्द्र, वरुणादि नाम पढ़कर इनमें इन्द्र इत्यादि का इतिहास निकालने का प्रयत्न किया है। नदी, नालों के नाम से वेदों में भूगोल लिखे होने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की बात भी निकलती है। इन सबसे यह परिणाम निकलता है कि वेद सृष्टि के उत्पन्न होने से बहुत पीछे लिखे गये।

यह भारतीय परम्परा के विपरीत है। ब्राह्मण ग्रन्थ, जो वेदों की व्याख्या और समीक्षा में लिखे गये हैं, दर्शन शास्त्र तथा उपनिषद् ऐसा नहीं मानते। यद्यपि पुराणादि ग्रन्थों में वेदों की कथायें लिखी हैं, परन्तु पुराण स्वयं उन कथाओं को अलंकार के रूप में ही वर्णन करते हैं।

इस विषय में महर्षि स्वामी दयानन्द का मत है कि वेदों में ऐतिहासिक कथायें नहीं हैं। उनमें सृष्टि तथा नक्षत्रादि की उत्पत्ति का उपमा, अलंकार अथवा रूपकों में वर्णन किया है।

इस विषय में एक-दो उदाहरण दे दें तो यह बात स्पष्ट हो जायेगी।

एक मन्त्र है—

आ यातं नहुषस्पर्यान्तरिक्षात्सुवृक्तिभिः।
पिबाथो अश्विना मधु कण्वानां सवने सुतम्॥

ऋ० ८-८-३

इस मन्त्र में नहुष का नाम आया है। चन्द्रवंशियों का एक राजा नहुष हुआ है। इन नामों में समानता देखकर कुछ लोग वेद में चन्द्रवंशीय नहुष का उल्लेख मानते हैं, परन्तु मंन्त्र के पूर्ण अर्थ करने से पता चलेगा कि यहाँ चन्द्रवंशीय नहुष का उल्लेख नहीं, वरंच यह अन्तरिक्ष में नक्षत्रादि में घटी किसी घटना का उल्लेख है।

इस मन्त्र का देवता है 'अश्विनौ'। यहाँ अश्विनौ के अर्थ सूर्य और चन्द्र हैं। अभिप्राय यह कि इस सूक्त में मन्त्रों का विषय सूर्य और चन्द्र हैं। मन्त्र का अर्थ इस प्रकार है—हे (अश्व) सूर्य (नहुषःपरि) मनुष्य लोक से परे अर्थात् ऊपर (अन्तरिक्षात्) अन्तरिक्ष मार्ग से (सुवृक्तिभिः) श्रेष्ठ उद्देश्यों से (आ यातम) आया करो। (कण्वानां) कर्मशील मनुष्यों के (सवने) श्रेष्ठ कामों में (सुतम्) तैयार किये हुए (मधु) अच्छे परिणामों का (पिबाथो) पान कराओ।

इस मन्त्र में चन्द्रवंशी नहुष का उल्लेख नहीं है।

एक और उदाहरण लें। यजुर्वेद में अप्सराओं का वर्णन आता है। यह उन अप्सराओं का वर्णन नहीं, जिनका उल्लेख पुराणादि ग्रन्थों में है। जिनको इन्द्र ऋषियों का तप भंग करने के लिये भेजा करते थे और जिनकी सन्तान द्रोण, कृप, कृपि इत्यादि हुए थे।

उदाहरण के रूप में यजुर्वेद १५-१६ में एक पद है—

मेनका च सहजन्या चाप्सरसौ यातुधाना···

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थ है—मेनका और सहजन्या दोनों अप्सरायें हैं, उनका मान करना चाहिये।

अप्सराओं से यह अर्थ है—

सूर्यो गन्धर्वस्तस्य मरीचयोऽप्सरस···

यजु० १८–३९

अर्थात्—सूर्य ही गन्धर्व है और उसकी किरणें अप्सरा हैं।

इन्हीं अप्सराओं का उल्लेख यजुर्वेद १५-१६ में है।

यह बात हम पहले बता चुके हैं। वेदों के शब्द पर ही मनुष्य अपनी सन्तान के नाम रखते थे, परन्तु उनका वेदार्थों से कोई सम्बन्ध नहीं होता था।

वेदों के शब्दार्थ का ज्ञान न होने से, भाष्य करने में अर्थ का अनर्थ हो जाता है। यही बात वेदों में इतिहास के सम्बन्ध में है।

कुछ लोग यह भी कहते हैं कि आदि सृष्टि में तो विवाह होते ही नहीं थे, फिर वेदों में विवाह और गर्भाधान इत्यादि के मन्त्र अवश्य बहुत काल पीछे लिखे गये होंगे।

ऐसा नहीं है। वेद में सब प्रकार का ज्ञान मूल रूप में उपस्थित होने से आदि सृष्टि में ही इनको लिखा गया था। जिससे जो जैसा करना चाहे, उसको उस कार्य में पथ-प्रदर्शन मिले। ज्ञान जो एक सर्वज्ञ (परमात्मा) से मिले व्यवहार के पूर्व ही उसका उल्लेख स्वाभाविक ही है। जो लोग यह मानते हैं कि मनुष्य आरम्भ में अज्ञानी एवं पशुतुल्य था, वे ही यह समझ सकते हैं कि आरम्भ में मनुष्य भी पशुओं की भाँति यत्र-तत्र समागम करता होगा और पीछे उसको विवाह-बन्धन की आवश्यकता अनुभव हुई होगी। ऐसा मानने वालों के लिये वेद सृष्टि-आरम्भ से बहुत पीछे बने होंगे। भारतीय परम्परा हमने पहले ही बता दी है। उसमें युक्ति एवं प्रमाण भी दिये हैं। अतः वेदार्थ के समय इस बात का भी ध्यान रखना ही होगा।

सृष्टि बनने से पूर्व ही परमात्मा को यह ज्ञान होगा कि मानव को जीवन-यापन में क्या-क्या व्यवहार करना होगा ? इसी कारण उसका उल्लेख हुआ। ब्रह्मा ने उसका उपदेश दिया।

सनक इत्यादि मुनियों के विषय में लिखा है कि ब्रह्मा ने उनको सन्तान-उत्पत्ति के लिये कहा, परन्तु उन्होंने अस्वीकार कर दिया। अतः ब्रह्मा को यह आदेश वेद-ज्ञान से ही हुआ होगा।

इससे यह समझ लेना चाहिये कि सम्भोग के बताने की आवश्यकता नहीं थी। वह तो पशुओं ने बिना वेद पढ़े ही जान लिया होगा, परन्तु विवाह अर्थात्

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह सामाजिक कृत्य, जिससे स्त्री-पुरुष गृहस्थ धर्म का पालन करते हैं, वेद में बताना आवश्यक था।

हम बता चुके हैं कि इन्द्र, वरुण, बृहस्पति, परीक्षित इत्यादि शब्द वेद-पाठ में यत्र-तत्र आये हैं। उन शब्दों से परमात्मा के गुणों का स्मरण किया गया है। देवताओं, ऋषियों अथवा मनुष्यों के नाम तो पीछे इन वैदिक शब्दों पर रख लिये गये हैं।

उदाहरण के रूप में—

अथर्व वेद २०–१७–४ में इन्द्र शब्द आता है। वहाँ पद है **'इन्द्र मन्दिनश्चमूषदः।'** अर्थ है परमात्मा में निरत और आनन्द रस में तृप्त।

इसी प्रकार अथर्व वेद (२०। १६। ५) में बृहस्पति शब्द आता है। वह है **'बृहस्पतिरनुमृश्या वलस्याभ्रमिव।'** (बृहस्पति) वेद-ज्ञान का पालक परमेश्वर (अनुमृश्या) अपने ज्ञान-बल से (वलस्याभ्रमिव) तामस बादलों की भाँति छिन्न-भिन्न करे।

इन शब्दों से कोई देवराज इन्द्र के अथवा आचार्य बृहस्पति के अर्थ निकाले तो अयुक्तिसंगत होगा।

ब्राह्मणों के काल में भी इन वेद मन्त्रों में इतिहास है, इस बात की चर्चा चली थी, परन्तु ब्राह्मण ग्रन्थकारों ने इस बात का खण्डन किया है।

वेद प्रकट हुए वैवस्वत मनु के आरम्भ में और ब्राह्मण ग्रन्थ लिखे गये थे वर्तमान चतुर्युगी में। सम्भवतया त्रेता युग के अन्त में अथवा द्वापर के आरम्भ में। इतने लम्बे काल में कुछ लोग ऐसे उत्पन्न हो गये होंगे, जो वेदों में ऐसे शब्दों को देखकर, जैसे देवताओं अथवा मनुष्यों के नाम रखे जा रहे थे, यह अनुमान लगाने लगे होंगे कि उनमें देवताओं अथवा ऋषियों की गाथायें लिखी हैं।

एक अन्य उदाहरण से बात और भी स्पष्ट हो जायेगी। अथर्व वेद २०।१२७। ७ का मन्त्र है—

राज्ञो विश्वजनीनस्य यो देवोऽमर्त्यां अति।
वैश्वानरस्य सुष्टुतिमा सुनोता परिक्षितः॥

इस मन्त्र में परिक्षित और विश्वजनीनस्य शब्द के आने से कुछ लोगों ने इनको कौरव परीक्षित की गाथा माना है।

अथर्व वेद का ब्राह्मण गौपथ है। उसमें इस मन्त्र की व्याख्या इस प्रकार लिखी है—

संवत्सरो वै परिक्षित् संवत्सरो हीदं सर्वं परिक्षियतीति। अथो खल्वाहुः अग्निर्वै परिक्षित, अग्निर्हीदं सर्वं परिक्षियतीति। अथो खल्वाहुः गाथा एवैताः कारव्या राज्ञः

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिक्षित इति। सनस्त्तद्यथा कुर्य्यात् यथा कुर्य्यात्, गाथा एवैतास्य शस्ता भवन्ति। यद्यु वै गाथा अग्नेरेव गाथाः संवत्सरस्य वेति ब्रूयात्, यद्यु वै मन्त्रोरेव मन्त्रः संवत्सरस्य वेति ब्रूयात् ताः प्रगाहमित्येव ॥ गोपथ २। ६। १२

अर्थात्—इन ऋचाओं के विषय में कोई कहते हैं कि संवत्सर ही परीक्षित है, क्योंकि संवत्सर ही इस सबमें सब ओर से वास करता है। फिर कोई कहते हैं कि यह काक शब्दावली ऋचायें मनुष्य की गाथा हैं। परन्तु ऐसा नहीं है। यह मनुष्य की गाथा नहीं है। यदि ये केवल गाथा हैं तो अग्नि व संवत्सर की ही गाथायें हैं और जो मन्त्र भी हैं तो भी अग्नि अथवा संवत्सर के ही हैं।

गोपथ ब्राह्मण में यह खण्डन इस कारण किया गया था कि उस समय भी कौत्स इत्यादि टीकाकारों ने टीकायें करते हुए वेदों को न केवल गाथायें ही वर्णन किया था, प्रत्युत ऋचाओं को अर्थहीन, गूढ़ और एक-दूसरे के प्रतिकूल लिखा था।

यास्काचार्य ने इसका उत्तर इस प्रकार दिया है कि यदि कोई अन्धा सूर्य को न देख सके तो भुवन-भास्कर का कोई दोष नहीं।

ब्राह्मण-काल तथा निरुक्त-काल में भी वेदों के ज्ञाता कम हो रहे थे। इसी कारण निरुक्त-ग्रन्थ तथा ब्राह्मण-ग्रन्थ लिखने की आवश्यकता पड़ी थी। इस काल में वेदों को प्रकट हुए बहुत काल व्यतीत हो चुका है।

वेदों में मानव-गाथायें नहीं हैं।

नवीन पुराण लेखकों ने तो और भी अधिक अनर्थ किया है। ब्रह्मवैवर्त पुराण में एक कथा लिखी है कि प्रजापति ने अपनी कन्या में वीर्य स्थापन किया तथा पुत्र-उत्पत्ति की। इस कथा का मूल भी वेद बताया है।

वह वेद मन्त्र इस प्रकार है—

द्यौर्मे पिता जनिता नाभिरत्र बन्धुर्मे माता पृथिवी महीयम्
उत्तानयोश्चम्वोर्योनिरन्तरत्रा पिता दुहितुर्गर्भमाधात् ॥

ऋ० १। १६४। ३३

द्यौ लोक में पृथिवी पर वनस्पतियों को उत्पन्न करने वाला पिता सूर्य है। बन्धु के समान हित करने वाली पृथिवी माता है। उर्ध्व रीति से योग्यभोक्तृकं समान सूर्य पृथिवी में वीर्य सिंचन कर पुत्र (वनस्पतियों) को उत्पन्न करता है। पृथिवी सूर्य की लड़की है। इस प्रकार पिता लड़की में गर्भ उत्पन्न करता है।

इस प्रकार के रूपक अलंकारों को मानव-सृष्टि की गाथायें वर्णन किया गया है। इनको लेकर भागवत् इत्यादि ग्रन्थों में अनेक कथायें लिखी गयी हैं। उन कथाओं को यदि अलंकार मान उनके वास्तविक अर्थ बताये जा सकते, तब तो ठीक थीं, परन्तु मूल ग्रन्थ से सम्बन्ध-विच्छेद हो जाने से कथाकार अलंकार का अर्थ न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समझ सके और न बता ही सके।

इसी प्रकार इन्द्र एवं वृत्रासुर के युद्ध का वर्णन है। वृत्र बादल का नाम है। इन्द्र सूर्य है। कृष्ण-गोपियों का वर्णन भी वेदों में से निकाला गया है। वहाँ गोपियों का अर्थ सूर्य की किरणों से है, जो वन-उपवनों में नृत्य करती रहती हैं।

अतः यह स्पष्ट है कि वेदों में गाथायें नहीं हैं। जहाँ यह समझने की आवश्यकता है, वहाँ यह भी समझ लेना चाहिये कि पुराणादि ग्रन्थ भी साहित्यिक ग्रन्थ हैं। वहाँ की गाथायें भी रूपक अलंकार हैं।

प्रायः आलंकारिक आवरण इतना गहरा हो गया है कि तथ्य की बात स्पष्ट ही नहीं हो पाती। अतः पुराणादि गाथाओं का वर्णन करते हुए कथाकारों का कर्तव्य हो जाता है कि वे तत्त्व को, उसका साहित्यिक आवरण पृथक्-पृथक् कर वर्णन करें।

: ५ :

पुराणादि ग्रन्थों में इतिहास

पुराण का अर्थ ही इतिहास है। भारतीय परम्परा के अनुसार इतिहास का आरम्भ सृष्टि के आदि काल से हुआ है। सृष्टि का आदि उस समय से समझा जाता है, जबसे आदि प्रकृति में जगत् की रचना आरम्भ हुई। अतः प्रत्येक पुराण में सृष्टि की रचना का वर्णन किसी-न-किसी ढंग से आता है। उसके साथ ही पुराणों में राजाओं के नाम तथा वंशावलियाँ भी आती हैं। इस पर भी पुराणों में इतिहास इस ढंग से नहीं लिखा गया, जिस ढंग से वर्तमान युग के ऐतिहासिक ग्रन्थों में लिखा जाता है।

इतिहास का अर्थ लिया जाता है वंशावली के प्रत्येक घटक का जन्म-दिवस, स्थान तथा उसकी स्त्री का नाम और उसके राज्य की लम्बाई-चौड़ाई तथा उसके राज्य में प्रजा के मुख्य-मुख्य आचार-विचार इत्यादि।

पुराणों में वर्णित इतिहास का ढंग दूसरा है। उनमें मुख्य-मुख्य व्यक्तियों वा वृत्तान्त लिखा गया है। उसमें भी उनकी जन्म-तिथि, जन्म-स्थान, सम्बन्धियों का नाम तथा उनके नौकर-चाकर, पान खिलाने वाले अथवा हुक्का भरने वालों के वर्णन की आवश्यकता नहीं समझी गई।

इतिहास में उन व्यक्तियों का उल्लेख ही पुराण-लेखकों ने उचित समझा है और उन घटनाओं को लिखना ही ठीक समझा है, जिन्होंने मानव-समाज के आचार-विचार में परिवर्तन किया था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह ठीक भी प्रतीत होता है। जहाँ इतिहास सौ-दो-सौ वर्ष अथवा एक-दो हज़ार वर्ष का लिखना हो, वहाँ अधिक व्याख्या से इतिहास लिखा जा सकता है। परन्तु जहाँ इतिहास लाखों वर्षों के काल का लिखा जाना हो, वहाँ वर्तमान काल की शैली उपयुक्त नहीं रह सकती। इतने दीर्घ काल का इतिहास लिखने का ढंग, जो अपनाया गया उसको आज के विद्वान अमान्य करते हैं तथा उसे अनभिज्ञता के कारण मानने लगे हैं। संक्षिप्त वर्णन, घटनाओं का चयन तो इस कारण किया गया था कि इतने लम्बे काल के विस्तृत वृत्तान्त से लाभ नहीं होता। एक ही प्रवृत्ति का बार-बार लिखा जाना पुनरावृत्ति हो जाती। यह बात कि जो घटनायें किसी पुराण-लेखक ने अपने पुराण के लिये चयन की हैं, वे पाठक को पसन्द नहीं और वह किन्हीं दूसरी घटनाओं को जानना चाहता है, यह बात तो किसी भी इतिहास और उसके पाठकों के विषय में कही जा सकती है। लेखक तो जिसको आवश्यक समझेगा, वही लिखेगा।

पुराण के विषय में एक बात और कही जाती है कि उनमें साहित्यिक आवरण इतना गहरा होता है कि प्रायः कथाएँ उद्देश्यहीन प्रतीत होती हैं। कभी उद्देश्य का ज्ञान होता भी है तो आवरण इतना अस्वाभाविक होता है कि तथ्य को भी स्वीकार करने को चित्त नहीं करता।

उदाहरण के रूप में एक कथा वाल्मीकि-रामायण में लिखी है। यह कथा अन्य पुराणों में भी मिलती है।

यह कथा विश्वामित्र राम को सुना रहे हैं। वे कहते हैं—श्री राम! हिमवान नामक एक पर्वत है, जो समस्त पर्वतों का राजा है तथा सब प्रकार की धातुओं का बहुत बड़ा खज़ाना है।

हिमवान की दो कन्याएँ थीं। सुन्दर कटि प्रदेश वाली मैना ही उन दोनों कन्याओं की जननी थी। मेरु पर्वत की मनोहारित पुत्री मैना हिमवान की प्यारी पत्नी थी।

मैना के गर्भ से प्रथम कन्या उन्पन्न हुई। वही यह गंगा सरिता है। यह हिमवान की ज्येष्ठ पुत्री है। इसकी दूसरी कन्या, जो मैना के गर्भ से उत्पन्न हुई, उमा नाम से प्रसिद्ध हुई। कुछ काल पश्चात् सब देवताओं ने देवकार्य की सिद्धि के लिये ज्येष्ठ कन्या गंगाजी को, जो आगे चलकर स्वर्ग से त्रिपथगा नदी के रूप में अवतीर्ण हुई, गिरिराज हिमालय से माँग ली। हिमवान ने त्रिभुवन का हित करने के लिये अपनी लोक-पावनी पुत्री को उन्हें दे दिया। देवता कृतार्थ हो गये।

रघुनन्दन! गिरिराज की दूसरी कन्या उमा थी। वह उत्तम तथा कठोर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्रत का पालन करती हुई, घोर तपस्या में लग गयी। उसने तपोमय धन का संचय किया। गिरिराज ने अपनी इस तपस्विनी कन्या उमा का भगवान् रुद्र से विवाह कर दिया।

इस प्रकार सरिताओं में श्रेष्ठ गंगा तथा भगवती उमा, दोनों गिरिराज हिमालय की कन्याएँ हैं। सारा संसार इनके चरणों में नतमस्तक होता है।

यह कथा है। साधारण बुद्धि का व्यक्ति तो इस कथा का सिर-पैर भी नहीं समझ सकता। इस पर भी यह सतयुग काल की ऐतिहासिक घटना है।

ऐसा प्रतीत होता है कि प्लावन के पश्चात् देवता लोग जो तिब्बत के पठार पर रहते थे, जलाभाव के कारण कष्ट में थे। हिमालय की प्रायः सब नदियाँ बहकर हिमालय के दक्षिण में आती थीं। तिब्बत पठार में कोई नदी नहीं जाती थी। अथवा जो जाती थी, उसमें पर्याप्त जल नहीं रहता था।

देवताओं ने हिमालय की एक नदी काटकर तिब्बत में ले जाने का विचार किया तो बिना हिमालय के शासक की अनुमति के वे ऐसा कर नहीं सके। अतः देवताओं का एक आयोग गिरिराज की सेवा में उपस्थित हुआ और गंगा नदी को देवलोक में ले जाने की स्वीकृति माँगने लगा। देवताओं ने अपनी कठिनाई का वर्णन किया और गिरिराज ने—

ददौ धर्मेण हिमवांस्तनयां लोकपावनीम्।
स्वच्छन्दपथगां गङ्गां त्रैलोक्यहितकाम्यया॥

वा० रा० बा० ३५-१८

त्रिभुवन के हित की इच्छा से स्वच्छन्द पथ पर विचरने वाली लोकपावनी गंगा (पुत्री) को धर्मपूर्वक उनको दे दिया।

देवताओं ने पर्वत काटकर उसके बहाव को अपनी ओर कर लिया। गंगा स्वर्ग देश में पहुँच गयी और वहाँ तीन धाराओं में बहने लगी। एक धारा तो आकाश में (ऊँचे मार्ग पर) बहती थी। दूसरी रमणीय देव नदी के रूप में देव-लोक में पहुँच गयी एवं तीसरी धारा कुछ दूर जाकर भूमि में समा गयी अर्थात् रसातल में पहुँच गयी।

यह ढंग इतिहास लिखने का ठीक है अथवा वर्तमान काल के इतिहास लिखने का ढंग ठीक है, हम इस विवाद में यहाँ पड़ना नहीं चाहते। हाँ, इतना बताना चाहते हैं कि यह प्राचीन भारतीय शैली है। भारत में इस शैली को अत्यन्त महत्त्वपूर्ण माना गया है। इसके अपने गुण एवं अपने दोष हैं, परन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि भारत का इतिहास है ही नहीं।

यह बात भी विचारणीय है कि इतिहास लिखने का प्रयोजन क्या है?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक इतिहासकार लिखता है कि मंगोल का रहने वाला बाबर भारत में आया और यहाँ राज्य जमा बैठा। उसका जन्म १४८३ ई० में हुआ। उसने १५०४ में काबुल विजय किया तथा १५१० में समरकन्द एवं १५२६ में पानीपत का युद्ध जीता। सन् १५२७ में खानवा को विजय किया तथा घाघरा पर १५२९ में विजय पाई और उसकी मृत्यु सन् १५३० में हो गयी।

इन घटनाओं का विस्तृत विवरण भी दिया गया है, परन्तु इसके लिखने का क्या अर्थ निकला ? जो कुछ जनसाधारण को इस जीवन-चरित्र से लाभ होता है, वह क्या पौराणिक गाथाओं से नहीं होता ? लिखने की अपनी-अपनी शैली है। अर्थ समझकर लाभ उठाने वाले दोनों से न्यूनाधिक लाभ उठा सकते हैं और जो समझ-बूझ नहीं रखते, वे किसी शैली से भी लाभ नहीं उठा सकते।

कदाचित् लाखों वर्षों के इतिहास को उपयोगी बनाने का पौराणिक ढंग ही ठीक है। इतने लम्बे काल का इतिहास वर्तमान शैली पर लिखना सम्भव नहीं है, उससे किसी प्रकार का लाभ भी न निकलता।

कम-से-कम इतना तो कहा ही जा सकता है कि वर्तमान ढंग से भी इतिहास की खोज करने वालों के लिये भारत में पुराण, महाभारत, रामायण से अधिक सामग्री कहीं नहीं मिलती। शिलालेख अथवा विदेशियों के अधूरे वृत्तान्त तो तब उपयोगी और प्रमाणित सिद्ध हो सकते हैं, जब इस प्रकार लिखे वृत्तान्त न होते।

पुराण इतिहास के ग्रंथ हैं। इसमें सत्य कथाएँ लिखी हैं। केवल घटनाओं को रंगीन बनाने के लिये, जिससे ये जनसाधारण में भी पठनीय और हृदयग्राही हो जायें, कुछ साहित्यिक ढंग अपनाये गये हैं। तिथियों और प्रथाओं के पचड़े में न पड़कर सीधी सरल भाषा में उस उद्देश्य को मुख्य बना दिया जाता है जो इतिहास का परम उद्देश्य है।

मानव-मन के विकारों और उनके दुष्परिणामों तथा उनसे बचने के उपाय का वर्णन, यह है संसार के इतिहास लिखने का प्रयोजन। ये मन के विकार राजनीतिक प्रभाव उत्पन्न कर सकते हैं। ये राजनीतिक तथा आर्थिक हलचल मचा सकते हैं अथवा ये पारिवारिक कलह-क्लेश उत्पन्न कर सकते हैं। यह बताना पुराण का उद्देश्य है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये ऐतिहासिक घटनाओं को उदाहरण बनाया गया है।

हम अगले परिच्छेद में आदि युग से लेकर वर्तमान युग तक के इतिहासज्ञों के विचार से, ऐतिहासिक काल की, मुख्य-मुख्य युग-परिवर्तक घटनाओं का वर्णन करेंगे। वे सबकी सब इतिहास की भारतीय परम्परा के अनुसार होंगी। उनको

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पढ़कर उनके वर्तमान इतिहास की तुलना में लाभ तथा हानि का अनुमान तो पाठक ही लगा सकेंगे। हमारा उद्देश्य भारतीय ढंग से लिखे इतिहास की झलक दिखाना है।

यहाँ हम यह लिख देना चाहते हैं कि काल्डिया में यह किंवदन्ती कि अब्राहम को आदिम की पुस्तकें एक पेटिका में पड़ी मिली थीं, अतिशयोक्ति नहीं हो सकती। यह हमने लिखा है कि वर्तमान त्रेतायुग के आरम्भ में हुई प्रलय बहुत ही साधारण थी। इस कारण इसमें पूर्ण सृष्टि का संहार नहीं हुआ था। यह भी लिखा जा चुका है कि किसी-न-किसी प्रकार इस प्रलय के आने का समाचार मनुष्यों को पहले ही प्राप्त हो चुका था। अतः यह किसी प्रकार भी विचित्र बात प्रतीत नहीं होती कि तत्कालीन विद्वानों ने कुछ पवित्र पुस्तकों को प्लावन से सुरक्षित रखने का प्रबन्ध किया हो। उसी किंवदन्ती में यह भी बात थी कि आदम ने सृष्टि-उत्पत्ति की कथा लिखी और वह भी उस पेटिका में मिल गयी थी।

सृष्टि-उत्पत्ति का इतिहास ही पुराण थे। भारतीय परम्परा में भी इस प्रकार के प्रमाण मिलते हैं कि वर्तमान अट्ठारह पुराणों के अतिरिक्त भी, प्लावन पूर्व में प्राचीन पुराण थे। ये इस युग में लोप हो गये हैं। इस पर भी ब्राह्मण ग्रंथों में और अन्य प्राचीन ग्रन्थों में, जो वर्तमान पुराणों से पहले लिखे गये थे, ऐसा संकेत मिलता है, जिनसे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि इन पुराणों से पहले अन्य पुराण भी थे।

वर्तमान पुराणों में सृष्टि-क्रम उन प्राचीन पुराणों से लेकर ही लिखा गया है। वर्तमान चतुर्युगी की बातें उनके अतिरिक्त हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अध्याय सात

आदि युग

इस अध्याय में हम आदि युग की कुछ घटनाएँ लिखना चाहते हैं। इनको ऐसे क्रम और ढंग से लिखने का यत्न किया जा रहा है कि जिससे हम मानव-सृष्टि के आदि-काल से लेकर वर्तमान काल तक में हुए परिवर्तनों के इतिहास का दिग्दर्शन करा सकें। इन लाखों वर्षों के पूर्ण इतिहास को पूर्ण तो कभी भी लिखा नहीं जा सकता। काल और फिर उसमें युगान्तर प्रलयों के घटने से यह सम्भव भी नहीं रहा कि कोई उसकी पूर्ण गाथा को लिख सके।

पुराण, महाभारत तथा रामायण के लेखकों के प्रयास से ही प्राचीन काल की परम्पराएँ सजीव हैं। अन्य देशों के लेखक इसको कोरी कल्पना भी कह सकते हैं। ऐसा कहने के लिये वे क्षम्य हैं। उनके पूर्वजों ने उनके लिये इतिहास नहीं लिखा और वे कुछ जानते भी नहीं। जब भारत में महाभारत लिखा जा रहा था, तब इंग्लैंड और अन्य योरोपीय देशों में मनुष्य जानवरों की खालें पहनते थे और अँगुलियों पर गणना करने के अतिरिक्त अन्य कुछ जानते भी नहीं थे। वे बेचारे, यदि यह कहें कि इतना प्राचीन इतिहास हो ही नहीं सकता तो 'अन्धे को सूर्य न दिखाई पड़ना' वाली कहावत ही चरितार्थ होगी।

कुछ भी हो, जो कुछ यहाँ लिखा जा रहा है, वह अधिकांश वही है, जो हिन्दुओं के घरों में अभी भी कथा के रूप में बहुत श्रद्धा एवं भक्तिपूर्वक सुना जाता है। हमारा अभिप्राय रामायण-महाभारत से है।

रामायण-महाभारत लिखने का उद्देश्य इतिहास सुनने-सुनाने से कुछ अधिक है। इस कारण उसमें से हम इतिहास मात्र ही लिखेंगे। कुछ घटनाएँ उससे बाहर की भी लिखना चाहते हैं। इन सबको लिखने का अभिप्राय है कि वह प्रयोजन, जो भारतीय परम्पराओं में इतिहास लिखने का माना जाता है, पूर्ण हो सके।

हिरण्यकशिपु

प्रजापति भगवान दक्ष और दक्ष की पत्नी शतरूपा भी ब्रह्मा की सन्तान थे। दोनों अमैथुनीय सृष्टि के जीव थे। सबसे प्रथम दक्ष प्रजापति को ही मैथुनीय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सृष्टि उत्पन्न करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। दक्ष ने शतरूपा से पचास कन्याएँ उत्पन्न कीं। वे सभी कन्याएँ परम सुन्दर अंगों वाली तथा विकसित कमल के समान विशाल लोचन वाली थीं। दक्ष के कई पुत्र भी हुए थे, परन्तु उन्होंने विवाह नहीं किये तथा वे भगवत्-भजन में लीन हो वन को चले गये। दक्ष ने अपनी लड़कियों को ही अपना पुत्र मान, उनका विवाह कर दिया। इस समय तक अन्य प्राणियों की सृष्टि भी हो चुकी थी।

दक्ष ने अपनी दस कन्याओं का विवाह धर्म से किया और सत्ताईस का चन्द्रमा से। शेष तेरह का मरीचि के पुत्र कश्यप से विवाह कर दिया। जिनका कश्यप से विवाह हुआ, उनके नाम थे अदिति, दिति, दनु, काला, दनायु, सिंहिका, क्रूरा, प्राधा, विश्वा, विनता, कपिला, मुनि और कदु।

अदिति के बारह पुत्र हुए। अदिति के पुत्र होने से वे आदित्य कहलाये। उनके नाम थे धाता, मित्र, अर्यमा, इन्द्र, वरुण, अंश, भग, विवस्वान, पूषा, सविता, त्वष्टा और विष्णु।

कालान्तर में इन्द्र देवताओं का राजा हुआ और विष्णु योद्धा। जहाँ-जहाँ एवं जब-जब भी देवताओं पर विपत्ति आई, विष्णु ने युद्ध कर देवताओं की विजय कराई। इन्द्र राज्य-कार्य में कुशल होने से राजा बना। वह देवराज कहलाया।

कश्यप का दक्ष की दूसरी कन्या दिति से एक पुत्र हुआ। वह हिरण्यकशिपु के नाम से विख्यात हुआ। यह दैत्य हो गया। इसके पाँच पुत्र थे। नाम थे, प्रह्लाद, संह्लाद, अनुह्लाद, शिवि और वाष्कल।

हिरण्यकशिपु के जन्म की कथा इस प्रकार है—दिति सन्तानोत्पत्ति की इच्छुक नहीं थी एवं वह चिरकाल तक निःसन्तान रही। एक दिन वह पति की कामना से व्याकुल हो उठी और अपने पति के पास जा पहुँची। सायंकाल का समय था और महर्षि कश्यप अग्निहोत्र कर रहे थे। दिति ने अपनी इच्छा प्रकट की तो कश्यप ने उसे किसी अन्य समय आने के लिये कह दिया। इस पर उसने पुनः आग्रह किया। विवश कश्यप जी ने उसकी कामना पूरी की, परन्तु उस अनुपयुक्त समय पर आरोपित सन्तान स्वभाव से दुष्ट और क्रूर हुई।

यह सन्तान ही हिरण्यकशिपु थी। बड़ा होकर हिरण्यकशिपु ने अपना राज्य निर्माण कर लिया और महान् शक्तिशाली होने के कारण उसका अभिमान बढ़ता गया। हिरण्यकशिपु का एक छोटा भाई भी था। उसका नाम हिरण्याक्ष था। दोनों भाई महा बलवान् थे और अपने सामने किसी की भी गणना नहीं करते थे। समय पाकर उनकी समझ में आया कि—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ईश्वरोऽहमहं भोगी सिद्धोऽहं बलवान् सुखी ।

मैं ईश्वर हूँ । सब-कुछ मेरे भोग के लिये है । मैं सिद्ध हूँ । मैं बलवान् हूँ और परम सुख पाने के योग्य हूँ । इस प्रकार अभिमान से चूर वे दोनों भाई सबको कष्ट पहुँचाने लगे । जो कुछ उनकी लेने की इच्छा होती, वे ले लेते और उसका भोग करते ।

जिस समय हिरण्यकशिपु की प्रथम सन्तान प्रह्लाद का जन्म हुआ, हिरण्यकशिपु वन में तपस्या में लीन था । इस कारण प्रह्लाद की जननी अपने नव-जात शिशु के साथ नारदजी के आश्रम में ध्यान, तपस्या इत्यादि के लिये चली गयी । प्रह्लाद वहाँ पला, बड़ा हुआ और नारद के उपदेशों से ईश्वर-भक्त हो गया ।

जब हिरण्यकशिपु तपस्या के उपरान्त लौटा तो उसकी पत्नी भी आश्रम से अपने प्रासाद में लौट आयी । हिरण्यकशिपु तपस्या द्वारा अपार बल का प्रयोग अपनी सुख-सामग्री जुटाने के लिये करने लगा ।

जब कभी उससे कोई कहता कि ईश्वर से डरे और अत्याचार न करे तो वह कह देता कि—ईश्वर तो मैं हूँ । मैं बलवान् हूँ, इस कारण सब प्रकार के भोग मुझको प्राप्त होने चाहियें । सब प्रकार के सुखों पर मेरा अधिकार है । वह अपनी इच्छा से दूसरे का धन, उसकी सम्पदा, स्त्री एवं कन्या उठाकर ले जाता । सब उसका बल देखकर भयभीत रहते थे ।

प्रह्लाद के मन में बचपन के संस्कार, जो उसने नारद के आश्रम में ग्रहण किये थे, जाग रहे थे और वह अपने पिता का व्यवहार देख असन्तुष्ट रहता था । जब प्रह्लाद को विश्वास हो गया कि उसके पिता का व्यवहार ठीक नहीं तो वह उन सबकी सहायता करने लगा, जिनको उसका पिता एवं चाचा कष्ट पहुँचाते थे ।

हिरण्याक्ष तो विष्णु द्वारा द्वन्द्व-युद्ध में मारा गया । हिरण्याक्ष ने पृथिवी के एक बड़े भाग पर अनुचित अधिकार कर रखा था । उस भू-भाग के लोगों ने चीख-पुकार की तो विष्णु ने हिरण्याक्ष को मारकर उस भू-भाग को मुक्त कराया ।

इस पर हिरण्यकशिपु को बहुत क्रोध चढ़ आया । विष्णु उसकी मौसी अदिति का पुत्र होने से उसको भाई मानता था । वह हिरण्याक्ष से भी युद्ध नहीं करना चाहता था । प्रह्लाद की धारणा विपरीत थी । वह समझता था कि उसके चाचा का व्यवहार अधर्मयुक्त था । इस कारण जो कुछ विष्णु ने किया है, वह ठीक था ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रह्लाद ने उनके साथ, जिन पर हिरण्याक्ष अन्यायाचरण कर रहा था, सहानुभूति प्रकट की। जब वह मारा गया तो उसने इसको ईश्वरेच्छा मान प्रसन्नता प्रकट की। इससे प्रह्लाद का पिता उससे भी रुष्ट हो गया।

जब हिरण्यकशिपु अपने भाई का प्रतिकार लेने का षड्यन्त्र रच रहा था तब प्रह्लाद सबको प्रत्यक्ष रूप में कह रहा था कि धर्म का हनन करने से ही मृत्यु होती है। बिना ईश्वर की इच्छा के न कोई मरता है और न कोई जन्म लेता है।

हिरण्यकशिपु ने यह समझा कि प्रह्लाद घर का भेदी है। इसके रहते वह भाई की हत्या का प्रतिकार नहीं ले सकेगा। इसलिये उससे पहले तो प्रह्लाद को समझाना चाहा कि वह उसका पुत्र है, उसको अपने पिता का पक्ष लेना चाहिये।

प्रह्लाद का उत्तर था, संसार में दो ही पक्ष हैं, एक धर्म का और दूसरा अधर्म का। माता-पिता, बहिन-भाई, राजा-प्रजा, मित्र-परिचित पक्ष-विपक्ष का निर्णय नहीं करते। पक्ष ईश्वर का अथवा ईश्वर के विरोध का है। मैं धर्म तथा ईश्वर के पक्ष में हूँ।

हिरण्यकशिपु का कहना था, ईश्वर मैं हूँ, धर्म वह है जो मैं कहता हूँ। इस कारण भी तुमको मेरा पक्ष लेना चाहिए।

परन्तु प्रह्लाद कहता था कि ईश्वर सर्वव्यापक है। वह सर्वान्तर्यामी है और आप तो इस आगार से बाहर की बात नहीं जानते।

हिरण्यकशिपु की घोषणा थी कि सबसे अधिक बलवान् मैं हूँ, अतः मैं ही ईश्वर हूँ। मैं अपने अधीन रहने वालों का पालन-पोषण एवं रक्षा करता हूँ। कम-से-कम उनका ईश्वर मैं हूँ। अन्न भूमि में उत्पन्न होता है और भूमि का स्वामी होने से मैं ईश्वर हूँ।

इसपर भी जब प्रह्लाद नहीं माना तो क्रोधित हो हिरण्यकशिपु ने कहा, तुम मेरे पुत्र हो। तुमको मुझसे वाद-विवाद नहीं करना चाहिये। इस कारण जब मैं कहता हूँ कि ईश्वर मैं हूँ, तो तुमको भी ऐसा कहना चाहिये। तुम नहीं मानते तो तुमको राजद्रोह के अपराध में दण्ड दिया जाता है।

प्रह्लाद नहीं माना तथा जनसाधारण में प्रचार करता रहा कि इस सब दिखायी देने वाले जगत् का और न दिखाई देने वाले जगत् का स्वामी परमात्मा है। उससे डरो और फिर निर्भय होकर रहो। जिसकी सहायता प्रभु करता है, उसका कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता।

लोग सुनते थे, परन्तु यह जानकर कि प्रह्लाद अपने पिता से बहुत दुर्बल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है और वह पिता का विरोध नहीं कर सकेगा, मुख से कुछ कहते नहीं थे। हृदय में वे सब उससे सहानुभूति रखते थे, परन्तु प्रत्यक्ष में वे कुछ नहीं कह सकते थे।

हिरण्यकशिपु के संगी-साथी भी लोगों में असन्तोष देखने लगे थे और उस असन्तोष का कारण प्रह्लाद को जान हिरण्यकशिपु के पास उसकी निन्दा करते रहते थे। अब कहीं-कहीं लोग हिरण्यकशिपु के साथियों का मिलकर विरोध करने लगे थे।

एक दिन प्रह्लाद का गुरु यह आरोप लेकर हिरण्यकशिपु के पास पहुँचा कि प्रह्लाद ने पाठशाला के सब बालकों को विद्रोही बना दिया है। वे उसकी आज्ञा का पालन नहीं करते। वे राजा को दुष्ट तथा आततायी मानते हैं। वे परमात्मा की भक्ति और उपासना के स्तोत्र गाते हैं।

प्रह्लाद को बुलाया गया और उससे गुरु के आरोप का उत्तर माँगा गया। प्रह्लाद ने आरोपों को स्वीकार करते हुए कहा, मैं उनको वही कहता हूँ, जो मैं ठीक मानता हूँ। यदि मेरी बात ग़लत है तो आप उनको कह दीजिये कि मेरी बात न मानें। मैं वही कहूँगा जो सत्य है। सत्य को प्रकट करना और उसके अनुसार आचरण करना धर्म है।

इस पर क्रोधित हो हिरण्यकशिपु ने प्रह्लाद को दण्ड सुना दिया, उसको अग्नि समान तपे हुए खम्भे से बाँध दिया जाये। हिरण्यकशिपु का कहना था कि यदि कोई ईश्वर है और उससे अधिक शक्तिशाली है तो देखें वह प्रह्लाद की किस प्रकार रक्षा करता है ? यह दण्ड तीन दिन उपरान्त उसे दिया जाना था।

विष्णु को यह सब सूचना मिली तो वह हिरण्यकशिपु की नगरी में आ गया और प्रजा को सुसंगठित हो प्रह्लाद की सहायता करने की प्रेरणा देने लगा। लोगों ने देखा कि विष्णु हिरण्यकशिपु से अधिक नहीं तो कम बलवान् भी नहीं। साथ ही उनको यह विदित था कि हिरण्याक्ष को उसने द्वन्द्व-युद्ध में मारा है। इससे एक बलशाली का आश्रय पाकर प्रजा उत्साहित हो प्रह्लाद की रक्षा के लिये तैयार हो गयी।

निश्चित दिन सार्वजनिक भवन के एक खम्भे को चारों ओर अग्नि जलाकर तपा दिया गया और प्रह्लाद को बुलाकर हिरण्यकशिपु ने आज्ञा दे दी, इस बालक को इस तपे हुए खम्भे से बाँध दिया जाये।

सेवक जब प्रह्लाद को बाँधने लगे तो वे यह देख चकित रह गये कि प्रह्लाद न तो भयभीत है, न दुःखी। वह प्रसन्न-वदन खम्भे के साथ बँधने के लिये तैयार हो गया, परन्तु उसके खम्भे से बँधने के पूर्व विष्णु विशाल जन-समूह के साथ वहाँ आ पहुँचा। उसने हिरण्यकशिपु को युद्ध के लिये ललकारा। हिरण्यकशिपु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ने प्रश्नभरी दृष्टि से उसे देखा तो विष्णु ने कहा, मैं नरसिंह (नरों में सिंह) हूँ।

हिरण्यकशिपु प्रजा को नरसिंह के साथ देख निस्तेज हो गया था। युद्ध हुआ और विष्णु ने हिरण्यकशिपु को मारकर उसके स्थान पर प्रह्लाद को वहाँ का राज्य सौंप दिया।[1]

महाराज पृथु

जनसंख्या में अपार वृद्धि हुई। साथ ही विस्तृत भू-भाग भी जल से निकल आया और ब्रह्मा की सन्तति दूर-दूर तक फैलने लगी। जिस गति से प्रजा में वृद्धि हुई थी, उसी गति से वेद, जो ब्रह्मा ने लिख लिये थे, प्रचारित नहीं हो सके। न ही सबमें वेद-ज्ञान को समझने की शक्ति थी। पूर्व-जन्मों के कर्मों के कारण, कइयों की प्रवृत्ति ऐसी थी कि वे धर्माधर्म, नीति-अनीति, कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य, गमनागमन, वाच्यावाच्य, भक्ष्याभक्ष्य तथा दोषादोष में भेदभाव नहीं कर सकते थे। भूमि भी स्वेच्छा से सबके भरण-पोषण के लिए पैदा नहीं करती थी। अतः बलशाली लोगों ने दल बना-बनाकर दूसरों को लूटना-पीटना आरम्भ कर दिया था।

सब देवता लोग (भले लोग) ब्रह्मा के पास पहुँचे। वहाँ सबने अपनी-अपनी कठिनाई का वर्णन किया तो ब्रह्मा ने एक नीति-शास्त्र का निर्माण कर दिया। वह नीति-शास्त्र 'त्रिवर्ग-शास्त्र' के नाम से विख्यात हुआ।

इस नीति-शास्त्र में एक राज्य निर्माण करने का आदेश था। उसमें एक अधिपति बनाने की सम्मति थी। उसका नाम राजा रखा गया। राज्य-नियमों

---

१. हिरण्यकशिपु का नरसिंह द्वारा वध सृष्टि के बनने के बहुत बाद में हुआ प्रतीत होता है। उस समय तक जनसंख्या बहुत बढ़ चुकी थी, परन्तु अभी तक पृथिवी पर बसे भले लोगों ने संगठित राज्य निर्माण नहीं किये थे। सर्वप्रथम राज्य-व्यवस्था दैत्यों ने ही बनायी। सात्विक प्रवृत्ति के लोगों में तो—

न वै राज्यं न राजाऽऽसीन्न च दण्डो न दाण्डिकः।
धर्मेणैव प्रजाः सर्वा रक्षन्ति स्म परस्परम्॥

न कोई राज्य था और न राजा। न दण्ड-विधान था और न कोई दण्ड देने वाले। समस्त प्रजा धर्म के द्वारा ही एक-दूसरे की रक्षा करती थी।

परन्तु हिरण्यकशिपु ने संगठन तैयार कर लिया था। उसके मित्र थे, सेवक एवं सैनिक थे। उनकी उपस्थिति में भले लोगों के लिए भी संगठन बनाना आवश्यक हो गया। विष्णु ने एक अस्थायी संगठन उसकी नगरी में ही बना लिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को दण्ड-विधान कहा गया। सब भले लोगों को ब्रह्मा ने कहा—

अराजके हि लोकेऽस्मिन्सर्वतो विद्रुते भयात्।
रक्षार्थमस्य सर्वस्य राजानमसृजत्प्रभुः॥

मनु० ७–३

लोक में अराजकता होने से सब-कुछ विगड़ जाने का भय है। सबकी रक्षा के लिये परमात्मा की आज्ञा से राजा बनाओ।

और—

स राजा पुरुषो दण्डः स नेताः शासिता च सः।
चतुर्णामाश्रमाणां च धर्मस्य प्रतिभूः स्मृतः॥

मनु० ७–१७

दण्ड-विधान ही राजा है। वही पुरुष है, वही नेता है, वही शासनकर्त्ता है और वही चारों आश्रमों का रक्षक है।

इस नीति-शास्त्र के बन जाने के बाद भले लोग राजा की खोज करने लगे। एक विरजा नाम का व्यक्ति इस कार्य के लिये चयन किया गया। वह धर्मात्मा, निःस्वार्थ भाव से जीवन व्यतीत करने वाला और तेजोमय था, परन्तु उसने राजा होने की अनिच्छा प्रकट कर दी। उसने संन्यास लेने का निश्चय कर लिया।

विरजा का एक पुत्र था कीर्तिमान्। उससे कहा गया तो उसने भी राज्य करने से इन्कार कर दिया। वह भी मोक्ष-मार्ग का अवलम्बन करने वाला निकला।

कीर्तिमान के पुत्र कर्दम को राजा बनाने का निश्चय हुआ, तो उसने भी स्वीकार नहीं किया। अतः कर्दम के पुत्र अनंग को राजा बनाया गया। अनंग प्रजा का संरक्षण करने में समर्थ, साधु तथा दण्ड-नीति विद्या में निपुण था।

इस प्रकार राज्य-परम्परा चल पड़ी। अनंग का पुत्र अतिबल था। उसने भी राज्य का विस्तार किया, परन्तु राज्य पाने पर वह विषय-लोलुप हो गया।

इससे प्रजा असन्तुष्ट रहने लगी।

मृत्यु की एक मानसिक कन्या थी सुनीता। सुनीता का एक पुत्र था वेन। अतिबल के पश्चात् वेन को राजगद्दी पर बैठाया गया, परन्तु राजगद्दी पर बैठते ही वह राग-द्वेष के वशीभूत प्रजा को दुःख देने लगा।

इससे ऋषि वर्ग वेन से रुष्ट हो गया और उन्होंने उसकी हत्या कर दी। वेन के दो पुत्र थे। शूद्र पत्नी से उत्पन्न पुत्र आयु में बड़ा था। उसने राजा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बनाये जाने की माँग की, परन्तु वेदवादी महर्षियों ने उसको अस्वीकार कर दिया। उन्होंने उसे कहा, 'निषीद' (बैठ जाओ)। इससे उसका नाम निषीद हो गया (अर्थात् जो बैठ गया)।

महर्षियों ने वेन के क्षत्रिय पत्नी से उत्पन्न हुए पुत्र को राजगद्दी पर बैठाया। यह राजा पृथु के नाम से प्रसिद्ध हुआ। पृथु को महर्षियों ने अपने समक्ष बुलाया और उससे राज्यारोहण की शपथ ली। ऋषि पहले कहते थे और पृथु उस शपथ को दोहराता था।[1]

---

१. भारतीय परम्परा में यह बात मानी गयी है कि असुर प्रवृत्ति के लोग अपने पूर्व जन्म के कर्मों से उत्पन्न होते हैं। कभी-कभी वे असुर प्रवृत्ति के लोग देवताओं के घर में भी उत्पन्न हो जाते हैं और कभी असुरों के घर देवता उत्पन्न हो जाते हैं।

कश्यप का लड़का हिरण्यकशिपु हुआ और हिरण्यकशिपु का प्रह्लाद। इसी प्रकार वेन की सन्तान पृथु हुई। यह प्रथम दैवी सम्पत्ति युक्त राजा था।

यह महाभारत में लिखा है कि पृथु विष्णु की आठवीं पीढ़ी में उत्पन्न हुआ था। विष्णु को भारतीय परम्परा में भगवान् का स्वरूप ही माना जाता है। कुछ ऐसा प्रतीत होता है कि जैसा ब्रह्मा के विषय में भ्रम होता रहता है, वैसा ही देवी-देवताओं के विषय में भी है। उपनिषद् में लिखा है 'त्रिविधं ब्रह्म' अर्थात् तीन प्रकार का ब्रह्म है। एक ब्रह्म सर्वशक्तिमान्, सर्वज्ञ, सर्वव्यापक, जगत्-आधार परमात्मा को कहते हैं। दूसरा ब्रह्म है अव्यक्त प्रकृति। तीसरा ब्रह्म आत्मा का नाम है। ऊपर दिये श्लोकों में से १०६ में ब्रह्म शब्द वेद के लिये प्रयोग किया गया है। जहाँ-जहाँ जिस अर्थ का अभिप्राय हो, वैसा ही वहाँ समझ लिया जाता है। इसी प्रकार देव भी तीन प्रकार के हैं। एक तो प्राकृतिक शक्तियों को देवता मानते हैं। से सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, देवता कहलाते हैं। दूसरे, पुण्यमयी आत्माओं को भी देवता के नाम से स्मरण किया जाता है। यह माना जाता है कि पंच-भौतिक शरीर से मुक्त होकर वे अन्तरिक्ष में स्थित स्वर्ग लोक में रहते हैं। तीसरे, दिति के बारह पुत्र और उनकी सन्तान जो देवलोक (तिब्बत) में रहती थी, उनको भी देवता कहते थे।

जब यह कहा जाये कि पृथु विष्णु की आठवीं पीढ़ी में था, तो विष्णु से अभिप्राय है दिति का पुत्र। फिर लिखा है कि जब पृथु राज्य करने लगा था तो···

तपसा भगवान् विष्णु सविविवेश च भूमिपम्।

(राजा पृथु की तपस्या से प्रसन्न होकर साक्षात् भगवान् विष्णु राजा में आकर बैठ गये)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋषियों ने उससे वचन लिया,

नियतो यत्र धर्मो वै तमशङ्क समाचर ।।
प्रियाप्रिये परित्यज्य समः सर्वेषु जन्तुषु ।
कामं क्रोधं च लोभं च मानं चोत्सृज्य दूरतः ।।
यश्च धर्मात् प्रविचलेल्लोके कश्चन मानवः ।
निग्राह्यस्ते स्वबाहुभ्यां शश्वद् धर्ममवेक्षता ।।
प्रतिज्ञा चाधिरोहस्व मनसा कर्मणा गिरा ।
पालयिष्याम्यहं भौमं ब्रह्म इत्येव चासकृत् ।।
यश्चात्र धर्मो नित्योक्तो दण्डनीतिव्यपाश्रयः ।
तमशङ्क करिष्यामि स्ववशो न कदाचन ।
अदण्ड्या मे द्विजाश्चेति प्रतिजानीहि हे विभो ।
लोकं च संकरात्कृत्स्नं त्रातास्मीति परंतप ।।

महा भा० शा० ५९—१०३ से १०८

जिस काम में धर्म की सिद्धि हो उसे निर्भय होकर करोगे ।

प्रिय और अप्रिय का विचार छोड़कर काम, क्रोध, लोभ और मोह को दूर हटाकर समस्त प्राणियों के प्रति समभाव रखोगे ।

जब कोई मनुष्य धर्म से विचलित हो, उसे सनातन धर्म का विचार कर, बाहुबल से परास्त कर दण्ड दोगे ।

मन, वाणी और कर्म द्वारा वेद भगवान् की आज्ञा का पालन करोगे और उससे स्वच्छन्द नहीं होओगे ।

साथ ही यह भी प्रतिज्ञा करो कि तुम्हारे राज्य में ब्राह्मण आदरणीय होंगे तथा सम्पूर्ण जगत् को संकरता और धर्म-संकरता से बचाओगे ।

पृथु ने यह शपथ ली और ऋषियों ने प्रसन्न हो उसको देश का राजा स्वीकार किया । शुक्राचार्य पृथु के पुरोहित हुए और बालखिल्य एवं सरस्वती तटवर्ती महर्षि उसके मन्त्री बने ।

यह प्रसिद्ध है कि पृथु विष्णु से आठवीं पीढ़ी में था । पृथु प्रथम राजा था, जिसके राज्य में अन्नादि उत्पन्न करने के लिये यत्न किया गया । पृथु ने भूमि को समतल कराया और उस पर कृषि करने का प्रबन्ध कराया । उससे पूर्व भूमि

यहाँ विष्णु के अर्थ परमात्मा से हैं । यह बात निर्विवाद है कि सब श्रेष्ठ तपस्वी मनुष्यों में परमात्मा का विशेष रूप से वास रहता है । कभी-कभी भगवान् उस मनुष्य द्वारा अपना कार्य सिद्ध कर उसमें से चले भी जाते हैं ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर जो कुछ अनायास उत्पन्न होता था, उसी से मनुष्य पेट भर लेते थे। फल, फूल, एवं कन्द इतनी बाहुल्यता में उत्पन्न होते थे कि किसी को प्रयत्न करने की आवश्यकता ही अनुभव नहीं होती थी। भूमि उर्वरा थी एवं जन-संख्या कम थी।

परन्तु समय व्यतीत होने के साथ-साथ जनसंख्या बढ़ी और भूमि की उपज सबका पेट भरने में असमर्थ हो गयी। तब यह आवश्यक हो गया कि भूमि में से भोज्य-पदार्थ उत्पन्न करने के लिये नियमित ढंग से प्रयत्न किया जाये।

पृथु के राजगद्दी पर बैठते ही पृथिवी के लोग प्रसन्न हुए। ऐसा लिखा मिलता है कि पृथिवी स्वयं (पृथिवी भर के लोग) महाराज पृथु के लिये रत्नों की भेंट लेकर आयी। भगवान कुबेर भी स्वर्ण की भेंट लेकर उपस्थित हुआ। मेरु पर्वत (वहाँ की प्रजा) भी उसके पास बहुत बड़ी राशि में स्वर्ण की भेंट लाये। इस सब धन से पृथु की सेवा में रथ, घोड़े एवं करोड़ों मनुष्य आ उपस्थित हुए।

पृथु के राज्य का प्रबन्ध इतना श्रेष्ठ था :

न जरा न च दुर्भिक्षं नाधयो व्याधयस्तथा ॥
सरीसृपेभ्यः स्तेनेभ्यो न चान्योन्यात् कदाचन।
भयमुत्पद्यते तत्र तस्य राज्ञोऽभिरक्षणात् ॥

महा० भा० शा० ५९—१२१,१२२

पृथु के राज्य में किसी को बुढ़ापा नहीं आता था। वहाँ दुर्भिक्ष तथा आधि-व्याधि का कष्ट नहीं था। राज्य की ओर से रक्षा समुचित थी। अतः कभी किसी को सांपों, चोरों तथा आपस के लोगों में भय नहीं होता था।

तेनेयं पृथिवी दुग्धा सस्यानि दश सप्त च ॥

राजा ने पृथिवी पर सत्रह प्रकार के अन्न का दोहन (उत्पादन) किया। ब्रह्मा के त्रिवर्ग शास्त्र का पृथु पण्डित था और उसी के अनुसार वह प्रजा-पालन कर रहा था।

पृथु के राज्य में धर्म के द्वारा श्री देवी से अर्थ की उत्पत्ति हुई और उसमें धर्म, अर्थ और श्री तीनों ही राज्य में प्रतिष्ठित हुए।

सतयुग के उपरान्त

अमृत-मंथन

यहाँ यह बात स्पष्ट हो जानी चाहिये कि मन्वन्तर अथवा चतुर्युगी इत्यादि केवल काल के विभाग हैं। इनसे यह सिद्ध नहीं होता कि किसी काल की विशेषता के कारण लोग धर्मात्मा अथवा पापी होते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह किंवदन्ती है कि सतयुग में धर्म का राज्य था और त्रेता में धर्म की एक टाँग टूट गयी। अब कलियुग में धर्म एक टाँग पर खड़ा है। इस बात का पौराणिक कथा साहित्य अथवा इतिहास में प्रमाण नहीं मिलता। कोई काल ऐसा नहीं मिलता, जिस काल में आसुरी सम्पत्ति के लोग निःशेष हो गये हों। आदि सृष्टि की तीन कथायें हमने ऊपर लिखी हैं। उनसे भी यही प्रकट होता है कि सुर एवं असुर दोनों आदि सृष्टि के साथ-साथ चलते आ रहे हैं।

यही बात सतयुग की थी। मनु की अपनी सन्तान में से भी कई ऐसे थे, जो आदर्श सतयुगी जीव नहीं कहे जा सकते थे।

पञ्चाशत् तु मनोः पुत्रास्तथैवान्येऽभवन् क्षितौ ॥
अन्योन्यभेदात् ते सर्वे विनेशुरिति न श्रुतम्।

महा० भा० आ० ७५—१७, १८

अर्थात्—मनु के पचास और पुत्र थे, परन्तु वे परस्पर लड़ते-लड़ते विनाश को प्राप्त हुए।

मनु के पश्चात् सृष्टि का विस्तार हो चुका था। देश एवं कर्मों के विचार से भी जातियाँ बन चुकी थीं। उन जातियों में परस्पर स्पर्धा भी होने लगी थी।

मुख्य रूप से दो स्वभाव के लोग थे—आसुरी और दैवी। दोनों में देश एवं वंश के भेद से जातियाँ बन गयी थीं। इस पर भी जब आसुरी और दैवी सम्पदा वालों में युद्ध होते तो स्वभाववश, अपने-अपने वर्ग में लोग सम्मिलित हो जाते थे।

इस प्रकार के संग्रामों को देवासुर संग्राम कहते थे। ऐसे कई संग्राम हुए हैं। इनमें से एक संग्राम अमृत-मन्थन के बाद हुआ था।

प्रायः असुर अधिक सन्तान उत्पन्न करते थे। पुरुष कई-कई स्त्रियाँ रख लेते थे और उनसे सन्तान पैदा करते थे। इसके अतिरिक्त असुर जड़वादी होने से भोग-विलास में अधिक रत रहते थे। उन्होंने बड़े-बड़े विशाल नगर बसा लिये थे और उनमें सब प्रकार की भोग-सामग्री उपलब्ध की जाती थी। ऐसे उदाहरण कई स्थलों पर मिलते हैं, जब देवता, देवताओं का पक्ष छोड़ असुरों में सम्मिलित हो जाते थे। उनको असुर नगरों में शारीरिक सुख-सुविधा की उपलब्धि अधिक प्राप्त होती थी।

असुरों के नगर और देश, धन एवं जन से परिपूर्ण थे। वे अपनी बढ़ती हुई जनसंख्या के लिये सदा नये स्थान की खोज में रहते थे। इसी स्थान की खोज के कारण देवताओं के देशों पर आक्रमण होते थे और युद्ध हो जाते थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अतः एक बार देवता इन निरन्तर होने वाले संग्रामों से असन्तुष्ट, इनसे छुटकारा पाने का उपाय विचार करने के लिये सुमेरु पर्वत पर एकत्रित हुए।

सुमेरु पर्वत-शृंखला देवलोक को चारों ओर से घेरे हुए थी। इस पर्वत-शृंखला के कई शिखर थे। इनमें से एक शिखर पर यह सम्मेलन रखा गया और देवताओं के सब प्रसिद्ध नेतागण वहाँ उपस्थित हुए।

इस सम्मेलन का उद्देश्य था कि कैसे असुरों से मुक्ति प्राप्त की जाये? ब्रह्मा का कथन था कि मरने से असुर समाप्त नहीं होंगे, न ही किसी अन्य उपाय से इनको निःशेष किया जा सकता है। इनको कम करने का एक ही उपाय है कि धर्म-कर्म का प्रसार किया जाये। इस जगत् में ही नहीं, प्रत्युत सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में धर्म का इतना विस्तार हो कि पापमयी आत्मायें कम हो जायें। तभी आसुरी सम्पदा के लोग कम हो सकते हैं तथा संसार में भले लोगों का कष्ट कम हो सकता है। यह कार्य इतना विशाल है कि इसको करते हुए भी कष्ट से मुक्ति प्राप्त करने का एक दूसरा उपाय करना होगा। वह उपाय है देवताओं की संख्या में वृद्धि का। इस वृद्धि के लिये देवताओं को युद्धों से और अन्यथा मृत्यु से बचाया जाये। इसके लिये देवताओं को अमृत का पान करना चाहिये। अमृत समुद्र में से निकल सकता है। अतः इसके लिये समुद्र का मंथन करना होगा।

ब्रह्मा का यह उपाय सबको पसन्द आया। अतः इसके लिये प्रस्ताव किया गया और यत्न आरम्भ किया गया।

मंदराचल पर्वत (अवश्य कोई ऐसा यन्त्र होगा जो मन्थर गति से चलता होगा तथा समुद्र का मंथन करता होगा) को उपलब्ध किया गया। इस मंदराचल को समुद्र तक ले जाने के लिये अनन्त नाग (कोई अति योग्य इञ्जीनियर रहा होगा) की सेवायें उपलब्ध की गयीं। मंदराचल के घुमाने के लिये वासुकी नाग (एक अन्य इञ्जीनियर) को कहा गया। मंदराचल को टिकाया गया एक कच्छ-राज की पीठ पर (यह भी किसी प्रकार का यन्त्र रहा होगा)।

मुख्यतः यह प्रयास देवताओं का था, परन्तु इसमें दैत्य भी आकर सम्मिलित हो गये। उन्होंने अपनी सेवायें देते समय कुछ माँगा नहीं था। वे इस आयोजन के वैचित्र्य को देखने के लिये आये थे और स्वेच्छा से सहयोग देने लगे थे।

परन्तु जब मंथन आरम्भ हुआ और उसमें से अनेकानेक प्रकार की अद्भुत वस्तुयें निकलने लगीं तो दैत्यों के मन में लोभ आ गया। अमृत के निकलने पर जब देवताओं ने हर्ष प्रकट किया तो दैत्य भी अमृत में भाग पाने की माँग करने लगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देवताओं का निश्चय था कि अमृत दैत्यों में नहीं बाँटा जायेगा। इसके लिये उनको समझाया गया कि यह उनको नहीं मिल सकता। इस पर दैत्य लड़ने-मरने को तैयार हो गये। तब विष्णु ने कहा कि युद्ध तो होगा, परन्तु इससे पूर्व अमृत पान कर लेना आवश्यक है।[1]

दैत्य अमृत के घट पर धरना दे रहे थे और वे बाँटकर अपना भाग प्राप्त करने का हठ कर रहे थे। इस समय विष्णु ने एक अति सुन्दर स्त्री का रूप धारण कर वहाँ पदार्पण किया। देवता, असुर दोनों उस पर मुग्ध हो उसके हाव-भावों को देखने लगे तथा अमृत की बात भूल गये।

इस पर मोहिनी स्वरूप विष्णु ने अमृत उठा लिया और दोनों पक्षों को कहा कि अपनी-अपनी पंक्तियों में बैठ जाओ, मैं यह बाँट देता हूँ।

देवता और दानव पृथक्-पृथक् पंक्तियों में बैठ गये और मोहिनी ने अमृत देवताओं में बाँटना आरम्भ कर दिया। जब असुर उसकी माँग करते तो मोहिनी मद-भरे नयनों से उन पर कटाक्ष करती। वे शान्त हो जाते और मोहिनी देवताओं को अमृत बाँटती रही।

दैत्यों में राहु नाम का एक चतुर दैत्य था। वह उस स्त्री की छलना जान

---

१. अमृत क्या था? समुद्र में से कैसे निकला? मंदराचल तथा कच्छपराज इत्यादि अनेक बातें हैं, जो इस कथा में समझ में नहीं आतीं। इस पर भी हमने इस कथा को देने का साहस किया है। इसका कारण है।

अमृत कुछ भी रहा हो। समुद्र और समुद्र के मंथन के कुछ भी अर्थ हों। उसकी व्याख्या को छोड़कर इस कथा में कुछ अति गम्भीर राजनीतिक तथ्य हैं, जिन पर हम पाठकों का ध्यान आकर्षित करना चाहते हैं। एक यह कि असुरों की समाप्ति नहीं हो सकती। बल द्वारा ही इनको दबाकर रखा जा सकता है। जब भी ये अवसर पायेंगे, सिर उठायेंगे तथा दैवी-सम्पदा वालों को कष्ट देंगे। असुरों का स्रोत इनके पाप कर्म ही हैं। युद्ध देवताओं के त्राण के लिये बहुत उपयोगी उपाय होता हुआ भी स्थायी उपाय नहीं है। समय-कुसमय पर ही यह प्रयोग में लाया जा सकता है। स्थायी उपाय है देवताओं को अमृत पिला कर चिरंजीवी करना। वह अमृत क्या था, यह तो पता चला नहीं। परन्तु एक अमृत का ज्ञान भारतीय परम्परा में आज तक विद्यमान है। वह है यह विचार···

न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे॥

भ० गी० २—२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गया और जब अन्य दैत्य मोहिनी के हाव-भाव और कटाक्षों पर मुग्ध हो रहे थे, वह अपनी पंक्ति से उठा और देवताओं की पंक्ति में जा बैठा। उसके सामने भी अमृत परोस दिया गया और उसने तुरन्त उठाकर मुख में डाल लिया। परन्तु उसी समय सूर्य एवं चन्द्र उसको पहचान गये। उन्होंने विष्णु को बताया और विष्णु ने अपने सुदर्शन चक्र से राहु का शिर छेदन कर दिया। एक ग्रास अमृत का गले के नीचे उतर गया था। इससे राहु अभी भी देवताओं को कष्ट पहुँचाने के लिये जीवित है।

दैत्य देवताओं का छल जान गये, और दोनों में युद्ध हो गया। मोहिनी ने सब अमृत देवताओं को पिला दिया और देवता अमृत पान कर युद्ध के लिये तैयार हो गये।

यह देवासुर संग्राम अति भयंकर हुआ। विष्णु को अपना सुदर्शन चक्र चलाना पड़ा। इस युद्ध में पहली बार नरों ने भी देवताओं की ओर से युद्ध किया। नर का अर्थ मानव सन्तान है। ये नर नाम के मानव विष्णु के सहयोगी थे। जब उनको मालूम हुआ कि देवताओं और असुरों में एक अति भयंकर युद्ध हो रहा है तो देवताओं की सहायता में वे भी अपने दिव्य धनुष लेकर लड़ने के लिये आ जुटे। विष्णु ने भी अपना चक्र निकाला। इस सुदर्शन चक्र के विषय में लिखा है :

(आत्मा किसी काल में भी न जन्म लेती है, न मरती है। न ही वह होकर न होने वाली है। कारण यह है कि वह अजन्मा है, नित्य है और शाश्वत एवं सनातन है। शरीर के नाश होने पर भी वह नाश नहीं होती।)

देवताओं ने इस अमृत का पान किया हुआ था। समुद्र-मंथन से निकला हुआ वह अमृत क्या करता है ? यह तो पता नहीं, परन्तु वेद और उपनिषद के मंथन से यह अमृत तो कार्य करता देखा जाता है।

एक अन्य राजनीतिक तथ्य भी इस कथा में दृष्टिगोचर होता है। वह है आयुधों के विषय में। युद्ध में जीत उसकी होती है, जो श्रेष्ठ शस्त्रास्त्र रखता है। देवताओं की संख्या दानवों से कम थी, परन्तु जीत उनकी हुई थी क्योंकि उनके पास शस्त्रास्त्र दिव्य थे। नर भी इस संग्राम में सम्मिलित होने आये थे तो अपने दिव्य धनुष-बाण लेकर। देवताओं ने सब प्रकार के दिव्यास्त्रों का निर्माण अपने हाथों में रखा हुआ था। कभी कोई असुर सन्तान जब तपस्या (अपने तपमय जीवन) से देवताओं को विश्वास दिला देता था कि उसने आसुरी स्वभाव छोड़ दिया है तो वह एक-आध दिव्य अस्त्र पा जाता था, परन्तु सबसे बड़ा दिव्यास्त्र सुदर्शन चक्र उन्होंने कभी किसी के हाथ में नहीं दिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तदागतं ज्वलितहुताशनप्रभं भयंकरं करिकरबाहुरच्युतः।
मुमोच वै प्रबलवदुग्रवेगवान् महाप्रभं परनगरावदारणम्॥

म० भा० आदि० १६—२२

वहाँ आया हुआ यह भयंकर चक्र प्रज्वलित अग्नि के समान प्रकाशित हो रहा था। उसमें शत्रुओं के बड़े-बड़े नगरों को ध्वंस कर डालने की शक्ति थी। विष्णु ने, जिसकी बाँहें हाथी की सूंड के समान बड़ी एवं बलशाली थीं, उस चक्र को असुरों पर चला दिया।

घोर युद्ध के बाद दैत्यों, असुरों एवं दानवों की पराजय हुई और देवताओं की विजय हुई।

यह अमृत के लिये देवासुर संग्राम कहा जाता है।

ययाति

नहुष और ययाति दो व्यक्ति चन्द्र-वंश में उत्पन्न हुए थे और सूर्य-वंश में भी। सूर्य-वंशीय नहुष और ययाति ऐतिहासिक पुरुष नहीं हुए। चन्द्र-वंशीय नहुष और ययाति तो, जब तक भारतीय परम्परायें स्मरण रहेंगी, तब तक इनका नाम रहेगा। नहुष पहली मानव (मनु की) सन्तान थी, जिसने देवलोक पर राज्य किया था; जिसने इन्द्र को पराजित कर बन्दी बनाया था और जिसने ऋषियों से भी कर ग्रहण किया था।

यह ययाति, जिसकी हम कथा लिख रहे हैं, उसी नहुष का पुत्र था, जिसने इन्द्र को पराजित कर बन्दी बनाया था। नहुष के छः पुत्र थे। यति, ययाति, संयाति, आयाति एवं ध्रुव। यति योग-साधना कर ब्रह्मभूत मुनि हो गये थे। इस कारण ययाति को राज्य मिला।

ययाति अति पराक्रमी सम्राट थे। उन्होंने बहुत से यज्ञों का अनुष्ठान किया था। ये कभी किसी से परास्त नहीं हुए।

ययाति अभी युवा ही थे कि दानवों के पुरोहित शुक्राचार्य की कन्या से विवाह के लिये निर्वाचित हो गये। दोनों का समागम एक विचित्र घटना से हुआ था।

शुक्राचार्य दानवराज वृषपर्वा का राजपुरोहित था और उसकी राजधानी में रहता था। शुक्राचार्य की लड़की देवयानी वृषपर्वा की लड़की शर्मिष्ठा की सखी थी। दोनों परस्पर हेल-मेल से रहती थीं। देवयानी के मन में यह अभिमान था कि उसके पिता राजा के पुरोहित हैं और वे संजीवनी विद्या को जानते हैं, जिसके आश्रय दानव अपना अस्तित्व रखे हुए हैं। जब-जब भी दानव और देव-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ताओं में युद्ध हो जाता था और दानव युद्ध में मारे जाते तो महर्षि उनके मृतकों को पुनः जीवित कर देते थे। वृषपर्वा की लड़की शर्मिष्ठा को यह अभिमान था कि वह राजकुमारी है और देवयानी का पिता एक निर्धन ब्राह्मण है, जो उसके पिता के आश्रय पलता है। इस पर भी दोनों में सखीपन था।

इन्द्र जानता था कि दैत्य-दानव महर्षि शुक्राचार्य की सहायता से अजेय हो रहे हैं। इससे वह चाहता था कि आचार्यजी दानवराज से लड़ पड़ें तो वह पुनः देवताओं में ले लिये जायें। एक दिन इन्द्र को इनमें वैमनस्य कराने का अवसर मिल गया। वह वन में घूम रहा था कि उसको शर्मिष्ठा अपनी सखियों के साथ वन में जल-विहार करती दिखायी पड़ी। उन्होंने अपने वस्त्र पुष्करिणी के तट पर उतारे हुए थे और जल में खेल-कूद कर रही थीं। इन्द्र ने देखा कि देवयानी के वस्त्र शर्मिष्ठा के वस्त्रों के समीप रखे हैं। अतः उसने एक के वस्त्र उठाकर दूसरों के वस्त्रों से बदल दिये।

सखियाँ स्नान कर निकलीं तो अँधेरा हो चुका था। अतः दोनों ने अपने स्थान पर रखे वस्त्रों को उठाया और अँधेरे में बिना पहचाने पहनने लगीं। शर्मिष्ठा के वस्त्र रेशमी एवं अलंकृत थे। अतः जब वह देवयानी के साधारण वस्त्र पहनने लगी ती जान गयी कि वे उसके नहीं हैं। तब देवयानी शर्मिष्ठा के वस्त्र पहन रही थी। जब शर्मिष्ठा ने देखा कि उसके वस्त्र देवयानी पहन रही है तो उसने कहा, तुमको दिखायी नहीं देता कि इतने मूल्यवान वस्त्र तुम जैसी निर्धन ब्राह्मण लड़की के पास नहीं हो सकते ? देवयानी ने भूल स्वीकार कर क्षमा माँग ली, परन्तु शर्मिष्ठा उसे जली-कटी सुनाती रही। इस पर देवयानी को भी क्रोध चढ़ आया। उसने भी उसको सुनायीं। उसने कहा, मेरे पिता निर्धन अवश्य हैं, परन्तु तुम दानवों के वे प्राण हैं। यदि वे तुम्हारे पिता का साथ छोड़ दें तो तुम लोग एक क्षण भर भी जीवित नहीं रह सकते।

इस पर विवाद बढ़ गया और क्रोध में शर्मिष्ठा देवयानी को अपनी दासियों की सहायता से एक कुएँ में धकेल अपने प्रासाद को लौट आयी। देवयानी कुएँ से निकल नहीं सकी और वहीं पड़ी कुपित होती रही।

अकस्मात् राजा ययाति शिकार खेलने वन में आये और कुएँ पर जल पीने पहुँच गये। जब वे जल निकालने लगे तो देवयानी ने पुकारा 'मुझको निकाल दो।' ययाति ने उसका हाथ पकड़कर उसे कुएँ से बाहर खींच लिया। तत्पश्चात् दोनों का परिचय हुआ तो देवयानी ने कहा: 'आपने मेरा हाथ पकड़ा है, इस कारण मैंने आपको वर लिया है।'

ययाति ने अँधेरे में उसकी रूप-राशि नहीं देखी थी। अतः उसने यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहकर छुटकारा पा लिया कि तुम्हारे पिता मेरे गुरु हैं, अतः मैं गुरु-कन्या से विवाह नहीं कर सकता। इतना कह वह अपने मार्ग पर चला गया।

देवयानी घर पहुँची तो उसने अपने पिता शुक्राचार्य को शर्मिष्ठा की दुष्टता सुना दी। इस पर शुक्राचार्य क्रुद्ध हो वृषपर्वा के पास पहुँचे और कह दिया कि वे उसका देश छोड़ इन्द्र के राज्य में जा रहे हैं। वृषपर्वा इसको पूर्ण जाति के लिये विपत्ति मान अचार्यजी से अनुनय-विनय करने लगा और अन्त में इस बात पर समझौता हुआ कि शर्मिष्ठा देवयानी की दासी बनकर रहे तो आचार्यजी उसके नगर में रह सकते हैं। विवश वृषपर्वा को मानना पड़ा।

इसके कई वर्ष पश्चात् देवयानी अपनी दासी शर्मिष्ठा के साथ वन विहार कर रही थी कि ययाति ने उनको देख लिया। इस बार उसने देवयानी को दिन के प्रकाश में देखा तो उस पर मुग्ध हो गया।

इस बार परिचय हुआ तो देवयानी ने कुएँ वाली घटना का स्मरण कर कह दिया कि उसने तो उसको वर रखा है तथा वह ब्राह्मण कन्या होने से अब किसी अन्य से विवाह नहीं कर सकती। ययाति शुक्राचार्यजी के पास पहुँचा और उनसे देवयानी को माँगने लगा। शुक्राचार्य ने ययाति से अपनी कन्या विवाहने से पहले यह वचन लिया कि वह शर्मिष्ठा को अपनी पत्नी नहीं बनायेगा। इस वचन के मिलने पर उसने विवाह स्वीकार कर लिया।

ययाति देवयानी को उसकी सब दासियों सहित अपने राज्य प्रतिष्ठानपुरी में ले गया। वहाँ ययाति अपनी रानी देवयानी के साथ सुखपूर्वक रहने लगा। देवयानी के एक पुत्र उत्पन्न हो चुका था कि ययाति की दृष्टि शर्मिष्ठा पर जा पड़ी। उसको वह देवयानी से भी अधिक सुन्दर प्रतीत हुई। इस प्रकार रानी से चोरी-चोरी ययाति का सम्बन्ध शर्मिष्ठा से भी बन गया। शर्मिष्ठा के भी लड़का हुआ तो देवयानी ने उससे पूछा कि वह लड़का किसका है? शर्मिष्ठा ने यह कहा कि एक तपस्वी का है, जो वन में रहता है।

कई वर्ष व्यतीत हो गये। देवयानी के दो पुत्र हुए तो शर्मिष्ठा के तीन हो गये। रहस्य खुला तो देवयानी क्रोध से भरी हुई अपने पिता के पास जा पहुँची और अपने पति के वचन भंग की बात बताने लगी।

शुक्राचार्य को भी क्रोध आ गया और उन्होंने ययाति को शाप दे दिया कि वह समय से पूर्व ही वृद्धावस्था को प्राप्त हो जाये। ययाति वृद्ध हो गया। जब उसको पता चला कि यह आचार्यजी के शाप के कारण है तो वह भी वहाँ पहुँचा और आचार्यजी से क्षमा माँगने लगा। ययाति की एक युक्ति ने आचार्य पर प्रभाव डाला। वह यह कि अभी आचार्यजी की पुत्री भी युवा है और उसने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी यौवन-भोग नहीं किया। इस युक्ति पर आचार्यजी ने कहा कि राजा किसी युवक से यौवन उधार ले सकता है और जब वह सन्तुष्ट हो जाये तो यौवन वापस भी कर सकता है।

ययाति इस वर से प्रसन्न हो अपने प्रासाद में पहुँचा और पुत्रों से यौवन उधार माँगने लगा। सबने यौवन देने से इन्कार कर दिया। केवल शर्मिष्ठा के पुत्र पुरु ने ही यौवन को बुढ़ापे से बदलना स्वीकार किया। राजा पुनः यौवन पा भोग-विलास में लिप्त हो गया।

महाराज ने यह नवीन यौवन पा खूब दान-दक्षिण दी। धर्म-कार्य, यज्ञ, योगादिकार्य किये और प्रजा का हित-साधन भी किया। साथ ही वह विश्वाची अप्सरा से भोग-विलास करता रहा।[1]

सहस्रों (अनेकों) वर्षों तक वासना में लिप्त रहकर, ययाति की समझ में आया कि उसकी वासना-तृप्ति तो होती ही नहीं। अतः उसने पुरु को उसका यौवन वापस कर दिया और स्वयं वन को चला गया।

वन में ययाति घोर तपस्या में लीन रहा और फिर अपनी तपस्या के बल पर वह इन्द्र के राज्य, स्वर्ग में स्थान पा गया। उसके जीवन भर के पुण्य-कार्य इस स्थान को पाने में सहायक हो गये।

परन्तु एक दिन वह अपनी इस सफलता पर, जो अन्य मानवों को कई जन्मों में भी प्राप्त नहीं होती, अभिमान करने लगा। इस पर इन्द्र क्रुद्ध हो गया और उसने उसको स्वर्ग भूमि से निकालने की आज्ञा दे दी। उसको पुनः मानव-समाज में भेज दिया गया।[1]

---

१. भोगों से तृप्ति भोग करने से नहीं होती, प्रत्युत उनके त्याग से होती है। अभिमानी का सिर नीचा होता है। ये दोनों ऐतिहासिक तथ्य हैं। भिन्न-भिन्न रूपों एवं अवसरों पर इनका अनुकरण होता है। इस पर भी मनुष्य के मन में जब विकार उत्पन्न होते हैं तो उनका विरोध करना अथवा उनके प्रवाह को रोक सकना, विरले ही धीर-संयमी मनुष्य कर सकते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि भारतवर्ष में ययाति का काल शान्तिमय था। देश पर किसी बाहरी राज्य का आक्रमण नहीं हुआ था, न ही देश में धर्म का ह्रास हुआ था। इस पर भी काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार, मन के विकार अपना कार्य करते थे। इतिहास-कार ने वर्णन किया है कि धन-सम्पदा, अधिकार, पदवी, मान-प्रतिष्ठा सब-कुछ पाने पर भी और संस्कारों की शुद्धता से धर्म में निष्ठा होने पर भी मनुष्य पतन को प्राप्त हो सकता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गंगा

भारतीय साहित्य में गंगा दो रूपों में वर्णित है। एक गिरिराज हिमवान की कन्या और शिव की पत्नी की बहिन के रूप में तथा दूसरी हिमालय से निकलने वाली नदी के रूप में। ऐसा प्रतीत होता है कि नदी के रूप में गंगा की एक बहुत ही प्राचीन कथा है। इस कथा का एक अंश हम पिछले अध्याय में लिख चुके हैं।

गंगा एक नदी थी, जो हिमालय के उत्तर से निकलती थी और उसका प्रवाह दक्षिण की ओर था। देवता लोग अपने देश में जल का अभाव होने से उस नदी को अपने देश (देवलोक) में ले जाना चाहते थे। हिमालय के राजा की अनुमति से वे पर्वत काटकर बहुत ऊँचे पर से ही उसे अपने देश की ओर ले गये थे। वहाँ गंगा की तीन धाराएँ हो गयीं। एक स्वर्ग लोक को तृप्त करती थी, अर्थात् ऊँचे पठार पर जल-सिंचन करती थी। दूसरी धारा देवलोक में बहने लगी और देव नदी के नाम से विख्यात हुई। तीसरी भूमि के अन्दर ऐसे धँस गयी (जैसे आजकल सरस्वती धँस गई है) और रसातल में पहुँच गई। इसी कारण इसका नाम त्रिपथगा पड़ गया; परन्तु गंगा की कहानी यहीं समाप्त नहीं हुई। यह पुनः भारत में लाई गई। किस प्रकार लाई गयी, इसका विवरण इस प्रकार है।

इक्ष्वाकु वंश में सगर नाम के एक राजा हुए हैं। उन्होंने हिमालय एवं विन्ध्याचल के मध्य की भूमि पर अश्वमेध यज्ञ का अनुष्ठान किया।

सगर की दो महारानियाँ थीं। एक का नाम था केशिनी और दूसरी का नाम था सुमति। चिरकाल तक दोनों के घर सन्तान नहीं हुई। अपने इस अभाव की पूर्ति के लिये महाराज सगर अपनी पत्नियों सहित महर्षि भृगु की सेवा में पहुँचे और तपस्या करने लगे। महर्षि ने प्रसन्न हो वर दे दिया और कहा, "नृपश्रेष्ठ! तुम्हारे घर में बहुत से पुत्र होंगे और तुम्हारी कीर्ति इस संसार में फैलेगी।"

जब पूछा गया कि किसके घर कितने पुत्र होंगे, तो महर्षि ने रानियों से ही पूछ लिया कि वे क्या चाहती हैं? इस पर केशिनी ने एक पुत्र माँग लिया। सुमति ने साठ हज़ार (बहुत बड़ी संख्या में) पुत्रों की माँ बनना स्वीकार कर लिया।

मन के विकारों से जनसाधारण को क्या और समाज के उच्च स्तर पर विराजमान राजा-महाराजाओं को क्या, सबको सावधान रहने की आवश्यकता रहती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दोनों की इच्छायें पूर्ण हुईं। केशिनी के पुत्र का नाम असमंज हुआ। बड़ा होकर असमंज बहुत दुष्ट निकला। वह प्रजा को भारी कष्ट पहुँचाने लगा तो महाराज ने असमंज को नगर से बाहर निकाल दिया। असमंज अपना एक पुत्र वहाँ छोड़ गया। उसके पुत्र का नाम अंशुमान था।

जब अंशुमान बड़ा हो गया तो राजा ने अश्वमेध यज्ञ का आयोजन किया। उसने अश्व छोड़ा। उस अश्व की रक्षा के लिये अंशुमान को नियुक्त किया गया।

इन्द्र ने यज्ञ के अश्व का हरण कर लिया और इसको पाताल देश में महर्षि कपिल के आश्रम में छोड़ दिया। इन्द्र सगर की बढ़ रही शक्ति को क्षीण करना चाहता था। अश्व चुराते समय इन्द्र ने मायावी वेष बनाया हुआ था, जिससे उसके इस कार्य को कोई न जान सका।

अश्व के चोरी हो जाने को भारी अपशकुन माना गया और सगर ने अश्व की खोज करने के लिये अपने साठ हज़ार पुत्रों को नियुक्त किया। ये युवक जब अश्व ढूंढने निकले तो भूतल के प्राणियों को कष्ट पहुँचाने लगे। इससे पृथिवी पर बसे हुए सब प्राणी इनके अत्याचार से आर्तनाद करने लगे।

अश्व कहीं मिला नहीं। इस कार्य में कई वर्ष लग गये। भूमि पर अश्व को न पा उन्होंने रसातल में भी खोज की। अन्त में वे पाताल देश में पहुँचे।

सगर के पुत्रों ने यहाँ भी प्रजा को कष्ट पहुँचा-पहुँचाकर अश्व ढूंढना जारी रखा। वे एक-एक प्राणी को पकड़ते और उससे अश्व के विषय में पूछते थे। जब उत्तर असन्तोषजनक होता तो उसकी हत्या कर देते थे। उसकी धन-सम्पत्ति लूट लेते एवं स्त्री वर्ग को अपमानित करते थे। लोग ब्रह्माजी से शिकायत करने जाते तो ब्रह्माजी अपनी दूरदर्शिता से यह भविष्यवाणी कर देते कि इनका नाश अवश्यम्भावी है।

ज्यों-ज्यों यज्ञ में देर होती जाती थी, महाराज सगर और उसके पुत्रों का क्रोध बढ़ता जाता था। इससे प्रजा पर अत्याचार की मात्रा भी बढ़ती जाती थी। इस क्रुद्धावस्था में सगर के पुत्रों ने अश्व को महर्षि कपिल के आश्रम में स्वच्छन्द विचरते देखा। महर्षि अपनी योग साधना में लगे थे। उनको यह विदित भी न था कि उनकी अश्वशाला में कोई नवीन अश्व आया हुआ है।

सगर पुत्रों ने महर्षि को चोर समझा और उनका अपमान करने दौड़े। इस पर महर्षि को क्रोध चढ़ आया और उन्होंने शाप दे, सबको भस्म कर डाला। सगर के इन पुत्रों के भस्म हो जाने पर उनकी अस्थियों का ढेर लग गया।

अपने पुत्रों का समाचार न पा, सगर ने अपने पोते अंशुमान को भेजा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अंशुमान ढूंढता-ढूंढता कपिल आश्रम में अस्थियों का ढेर देख समझ गया। उसने महर्षि की चरण वन्दना की और विनम्र वाणी से उन अस्थियों का रहस्य पूछा। कपिल मुनि ने जब उसे बताया तो उसने अपना परिचय देकर अस्थियों को ले जाने की स्वीकृति माँगी। अश्व भी माँगा। अश्व के विषय में मुनि ने अपनी अनभिज्ञता प्रकट की। परन्तु अश्व तो वहाँ था। इस पर मुनिश्वर को अपने किये पर पश्चात्ताप लगा। उन्होंने उनकी सद्गति का उपाय बता दिया। मुनि जी का कथन था कि स्वर्ग लोक में रहने वाली गंगा को आर्यावर्त लाया जाये और उस गंगा में इनकी अस्थियों का विसर्जन किया जाये, तब इनकी आत्मायें मुक्त हो सकेंगी। इन युवकों ने पृथिवी भर के जीवों पर घोर अत्याचार किये हैं। अतः इन सबका प्रायश्चित्त ही यह है कि जन-जन का कल्याण करने वाली गंगा को उनके हित साधन के लिये वहाँ ले जाया जाये।

अंशुमान अश्व लाया और यज्ञ सम्पूर्ण हुआ। अब महाराज सगर को अपने पुत्रों की आत्माओं के कल्याण की चिन्ता लगने लगी। गंगाजी को हिमालय से लाने का कोई उपाय नहीं मिला। अनेक वर्ष तक सगर ने राज्य किया और अपना मनोरथ सिद्ध करने का उपाय किये बिना स्वर्ग सिधार गया।

सगर के बाद अंशुमान ने भी अपने पूर्वजों की आत्माओं को शान्ति दिलाने के लिये घोर तपस्या की। अंशुमान के बाद महाराज दिलीप भी इसी चिन्ता में ग्रस्त तपस्या करते रहे। गंगाजी को भारत भूमि पर लाने में कठोर बाधायें थीं। बहुत ऊँचाई पर से पर्वत काटकर ही उसके प्रवाह को बदला जा सकता था। इस भौतिक कठिनाई के अतिरिक्त स्वर्ग लोक के ब्रह्मा, देव लोक के इन्द्र एवं हिमालय देश के राजाओं की अनुमति के बिना यह कार्य सम्भव नहीं था। इसके लिये निरन्तर यत्न करने पर भी कार्य सम्पन्न नहीं हो सका। दिलीप भी जीवन भर के निरन्तर प्रयत्न के पश्चात् सफल नहीं हुआ।

दिलीप का पुत्र भगीरथ था। भगीरथ ने अपनी तपस्या से, पहले ब्रह्मा जी (स्वर्ग के मुख्य पुरुष) को प्रसन्न किया। तत्पश्चात् इन्द्र को राजी किया और फिर हिमाचल के राजा की स्वीकृति ली। इस सब कार्य में शिव (कैलाश-पति) की सहायता को बहुत श्रेय प्राप्त है। इस सबकी कृपा से भगीरथ हिमालय को काटकर, गंगा की उस धारा को, जो स्वर्ग में बहती थी, भारत में ले आया। इसी कारण गंगा का नाम भागीरथी पड़ गया है।

यह कहा जाता है कि गंगा की यह धारा स्वर्ग से कैलाश पर्वत पर आ मानसरोवर में समा गयी। वहाँ से वह भूम्यान्तर्गत मार्ग से बिन्दु सरोवर में आ गयी और फिर यहाँ से गंगा की तीन धारायें पूर्व की ओर गयीं। तीन धारायें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पश्चिम की ओर गयीं और सातवीं धारा महाराज भगीरथ के रथ के साथ-साथ भारत भूमि में प्रवाहित होने के लिये चली आई। यह घटना गंगावतरण के नाम से प्रसिद्ध है।

एक अन्य गंगा भी है। उसकी कथा दूसरी है। हिमालय महाराज की दो कन्यायें थीं। एक का नाम गंगा था और दूसरी का नाम उमा। दोनों अति शुद्ध एवं पवित्र विचार की लड़कियाँ थीं। गंगा बड़ी हुई तो कैलाशपति श्री शंकर से प्रेम करने लगी, परन्तु शंकर तो देवता सृष्टि के जीव थे। अतः उनसे विवाह-स्वीकृति का एक ही उपाय था। वह यह कि वह भी देवलोक की नागरिकता प्राप्त कर ले। इसलिये वह तपस्या करने लगी। सुरराज इन्द्र की कृपा से वह देव लोक में निवास तो पा गयी, परन्तु महादेव जी से उसका साक्षात्कार नहीं हो सका।

समय पाकर उमा सज्ञान हुई तो वह भी शंकरजी के प्रेम में ग्रसित हो गयी। उमा को शंकर की प्राप्ति का एक दूसरा उपाय सूझा। वह कैलाशपति के चरणों में बैठ तपस्या करने लगी।

उमा सफल हुई। शंकरजी ने एक दिन समाधि से उठ अपने चारों ओर दृष्टि दौड़ाई तो उमा को ध्यान-मग्न वहाँ बैठे देख उस पर मोहित हो गये। पीछे जब उनको यह मालूम हुआ कि वह भी उनके प्रेमपाश में बँधी, वहाँ उनकी प्राप्ति के अर्थ तपस्या कर रही है, तो फिर विवाह का यत्न किया गया और विवाह हो गया। उमा का दूसरा नाम पार्वती था।

शिव और पार्वती परस्पर बहुत प्रेम से रहने लगे। इस समय देवताओं एवं दानवों में भारी प्रतिस्पर्धा चल रही थी। देवताओं के पास शस्त्रास्त्र थे, सेना थी, परन्तु उस सेना का संचालन करने तथा शस्त्रास्त्र का प्रयोग करने वाला कोई सेनानायक नहीं था। शिव था जो अब पार्वती के मोहजाल में फँस वासना-मय हो रहा था। विष्णु अकेला युद्ध करने में बहुत योग्य था, परन्तु सेना का संचालन उसके वश की बात नहीं थी। इन्द्र तो योग्य शासक ही था। अन्य देवता नेता बनने के योग्य नहीं थे।

देवताओं ने विचार किया कि यदि शिव का कोई पुत्र हो तो वह एक योग्य सेनानायक हो सकता है। परन्तु शिव की पार्वती से सन्तान प्रायः असम्भव प्रतीत होती थी। पार्वती श्री शंकर से गर्भ धारण करने में अयोग्य मानी गयीं। प्रथम तो गर्भ ठहरता ही नहीं था। यदि गर्भ ठहर भी जाता तो शिव जैसे ओजस्वी देवता के वीर्य से स्थापित गर्भ वह धारण कर सकेगी क्या? इन प्रश्नों पर विचार करने के पश्चात् यह निश्चय किया गया कि शिवजी के वीर्य से किसी अन्य योग्य कन्या में गर्भ स्थापित कराया जाये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एतदर्थ योजना बनीं। शंकर के वीर्य को ग्रहण करने के लिये उमा की बड़ी बहिन गंगा का निर्वाचन किया गया। उसको इस कार्य के लिये तैयार किया गया और फिर शंकर के वीर्य को अग्नि, वायु एवं पृथिवी की सहायता से कैलाश पर्वत से ले जाकर गंगा देवी को धारण करने के लिये अर्पित किया गया।

गंगा शंकर से प्रेम करती थी, अतः उसने निःसंकोच भाव से वीर्य को धारण किया। इस बात को जानकर उमा को रोष नहीं हुआ। देवताओं का विचार था कि गंगा अपनी तपस्या तथा देवलोक में चिरकाल रहने से गर्भ-पालन में योग्य होगी, परन्तु यह भ्रम निकला। गंगा को भी अनुभव हुआ कि समय से पूर्व ही उसके गर्भ-स्राव हो जायेगा। इससे वह चिन्ता करने लगी। देवता उसको हिमालय के एक शीतल स्थान पर ले गये और वह गर्भ कुछ और काल के लिये बच गया, परन्तु समय से पूर्व ही बालक का जन्म हो गया। अतः काल से पूर्व ही जन्म होने से बालक का नाम स्कन्द पड़ा। उस बालक की रक्षा तथा पालन के लिये छः कृत्तिकाओं को नियुक्त कर दिया गया। कृत्तिकाओं द्वारा पालन किये जाने के कारण यह बालक कार्तिकेय तथा षडानन कहलाया।

कार्तिकेय बड़ा हुआ तो सब देवताओं ने उसको देव सेना का सेनापति नियुक्त किया। कार्तिकेय के जीवन काल तक असुर लोग सिर नहीं उठा सके। कई बार संग्राम हुआ और विजय देवताओं की हुई।

गंगा की एक तीसरी कहानी भी है। उसका सम्बन्ध इतिहास से नहीं। इस कारण हमने उसको इस टिप्पणी में देना उचित समझा है। यह कथा है नक्षत्र-मण्डल की और इसका आरम्भ वेद मन्त्र से होता है।

यजुर्वेद के ३०वें अध्याय के १८वें मन्त्र में यह पद आता है—

द्वापरायाधिकल्पिनमास्कन्दाय सभास्थाणुं।

इसका अर्थ इसके पूर्व के पद को पढ़ने से पता चल जायेगा। उसमें लिखा है, 'कृतायादिनवदर्शं त्रेतायै कल्पिनं' अर्थात् भूत, भविष्य तथा वर्तमान तीनों कालों को देखने के लिये सामर्थ्यवान व कल्पनाशील, दूरदर्शी विज्ञ पुरुषों को नियुक्त करो।

अब आगे के वाक्य का अर्थ समझ आ जायेगा। (द्वापराया) इन दो प्रकार के व्यक्तियों से भी अधिक (कल्पिनमास्कन्दाय) कल्पनाशील चतुर मस्तिष्क को (सभास्थाणुं) सभा में प्रधान बनायें।

आस्कन्दाय और सभास्थाणुम् शब्द का स्रोत नक्षत्रों से लिया गया है। शतपथ ब्राह्मण में नक्षत्र मण्डल की एक घटना का वर्णन है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृत्तिका स्वादधीत। एता ह वै प्राच्ये दिशो न च्यवन्ते। सर्वाणि ह वा अन्यानि नक्षत्राणि प्राच्यै दिशश्च्य वन्ते।

कृत्तिका (ये छः नक्षत्र हैं) पूर्व दिशा से च्युत नहीं होते और सब ग्रह च्युत हो जाते हैं।

अर्थात्—आकाश गंगा एक काल में सूर्योदय के समय क्षितिज से छूती थी और हिमालय की चोटी से निकलती दिखाई देती थी तथा कृत्तिका नक्षत्र भी उसी स्थान पर थे। वह समय अग्न्याधान का होता है और उस समय अग्निहोत्र करने से कामनाएँ सिद्ध होती हैं।

शतपथब्राह्मण और वेद में नक्षत्र-मण्डल की घटना का वर्णन है। यह है तीसरी आकाश गंगा की कथा। इस कथा का पूर्व की ऐतिहासिक घटनाओं से किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं। रूपक अलंकार बाँधते हुए साहित्यिक ग्रंथों में तीनों को मिश्रित कर दिया गया है। यहाँ तीनों को पृथक्-पृथक् करने का प्रयास किया जा रहा है।

कुछ लोग ऐसा कहते हैं कि व्यक्ति को पौराणिक गाथाओं के अर्थ लगाकर प्राचीन परम्पराओं को नष्ट-भ्रष्ट नहीं करना चाहिये। परन्तु यह एक अति कठिन बात है। एक लेखक अपने मन में स्फुरित बात न लिखे, यह असम्भव है। यह सम्भव है कि किसी के विश्लेषण में भूल हो, परन्तु इसका हल तो यही है कि अन्य विद्वान अपना विश्लेषण प्रस्तुत करें। जो विश्लेषण युक्तियुक्त हो वह स्वीकार किया जाये।

उक्त ऐतिहासिक कथा में ध्यान देने योग्य बात यह है कि राष्ट्र, राज्य और धर्म की स्थापना के लिये जहाँ धन और जन की आवश्यकता रहती है, वहाँ एक नेता, सेनापति अथवा राजा की भी आवश्यकता रहती है। देवताओं अर्थात् बुद्धिशील कर्मठ मानवों की परम्परा आज भी चल रही है। अन्तर केवल यह हो गया है कि वे देवता अब तिब्बत के पठार को छोड़ सारे संसार में फैल गये हैं।

जहाँ तक संसार को अधर्माचरण तथा अत्याचार से बचाने की दूरकालीन योजनाओं का सबन्ध है, आज भी अनेक विद्वान् बैठे विचार करते हैं और उसके लिये यत्नशील हैं। यह कहा जा सकता है कि अधिकांश लोग धर्म के विषय में जानते नहीं; परन्तु प्रश्न यहाँ यह है कि क्या अनेक ऐसी घटनायें लिखी नहीं मिलतीं, जहाँ इन्द्र, विष्णु इत्यादि देवताओं से भी अधर्म कार्य हुए थे। इन्द्र का गौतम की पत्नी से सम्भोग, विष्णु का मोहिनी बन दानवों को ठगना, कुछ उदाहरण हैं। इस पर भी यह कहा जा सकता है कि भविष्य की कल्पना कर भावी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्रेता युग का वृत्तान्त

विश्वामित्र-वशिष्ठ संघर्ष

दोनों महर्षियों का संघर्ष ब्राह्मणत्व एवं क्षत्रियत्व का संघर्ष माना जाता है। प्राचीन काल में कुश नाम के एक राजा हो गये हैं। वे प्रजापति की सन्तानों में से थे। कुश के पश्चात् उसका पुत्र कुशनाभ राजा बना। कुशनाभ के पुत्र थे गाधि एवं गाधि के पुत्र विश्वामित्र हुए।

एक समय विश्वामित्र एक अक्षोहिणी सेना एकत्रित कर पृथिवी पर विचरने लगे। वे अनेकानेक नगरों, राष्ट्रों, नदियों, बड़े-बड़े पर्वतों और आश्रमों में क्रमशः विचरते हुए महर्षि वशिष्ठ के आश्रम पर आ पहुँचे। यह आश्रम नाना प्रकार के फूलों, लताओं और वृक्षों से शोभायमान था। नाना प्रकार के मृग (वन्य पशु) वहाँ सब ओर फैले हुए थे तथा सिद्ध चारण उस आश्रम में वास करते थे। इस आश्रम में देवता, दानव, गन्धर्व, किन्नर आकर इस आश्रम की शोभा और ख्याति को बढ़ाते रहते थे। तपस्या से सिद्ध हुए, अग्नि के समान तेजस्वी महात्मा तथा ब्रह्मा के समान महामहिम महात्मा (श्रीमद् ब्रह्मकल्पै महात्मभिः) भी उस आश्रम में आते रहते थे। इन सबके कारण वशिष्ठजी का आश्रम दूसरे ब्रह्म लोक के समान जान पड़ता था।

विश्वामित्रजी का उस आश्रम में यथोचित सत्कार हुआ। विश्वामित्र भी वशिष्ठजी के दर्शन कर बहुत प्रसन्न हुए और विनयपूर्वक उन्होंने उनके चरणों में नमस्कार किया।

महात्मा वशिष्ठ ने उनका समुचित स्वागत किया, उन्हें बैठने के लिये आसन दिया। इसके उपरान्त मुनि ने महाराज विश्वामित्र के सम्मुख विधिपूर्वक

संसार को किसी आने वाले भय से बचाने की योजना बनाकर उसे कार्यान्वित करना एक दैवी गुण है।

पुराणों में इस प्रकार योजनाबद्ध संसार के हित की कल्पना करने और उस योजनानुसार देव लोक की सब शक्तियों को लगा देना देवताओं का एक विशेष कर्त्तव्य लिखा मिलता है। समय-समय पर देवता लोक-धर्म की जय कराने के लिये यत्न करते रहे हैं।

यह गंगा की कथा सतयुग से चलकर आज भी प्रचलित है, तो इस कारण नहीं कि गंगा का जल शीतल, मधुर और औषधियों से युक्त है। प्रत्युत इसलिये कि इसके पीछे मानव इतिहास की वह भावना छिपी है, जो मानव संकल्प, वृढ़ता और सद्-उद्देश्य को प्रकट करती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फल-फूल का उपहार प्रस्तुत किया। इस प्रकार दोनों महाजनों में शिष्टाचार की बातें होने लगीं।

वशिष्ठजी ने विश्वामित्र से उसके राज्य, सेना, कोष, मित्र वर्ग एवं पुत्र-पौत्र का कुशल समाचार पूछा।

अन्त में जब विश्वामित्र जाने लगा तो वशिष्ठजी ने महाराज तथा उसकी पूर्ण सेना का आतिथ्य करना चाहा। विश्वामित्र संकोचवश इसको स्वीकार नहीं करता था। वह समझता था कि यह तपस्वी भला राज्य की इतनी बड़ी सेना का क्या आतिथ्य सत्कार करेगा!

वशिष्ठजी जान गये कि विश्वामित्र के मन में क्या संकोच है। अतः उन्होंने अपनी सामर्थ्य का दिग्दर्शन करने के लिये बार-बार आग्रह किया और अन्त में विश्वामित्र मान गये।

मुनि वशिष्ठ ने विश्वामित्र के सामने ही अपनी कामधेनु शबला को बुलाया और आज्ञा दे दी कि महाराज और उसकी पूर्ण सेना के भोजन का प्रबन्ध हो जाये। मुनि की आज्ञा पा शबला ने देखते-देखते सबकी इच्छानुसार सब सामग्री जुटा दी। ईख, मधु, लावा, पैरेय, श्रेष्ठ आसव, पानक, रस और नाना प्रकार के सुस्वादु भोज्य पदार्थ प्रस्तुत कर दिये।

पूर्ण सेना जब तृप्त हो गयी और इच्छानुसार स्वादिष्ट भोजन पा प्रसन्न हो गयी तो विश्वामित्र अन्तःपुर की रानियों सहित खा-पीकर तृप्ति अनुभव करते हुए उस 'शबला' के कौशल पर विस्मय करने लगे।

विदा होते समय विश्वामित्र ने वशिष्ठजी की बहुत प्रशंसा की और कहा, "महामुने! यह आपकी कामधेनु शबला तो राजा-महाराजाओं की शाला में रहने योग्य है। इसे आप मुझको दे दीजिये। इसके बदले में आपको एक लाख सुन्दर हृष्ट-पुष्ट भरपूर दुग्ध देने वाली गउएँ दे दूंगा।"

वशिष्ठजी उसकी इस बात को नहीं माने और बोले, "एक लाख क्या, सौ करोड़ गउएँ लेकर भी इसको नहीं दे सकता। सोने-चाँदी के ढेर भी इसका मूल्य नहीं चुका सकते। राजन्! जैसे मनस्वी पुरुष अपनी अक्षय कीर्ति किसी को दे नहीं सकते, उसी प्रकार यह मेरी शबला मेरे साथ सम्बन्ध रखने वाली है। यह मुझसे पृथक् होकर रह नहीं सकेगी। मेरा हव्य-कव्य और जीवन-निर्वाह इसी पर निर्भर है।"

इससे विश्वामित्र को क्रोध आ गया। राजा होते हुए वह अपनी इच्छा को अपूर्ण देखने का स्वभाव नहीं रखते थे। इस पर भी क्रोध को भीतर छुपाते हुए उसने स्वर्ण, रजत, रथ, घोड़े, बहुत-कुछ देने का प्रस्ताव किया, परन्तु वशिष्ठजी नहीं माने।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब वशिष्ठजी वह कामधेनु शबला देने को तैयार नहीं हुए तो विश्वामित्र बलपूर्वक उसको पकड़कर ले गये, परन्तु वह छूटकर भागी और वशिष्ठजी के सामने अति करुणाजन्य अवस्था में आ खड़ी हुई।

शबला ने पूछा, "महर्षि ! क्या आपने मेरा त्याग कर दिया है ?"

"नहीं; यह महाराज विश्वामित्र अपने बल से मतवाला हो तुमको छीन कर ले जा रहा है। यह राजा है, पृथिवीपति है, धन-धान्य-सम्पन्न है, सेना-नायक है।"

शबला ने वशिष्ठ से कहा, "महामुने ! क्षत्रिय बल कोई बल नहीं। ब्राह्मण क्षत्रिय से अधिक बलशाली होता है। महर्षि, आपका बल अप्रमेय है। महा-पराक्रमी विश्वामित्र आपसे अधिक बलवान नहीं। आपका तेज दुर्धर्ष है। आप मुझको आज्ञा दीजिये। मैं इस दुरात्मा राजा के अभिमान को चूर कर दूंगी।"

महामुनि वशिष्ठजी के कहने पर शबला ने एक महान् सेना की सृष्टि की।

पह्लव जाति के योद्धा वशिष्ठजी की रक्षा के लिये आ गये। अब दोनों सेनाओं में घोर युद्ध हो गया। विश्वामित्र एक उच्च कोटि का योद्धा था और अनेक प्रकार के अस्त्र-शस्त्रों का प्रयोग जानता था। उसने उन सब पह्लवों का संहार कर दिया। इस पर वशिष्ठ की सहायता के लिये यवन शक आ उपस्थित हुए। उन पर भी विश्वामित्र ने अपने दिव्य शस्त्रों से प्रहार किया। यवन शक भी बेचारे उन अस्त्र-शस्त्रों की चोटों को सह न सके। इस पर शस्त्रधारी बर्बर आ गये और पुनः युद्ध आरम्भ हो गया। यवन, शक, बर्बर, म्लेच्छ, हारीत इत्यादि अनेक जातियों के वीर युद्ध के लिये आये और विश्वामित्र की पूर्ण सेना समाप्त हो गयी।

इस पर विश्वामित्र के पुत्रों के रोष का पारावार न रहा और वे अपने शस्त्रास्त्र ले मुनि पर कूद पड़े। महर्षि वशिष्ठ ने उनकी ओर देखा तो उस क्रोधाग्नि को वे सहन नहीं कर सके तथा भस्म हो गये।

अपनी सेना का विनाश और पुत्रों की मृत्यु देख विश्वामित्र अति चिन्तित मन अपने एकमात्र बचे पुत्र को सब राज-पाट देकर वन में तपस्या करने चले गये। हिमालय पार कर वे कैलाशपति शिव से शस्त्रास्त्र लेने के लिये तपस्या करने लगे। जब शिवजी ने पूछा कि वह क्या चाहता है तो विश्वामित्र ने उनसे वे सब शस्त्रास्त्र माँगे जो देवताओं, दानवों, महर्षियों, गन्धर्वों, यक्षों तथा राक्षसों के पास थे। महादेव ने वे शस्त्रास्त्र उनको दे दिये। इन अस्त्र-शस्त्रों को पाकर विश्वामित्र ने अभिमान से युक्त होकर पुनः मुनि के आश्रम पर धावा बोल दिया। उन शस्त्रास्त्रों के तेज से पूर्ण तपोवन दग्ध होने लगा। आश्रम वीरान हो गया। वहाँ के प्राणी या तो भाग गये अथवा जलकर भस्म हो गये।

वशिष्ठजी अपना ब्रह्म दण्ड (ब्राह्मणत्व) लेकर सामने आये तो सब शस्त्रास्त्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ठण्डे पड़ने लगे। सब अस्त्र-शस्त्र इस ब्रह्मदण्ड के सामने निरर्थक रह गये। विश्वामित्र का अन्तिम प्रहार था ब्रह्मास्त्र, परन्तु वह भी ब्रह्मदण्ड के सामने ठण्डा हो गया।

विश्वामित्र समझ गया कि अस्त्र-शस्त्र एवं क्षत्रिय बल ब्रह्मबल के सामने निस्तेज है। इससे वह वशिष्ठ की भाँति महर्षि बनने के लिये तपस्या करने लगा।

कई जन्म-जन्मान्तर की तपस्या के अनन्तर वह उस ब्रह्म विद्या को पा सका, जो इस पृथिवी पर सर्वश्रेष्ठ है।[1]

---

१. यह कथा अधिकांश काल्पनिक कही जा सकती है, परन्तु यह एक कथा है जो पूर्ण संसार में आदि काल से चलती आ रही है। इसमें दो बातें आजकल के मस्तिष्क में नहीं आतीं। एक शबला कामधेनु और दूसरे ब्रह्मास्त्र इत्यादि को ठण्डा करने वाला ब्रह्मदण्ड।

वास्तव में इसमें किसी प्रकार का वैचित्र्य नहीं है। सम्भवतः शबला कोई गाय नहीं थी। यह मुनि वशिष्ठजी के 'कार्यालय' का अति चतुर अध्यक्ष हो सकता है। इसकी कार्य-कुशलता अथवा साधन जुटाने की क्षमता देखकर एक राजा के मन में लोभ आ गया। वह यह समझने लगा कि राजा होने से संसार की सर्वश्रेष्ठ वस्तुओं को प्राप्त करना उसका अधिकार है। यह लगभग ऐसा ही है, जैसे कोई परमाणु बम बनाने वाला वैज्ञानिक अथवा इञ्जीनियर इंगलैंड अथवा अमेरिका में से पकड़कर रूस अपने देश में ले जाये। वह वैज्ञानिक दूसरे देश में जाना न चाहे अथवा वहाँ जाकर कार्य न करना चाहे तो जो कुछ हो सकता है, वही हुआ है। अन्तर केवल यह है कि विश्वामित्र का विरोध करने के लिये वशिष्ठजी ने पहले तो अधिकारी को अपने साधनों द्वारा युद्ध करने की स्वीकृति दी, पीछे स्वयं ब्रह्मदण्ड लेकर निकल आये।

दूसरी बात यह लिखी है कि एक जाति अथवा दूसरी जाति के सैनिक वशिष्ठजी के आश्रम की रक्षा करने आये। यह वशिष्ठजी के प्रभाव और लोकप्रियता का सूचक ही मानना चाहिए। भिन्न-भिन्न जातियों के स्वयंसेवक (Volunteers) स्वेच्छा से, अपने राज्य को युद्ध में घसीटे बिना, आश्रम की रक्षा के लिए आए होंगे।

विश्वामित्र को शिव की सहायता मिली। उसका भी उदाहरण आज संसार में उपस्थित है। अमेरिका ने शस्त्रास्त्र पाकिस्तान को दिये हैं। यदि वे शस्त्रास्त्र पाकिस्तान अपनी शत्रुता निकालने के लिए किसी पड़ोसी निर्दोष राज्य पर प्रयोग करे, तो वैसी बात हो जायेगी जैसी विश्वामित्र के शिव से शस्त्रास्त्र लेकर वशिष्ठ के आश्रम पर चलाने से हुई थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राक्षसों की उत्पत्ति और पराजय

इस युद्ध की पृष्ठ-भूमि समझने के लिये एक-दो शब्दों के अर्थ जान लेने चाहियें। यों तो इस बात का उल्लेख हम इस पुस्तक में पहले भी स्थान-स्थान पर कर चुके हैं। देवता, दानव, दैत्य, राक्षस, गन्धर्व, मानव, यक्ष शब्द भारतीय परम्परा में गुणवाचक नहीं हैं। ये जातिवाचक हैं। कुछ जातियाँ देश-विदेश में रहने से एक नाम से सम्बोधित हैं एवं कुछ वंश-विशेष से सम्बन्धित होने से विशेष नाम वाली हो गयी हैं। इनमें अच्छे-बुरे लोग साथ-साथ रहते हुए उत्पन्न होते हैं तथा लड़ते-झगड़ते पाये जाते हैं। कश्यप का पुत्र हिरण्यकशिपु था और हिरण्यकशिपु का पुत्र प्रह्लाद हो गया। इसी प्रकार का एक उदाहरण सूर्यवंशियों में मिलता है।

रघोस्त्र पुत्रस्तेजस्वी प्रबृद्धः पुरुषादकः। कल्माषपादोऽस्मभवतः।

अर्थात्—रघु का पुत्र प्रबृद्ध हुआ, जिसका दूसरा नाम कल्माषपाद था। यह असुर हो गया। इसी प्रकार रावण का भाई विभीषण इत्यादि। यह ठीक है कि यदि किसी देश अथवा जाति का राजा ही दुष्ट स्वभाव वाला हो जाये तो उसका प्रभाव पूर्ण प्रजा पर पड़ता है। राज्य-शक्ति के बल से राजा अपने स्वभाव के लोग अपने समीप एकत्रित कर लेता है। तब वहाँ उन दुष्टों की परम्परा चल पड़ती है। अतः यह आवश्यक हो जाता है कि उस राजा को निःशेष कर दिया जाये, तब दुष्ट प्रवृत्ति के लोग वहाँ से भाग जाते हैं।

इस कथा के लिखने का वास्तविक उद्देश्य यह है कि क्षत्रिय लोग विद्वानों से द्वेष करके सदा लज़्जित होते हैं: ब्रह्मदण्ड कोई बाँस का लट्ठ नहीं था। यह ज्ञान-विज्ञान का तेज पुंज था जो वशिष्ठ ने पूर्ण जीवन भर की तपस्या से उपलब्ध किया था।

साथ ही स्मरणीय बात यह है कि जैसे काम, क्रोध, मोह इत्यादि बुद्धि मलिन करते हैं, वैसे ही लोभ भी बुद्धि भ्रष्ट करने की क्षमता रखता है। ये सब विकार बुद्धि मलिन करने की क्षमता रखते हैं, परन्तु इस मलिन बुद्धि को अपने दुष्परिणाम उत्पन्न करने का अवसर तभी मिलता है, जब मलिन-बुद्धि व्यक्ति के पास धन बल आ जाता है। बल से मलिन बुद्धि में अहंकार पैदा होता है और अहंकार से विनाश निश्चित रूप से होता है।

अतः सुरक्षित नीति यही है कि यथासम्भव, विकार-युक्त मन वाले प्राणी को बलयुक्त होने न दिया जाये। इस नीति को जान लेने से इन्द्र की नीति समझ में आने लगती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दुष्ट प्रवृत्ति के लोगों को असुर नाम से भारतीय परम्परा में स्मरण कियां जाता है और श्रेष्ठ स्वभाव वालों को दैवी स्वभाव वाले। इसका यह अर्थ नहीं कि देवता की सन्तान होने से कोई दैवी स्वभाव वाला हो जायेगा। देवता, जैसा कि हम पहले लिख चुके हैं, मानव ही थे। वे तिब्बत एवं हिमालय के पूर्व के उच्च पठारों पर प्लावन के पश्चात् रहते थे। प्लावन-पूर्व तो वे प्रायः सम्पूर्ण पृथिवी पर छाये हुए थे।

राक्षस जाति भी ब्रह्मा से उत्पन्न किये हुए कुछ एक व्यक्तियों की सन्तान थीं। ब्रह्माजी ने इनको उत्पन्न किया तो तामसी और राजसी प्रवृत्ति रखने वाले ये व्यक्ति ब्रह्मा से पूछने लगे कि वे क्या करें? ब्रह्मा ने उनको दक्षिण समुद्र में जल से बाहर आ रहे द्वीपों में जाकर रहने की स्वीकृति दे दी। इनको उन द्वीपों की रक्षा का भार सौंपा तो ये राक्षस के नाम से प्रसिद्ध हो गये। यह तो प्लावन-पूर्व की कथा है। ऐसा प्रतीत होता है कि इनकी सन्तान प्लावन के बाद भी अपने को राक्षस मानती रही।

त्रेता युग में इनका एक राजा हेति नाम से प्रसिद्ध था। वह अप्रमेय आत्मबल से सम्पन्न और बुद्धिमान था। काल की बहिन भया से इसका विवाह हुआ तो इनका एक पुत्र उत्पन्न हुआ। इसका नाम विद्युत्केश रखा गया। विद्युत्केश का विवाह सन्ध्या की पुत्री सालकटंकटा के साथ हो गया। जब इसके गर्भ ठहर गया तो यह पुत्र के पालन-पोषण के झंझट से छूटने के लिये पुत्र को जन्म देकर मन्द्राचल पर्वत पर छोड़ आयी और स्वयं वह पुनः प्रेमपूर्वक अपने पति से रमण करने लगी।

सालकटंकटा का शिशु पुत्र भूख से व्याकुल हो रोने लगा। अकस्मात् उस समय भगवान शिव पार्वती के साथ अपने विमान में बैठे वहाँ से गुजरे तो उनकी दृष्टि इस नवजात शिशु पर पड़ गयी। पार्वती को उस पर दया आयी तो उन्होंने विमान उतारा और बालक को उठाकर अपने यहाँ ले गयी। वहाँ इसके पालन-पोषण का प्रबन्ध कर दिया। इस बालक का नाम सुकेश रखा गया। पार्वती सुकेश से बहुत स्नेह रखती थी और उनके आग्रह पर महादेव ने इस बालक को युवा होने पर न केवल अभयदान दिया, अपितु एक विमान भी दिया, जिस पर वह सवारी कर सके।

सुकेश को महादेव का प्रिय जान एक गन्धर्व स्त्री ग्रामणी ने अपनी कन्या देववती का उससे विवाह कर दिया। इस दम्पति से तीन पुत्र उत्पन्न हुए। इनके नाम थे माल्यवान, सुमाली एवं माली। ये राक्षस और गन्धर्व रक्त से उत्पन्न बालक एक ओर तो अत्यन्त तेजस्वी और विद्वान हुए तथा दूसरी ओर अत्यन्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भयंकर प्रवृत्ति वाले हुए।

तीनों बालकों ने घोर तपस्या की। इस तपस्या का फल इनको यह मिला कि ये परस्पर अति प्रेम करने वाले और अत्यन्त बल के स्वामी हो गये। जब इनको विश्वास हो गया कि वे अति बलवान हो गये हैं तो वे निर्भय हो दूसरों को कष्ट दे-देकर अपना जीवन व्यतीत करने लगे। वे देवताओं और असुरों को एक समान तंग करने लगे। सब लोग इन राक्षसों से दुःखी हो त्राहि-त्राहि करने लगे।

इन तीनों भाइयों ने अपने लिये, विश्वकर्मा को कहकर लंका में त्रिकूट पर्वत पर तीन बहुत सुन्दर भवन और एक नगरी बनवायी और वहाँ सुखपूर्वक रहने लगे। यह नगरी अति सुदृढ़ एवं उच्च पर्वत के शिविर पर स्वर्ण की बनाई गयी थी। ये राक्षसराज अपने साथियों को लेकर उस नगरी में रहने लगे।

तीनों भाइयों ने नर्मदा नाम की गन्धर्वी की तीन लड़कियों से विवाह कर लिया। माल्यवान की स्त्री का नाम सुन्दरी था। इसके सात पुत्र उत्पन्न हुए। सुमाली की पत्नी का नाम केतुमती था। इसके दस पुत्र एवं चार कन्यायें उत्पन्न हुईं। तीसरे भाई माली की पत्नी का नाम वसुदा था। इसके चार पुत्र हुए।

तीनों भाई अपनी इच्छा को धर्म का नाम देते थे और प्रजागणों को अपनी सुख-सामग्री समझते थे। जब पीड़न सीमा से बढ़ गया तो प्रजा महादेवजी के पास गयी और सुमाली इत्यादि से रक्षा के लिये प्रार्थना करने लगी।

महादेव ने उनकी बात सुनी, परन्तु विवशता बताते हुए कहा कि इन राक्षसों का पिता पार्वती का स्नेह-पात्र है, इस कारण वह हस्तक्षेप नहीं करेगा। अतः वे लोग विष्णु के पास जायें। वही उनकी सहायता कर सकता है।

निराश हो वे विष्णु के पास पहुँचे। विष्णु ने उनको सहायता का आश्वासन दिया। माल्यवान इत्यादि थे तो गन्धर्व माँ के पुत्र, परन्तु उनमें आसुरी आचार-विचार अधिक मात्रा में था और फिर तपस्या से बल प्राप्त कर अभिमान में वे कुछ ऐसा मानने लगे थे—

अहं विष्णुरहं रुद्रो ब्रह्माहं देवराडहम्।
अहं यमश्च वरुणश्चन्द्रोऽहं रविरप्यहम्॥

वा० रामा० उत्तर० ६-६

अर्थात्—मैं विष्णु हूँ, मैं रुद्र हूँ, मैं ही ब्रह्मा हूँ तथा मैं ही देवराज इन्द्र हूँ। यमराज, वरुण, चन्द्र और सूर्य मैं हूँ। इत्यादि।

प्रजा की सब बात सुन विष्णु ने कहा—

सुकेशं राक्षसं जाने ईशानवरदर्पितम्।
तांश्चास्य तनयाञ्जाने येषां ज्येष्ठः स माल्यवान्॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तानहं समतिक्रान्तमर्यादान् राक्षसाधमान्।
निहनिष्यामि संक्रुद्धः सुरा भवत विज्वराः॥

वा० रामा० उत्तर० ६–२०, २१

मैं सुकेश और उसके पुत्र माल्यवान इत्यादि के विषय में जानता हूँ। वे धर्म की सीमा का उल्लंघन कर रहे हैं। इसलिये तुम निश्चिन्त होकर लौट जाओ, मैं उनका नाश करूँगा।

दूसरी ओर माल्यवान इत्यादि को भी पता चल गया कि विष्णु ने उनकी प्रजा को उनके मारने का वचन दे दिया है। अतः उन्होंने विष्णु के उस ओर आने से पहले ही देव लोक पर आक्रमण कर दिया।

जब उनके आक्रमण की बात विष्णु ने सुनी तो वह भी शंख, चक्र, गदा, धनुष और खड्ग आदि उत्तम आयुधों को धारण कर राक्षसों का संहार करने चल पड़ा। अपने गरुड़ विमान पर बैठे हुए विष्णु ने राक्षस सेना पर आक्रमण कर दिया।

घोर युद्ध हुआ। महान् संहार हुआ। एक ओर राक्षसों की विशाल सेना थी तथा दूसरी ओर विष्णु अकेला था। इस पर भी अपने आयुधों के बल पर विष्णु ने राक्षसों को अपार हानि पहुँचायी। राक्षसों के शवों के पर्वतों के समान ढेर लग गये। राक्षस लंका की ओर भाग खड़े हुए।

लंका पहुँचने से पहले सुमाली ने एक बार पुनः राक्षसों को उत्साहित कर विष्णु का मुकाबला करने के लिये खड़ा कर लिया। पुनः युद्ध हुआ। इस बार विष्णु के बाण से सुमाली के रथ का सारथी मर गया तो रथ के घोड़े बेकाबू होकर सुमाली को लेकर इधर-उधर भागने लगे।

इस युद्ध का अन्त हुआ सुदर्शन चक्र के प्रहार से। सुदर्शन चक्र से माली का सिर कटा तो माली के दोनों बड़े भाई लंका की ओर भाग खड़े हुए। एक बार पुनः माल्यवान और सुमाली ने लंका के बाहर विष्णु से मोर्चा लेने का यत्न किया, परन्तु सुदर्शन ने विजय का निर्णय कर दिया और राक्षस लंका छोड़ कर पाताल देश में चले गये।

रावण की समर यात्रा

ब्रह्मा के एक मानस पुत्र पुलस्त्य थे। इन महर्षि पुलस्त्य के विषय में कुछ अधिक ज्ञात नहीं। ये मुनि मेरु पर्वत के समीप ही राजर्षि तृणविन्दु के आश्रम में रहते थे। घटनावश राजर्षि तृणविन्दु की लड़की को पुलस्त्यजी से गर्भ रह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गया। अतः दोनों का विवाह कर दिया गया और पुत्र का नाम विश्रवा रखा गया। इस विश्रवा की सन्तान में से ही कुबेर नाम के राजा हुए। विश्रवा के वंश में होने से इनका नाम वैश्रवण भी था।

कुबेर धर्मात्मा, तपस्वी और बलशाली थे। अतः देवताओं ने उनको चौथा लोकपाल नियुक्त कर दिया। यम, इन्द्र और वरुण तीन लोकपाल पहले ही नियुक्त हो चुके थे। ये तीनों देव-लोक तथा भू-मण्डल की तीन ओर से रक्षा करते थे। कुबेर को दक्षिण समुद्र की रक्षा का भार सौंपा गया और लंका पुरी, जो असुरों के पाताल देश को भाग जाने से खाली पड़ी थी, कुबेर को दे दी गयी।

एक बार सुमाली अपनी पत्नी के साथ पुनः मानव-लोक में आकर भ्रमण कर रहा था कि उसको विमान पर आरूढ़ कुबेर देवलोक की ओर जाता हुआ दिखायी दिया। कुबेर अति धनवान एवं सुन्दर था। सुमाली को एक बात सूझी, जिससे वह अपने वंश की उन्नति कर सके। वह कुबेर को लंका से निकालने का आयोजन करने लगा।

उसने अपनी लड़की कैकसी को बताया कि वह उसके योग्य वर देख आया है। वह स्वयं वहाँ जाकर उसको वरण करे और उसकी सेवा में रहे। कैकसी को सुमाली ने बताया कि वह वर महर्षि पुलस्त्य की सन्तान में विश्रवा नाम का मुनीश्वर है।

कैकसी पिता की बात सुन-समझ अपने कुल के उद्धार के लिये विश्रवा के आश्रम में जा पहुँची।

सायंकाल जब मुनि विश्रवा अग्निहोत्र करने लगे तो कैकसी उनके सामने जा खड़ी हुई। वह विश्रवा मुनि के तेजस्वी मुख को देख काम से पीड़ित हो रही थी। मुनि ने उसे देखा और पूछा कि वह किस अर्थ वहाँ आयी है?

कैकसी ने बताया कि वह अपने माता-पिता की आज्ञा से उनकी सेवा में रहने आयी है। मुनीश्वर जान गये कि वह उनसे सन्तान की इच्छा करती है। उन्होंने उसे वर लिया और उससे तीन पुत्र तथा एक लड़की को जन्म दिया। पहला पुत्र रावण हुआ। दूसरा कुम्भकर्ण और तीसरा विभीषण था। लड़की शूर्पणखा के नाम से प्रसिद्ध हुई।

रावण ने माता कैकसी की प्रेरणा से घोर तपस्या की और बल-वैभव प्राप्त करने की योग्यता प्राप्त कर तथा ब्रह्मा से आशीर्वाद पाकर पहले अपने पिता विश्रवा के पास पहुँचा और फिर अपनी माता की प्रेरणा से पिता से लंकापुरी माँगने लगा। मुनि विश्रवा ने उसको समझाया कि यह लंकापुरी ही उसके विनाश का कारण होगी, परन्तु वह माना नहीं। वह सीधा लंका जा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहुँचा और अपने भाई कुबेर को डराने-धमकाने लगा।

विश्रवा ने कुबेर को समझाया कि भाई-भाई में युद्ध ठीक नहीं होगा। इस कारण वह लंका खाली कर दे और एक अन्य नगर बसाकर रहना आरम्भ कर दे। इस प्रकार रावण जो राक्षस और यक्ष वंशों के मिश्रण से उत्पन्न हुआ था, लंका में राज्य करने लगा।

रावण ने अपने सब राक्षस सम्बन्धियों को पाताल देश से बुला लिया तथा उनको लंका में बसाकर अपने राज्य का विस्तार करने लगा। कुछ ही वर्षों में राक्षस लंका से बढ़ते-बढ़ते भारत भूमि पर और फिर उत्तर की ओर विन्ध्याचल पर्वत तक फैल गये। उनका विचार पूर्ण आर्यावर्त देश को अपने अधीन करने का था।

आरम्भ से ही राक्षसों की परम्परा आर्यों और देवताओं की परम्परा से भिन्न थी। वे नास्तिक थे, लिंग जो शक्ति का प्रतीक माना जाता था, की पूजा करते थे और शक्ति को ही धर्म का स्रोत मानते थे।

मद्यपान, नरमांस-भक्षण और इन्द्रिय-सुख प्राप्त करना ही उनके जीवन का लक्ष्य बन गया था। इसी व्यवहार के कारण राक्षस, रावण के संरक्षण में असुर पद पा गये।

रावण का विवाह दैत्यराज यम की बेटी से हो गया। उसके एक पुत्र हुआ जिसका नाम मेघनाथ रखा गया। कुम्भकरण का विवाह बली की दोहित्री वज्रज्वाला से हुआ और विभीषण का विवाह शंलूष गन्धर्व की कन्या सरया से हो गया।

रावण और उसके साथी राक्षस अत्याचार और पापाचार करते हुए पूर्ण दक्षिण भारत पर छा गये और दण्डक वन में रहने वाले तपस्वियों एवं मुनियों को दुःख देने लगे। वे आर्य विचार के लोगों के यज्ञ-अनुष्ठानों को अपवित्र करने लगे।

कुबेर ने रावण को अपना भाई मान समझाने का यत्न किया। उसने रावण के पास एक दूत भेजा, परन्तु रावण अपने भाई की सम्मति सुन क्रुद्ध हो उठा और उसने दूत को मरवा डाला।

रावण भारत के दक्षिणी भाग से ही सन्तुष्ट नहीं हुआ। उत्तर में देवताओं का प्रभाव देख उसने देव लोक को भी विजय करने का निश्चय किया। इस समय तक रावण के पुत्र मेघनाथ ने भी तपस्या तथा कई यज्ञ कर अनेक प्रकार के शस्त्रास्त्रों का संग्रह कर लिया था और ब्रह्मादि देवताओं का आशीर्वाद प्राप्त कर लिया था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रावण ने देवलोक पर आक्रमण किया तो देवताओं ने उसका विरोध किया। घोर संग्राम छिड़ा। युद्ध का परिणाम यह हुआ कि इन्द्र मेघनाथ द्वारा बन्दी बना लिया गया। इस पर ब्रह्मा ने दोनों में सन्धि करा दी और इन्द्र को छुड़ाया। मेघनाथ का नाम इन्द्रजीत पड़ गया।

देवलोक पर विजय प्राप्त कर रावण ने समझा कि देवेन्द्र को पराजित करने के पश्चात् आर्यावर्त के राजाओं को सरलता से वह पराजित कर लेगा, परन्तु पहले ही युद्ध में उसको पराजय का मुख देखना पड़ा। नर्मदा प्रदेश का राजा अर्जुन रावण को पराजित कर उसे बन्दी बना अपनी नगरी महिष्मती पुरी में ले गया। यहाँ से रावण को उसके पितामह पुलस्त्य ने अर्जुन से उसकी मैत्री कराकर मुक्त कराया। इस पर रावण उत्तर के अन्य नरेशों से जूझ नहीं सका। दक्षिण में बानर राजा बाली रहता था। रावण ने सोचा कि यह बाली आर्य जाति का नहीं है। कम-से-कम इस राज्य को वह आत्मसात कर सकता है।

रावण बाली पर सीधे आक्रमण नहीं करना चाहता था, अतः उसने वंचना द्वारा बाली को पकड़ना चाहा।

एक बार बाली सागर तट पर बैठा पूजा कर रहा था। अवसर देख रावण वहाँ जा पहुँचा, परन्तु बाली ने उसको देख लिया था। इस कारण जब रावण उसके पीछे पहुँचा तो बाली ने उसे पकड़कर अपनी बगल में दबा लिया और पूजा करता रहा। जब तक उसकी पूजा समाप्त नहीं हुई, बाली उसे अपनी बगल में दबाये बैठा रहा। रावण छटपटाता रहा, परन्तु उसकी पकड़ से वह छूट नहीं सका।

जब पूजा समाप्त हुई तो बाली उसको बन्दी बना किष्किधापुरी में ले गया। वहाँ रावण ने बाली से मित्रता कर ली। दोनों अग्नि को साक्षी बना मित्र बन गये।

इस दूसरी घटना ने रावण का उत्साह भंग कर दिया। उसने इन्द्र, वरुण और विष्णु को परास्त कर देवलोक की अनेक सुन्दरियों को अपने रनिवास में रख लिया था। देवताओं पर विजय प्राप्त कर, वह दो करारी पराजय आर्यावर्त के नरेशों से सहन कर लंका में जाकर विचार करने लगा। उसकी त्रिलोक की विजय स्वप्नवत् विलीन हो गयी थी।

अब उसने सांस्कृतिक विजय करने के लिये अपने भाई के लड़के खर को तथा अपने चौदह सहस्र राक्षसों को, सेनानायक दूषण के अधीन दण्डकारण्य में भेज दिया। उसका विचार था कि सर्वप्रथम मानवों के ऋषि-महर्षियों और विद्वान् ब्राह्मणों को समाप्त किया जाये। तत्पश्चात् भारत के अन्य राज्यों को आत्मसात

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया जा सकता है। उसकी योजना थी कि पहले विन्ध्याचल के दक्षिण के देश को असुरों से भर दिया जाये। तब विन्ध्याचल के पार के देशों को पराजित कर लिया जाये। यह योजना चलने लगी।

खर और दूषण दोनों मिलकर विन्ध्याचल की तलहटी में योग-ध्यान और तपस्या में लीन ऋषियों और मुनियों को मारने तथा काटने लगे। उनके यज्ञों में मांस, रक्त इत्यादि डाल-डालकर भ्रष्ट करने लगे। एक युद्ध का-सा वातावरण बिना युद्ध के बन गया। यह एकपक्षीय युद्ध था। ऋषि-मुनि अपनी तपस्या में लीन होते थे। राक्षस उनके आश्रमों में जाते और उनको मारकर ऐसे खा जाते जैसे कि वे वन-पशु हों।

इस समय राम अपने पिता के वचनों से बद्ध अपने भाई लक्ष्मण और पत्नी सीता के साथ वनवास भोग रहे थे। वे भ्रमण करते हुए दण्डकारण्य में आ पहुँचे। वन में प्रवेश करते ही राम को राक्षसों के झुण्ड के झुण्ड अपने विनाशकारी कार्य में लीन दिखायी देने लगे।

वहाँ रहने वाले ऋषि-महर्षियों ने राम को वहाँ की परिस्थिति से अवगत कराया। उन्होंने कहा—

सोऽयं ब्राह्मणभूयिष्ठो वानप्रस्थगणो महान्।
त्वन्नाथोऽनाथवद् राम राक्षसैर्हन्यते भृशम्॥
एहि पश्य शरीराणि मुनीनां भावितात्मनाम्।
हतानां राक्षसैर्घोरैर्बहूनां बहुधा वने॥
पम्पानदीनिवासानामनुमन्दाकिनीमपि।
चित्रकूटालयानां च क्रियते कदनं महत्॥
एवं वयं न मृष्यामो विप्रकारं तपस्विनाम्।
क्रियमाणं वने घोरं रक्षोभिर्भीमकर्मभिः॥
ततस्त्वां शरणार्थं च शरण्यं समुपस्थिताः।
परिपालय नो राम वध्यमानान् निशाचरैः॥

वा० रा० अरण्य० ६–१५ से १६

इनका अर्थ है—

हम इस वन में रहने वाले वानप्रस्थी महात्मागण हैं। इसमें ब्राह्मणों की संख्या अधिक है। आप हमारे रक्षक हैं, परन्तु हम राक्षसों द्वारा अनाथों की भाँति मारे जा रहे हैं।

देखिये, ये अस्थियों के ढेर उन ऋषि-मुनियों के हैं, जो इन राक्षसों द्वारा मारे गये हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरोवर से लेकर तुंगभद्रा तथा मन्दाकिनी के किनारे-किनारे वाले और जो चित्रकूट से पश्चिम की ओर रहने वाले हैं, उन सभी ऋषि-महर्षियों का राक्षसों द्वारा महान् संहार किया जा रहा है।

इन भयानक कर्म करने वाले राक्षसों ने इस वन में तपस्वी मुनियों की हत्याओं का ऐसा भयंकर काण्ड मचा रखा है कि अब असह्य हो गया है।

अतः हम इनसे बचाये जाने की प्रार्थना लेकर आपकी शरण में आये हैं। हे राम! इन निशाचरों से मारे जाते हुए मुनियों को बचाओ।

यह रूप था उस संघर्ष का जो सीता-हरण से पहले विद्यमान था। राम ने यह देखा और इस अत्याचार का विरोध करने के लिये उसने इस वन में रहना आरम्भ कर दिया।

राम-रावण युद्ध

ऐसा प्रतीत होता है कि देवता समुन्नत ज्ञान-विज्ञान के ज्ञाता थे। ब्रह्मा, इन्द्र, शिव बहुत से दिव्यास्त्रों के निर्माण करने का ढंग जानते थे। एक विद्वान् के नाते वे इन शस्त्रास्त्रों के बनाने का ढंग अथवा उनके प्रयोग का ढंग उन सबको बताने में संकोच नहीं करते थे, जो अपने-आपको उनके पाने का अधिकारी सिद्ध कर दे। एक बात और प्रतीत होती है कि यद्यपि वे स्वयं एक जाति विशेष के साथ सम्बन्ध रखते थे, परन्तु अपने ज्ञान-विज्ञान की उपज को पूर्ण मानव जाति की निधि मानते थे और उन्होंने उन शस्त्रों को किसी भी जाति के योग्य व्यक्ति को देने से कभी इन्कार नहीं किया। आरम्भ से ही इसके उदाहरण मिलते हैं।

हिरण्यकशिपु को ब्रह्मा का वर (आशीर्वाद) प्राप्त था कि वह अतुल बलशाली होगा। उसको कोई देवता मार नहीं सकेगा। इसी कारण उसको निःशेष करने के लिये उसकी प्रजा का सहयोग प्राप्त करना पड़ा। इसी प्रकार अन्य दैत्यों एवं राक्षसों को भी देवताओं से वर प्राप्त होते रहते थे।

रावण को भी ब्रह्मा एवं शिव से वर प्राप्त थे। मेघनाथ को भी इस योग्य माना गया कि वह दिव्य शक्ति को अपने पास रखे और उसको प्रयोग कर सके। देवताओं को जब भी कोई अपनी तपस्या से विश्वास दिला देता कि वह दिव्य-अस्त्रों के योग्य है, तो देवता उसको वह अस्त्र दे देते थे। ज्ञान की उपज को वे मानव जाति की सम्पत्ति मानते थे, परन्तु जब वे किसी असुर के पास उन शस्त्रास्त्रों को चला गया देखते थे, तो फिर उसका विरोध करने का प्रयत्न भी करते थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यही बात रावण के सम्बन्ध में हुई। जब ब्रह्मा ने रावण को वह शक्ति और वे अस्त्र-शस्त्र प्रदान किये, जिससे कोई देवता उसको परास्त न कर सके तो फिर देवता तत्कालीन मनुष्य में से किसी को उसका विरोध करने के लिये तैयार करने लगे।

यह कहा जाता है कि भगवान् विष्णु स्वयं राम के रूप में महाराज दशरथ के घर में उत्पन्न हुए। इसमें सन्देह नहीं कि राम दैवी शक्ति का स्वामी था। उसमें परमात्मा की विशेष शक्ति का होना मान लेना किसी प्रकार भी अयुक्ति-संगत बात नहीं। हिन्दुओं में अवतारवाद के यही अर्थ प्रतीत होते हैं।

यह तो कोई भी नहीं मानता कि पूर्ण अंश में परब्रह्म परमात्मा अवतार में समाया हुआ होता है। यदि यह माना जायेगा तो ब्रह्माण्ड का कोई न कोई भाग उससे रहित मानना पड़ेगा। ऐसा नहीं। यह भी कोई नहीं मानता कि परमात्मा की सब प्रकार की शक्तियाँ पूर्ण तीव्रता के साथ अवतार में उपस्थित होती हैं। अवतार भी मनुष्यों की भाँति भूलें करते देखे जाते हैं और उनकी अवहेलना करने वाले भी इस लोक में विद्यमान मिलते हैं। इस विषय में यही बात बुद्धिगम्य है कि परमात्मा सर्व-व्यापक है और विशेष पुरुषों में उसकी शक्ति अन्य मानवों से कुछ अधिक मात्रा में विद्यमान होती है।

राम का बाल्यकाल में ही ताड़का को मार गिराना, मारीच और सुबाहु को युद्ध में भगा देना इत्यादि अवश्य ही अद्भुत कार्य थे। इसके साथ ही शिव के धनुष की, जिसकी किसी मानव द्वारा प्रत्यंचा भी नहीं चढ़ायी जा सकी थी, राम-द्वारा प्रत्यंचा चढ़ाने में ही तोड़ा जाना एक विशेष बात थी।

कुछ भी हो, उन्हें परमात्मा नहीं तो एक अति मानव मानना ही पड़ेगा। वह परमात्मा की कृपा से नहीं तो अपने पूर्व जन्म के कर्म-फल से रावण को मारने में कृतकार्य हुआ।

वाल्मीकि को राम के चरित्र से परिचित कराते हुए नारद ने यह कहा था—

बहवो दुर्लभाश्चैव ये त्वया कीर्तिता गुणाः।
मुने वक्ष्याम्यहं बुद्ध्वा तैर्युक्तः श्रूयतां नरः॥

वा० रामा० बाल० १–७

मुने! जिन बहुत से दुर्लभ गुणों का तुमने वर्णन किया है, उनसे युक्त नर को मैं विचार कर कहता हूँ। आप सुनिए।

इस प्रकार नारद ने राम को नर कहकर स्मरण किया है। हाँ, यह माना है कि राम के जन्म के समय महाराज दशरथ को पुत्र-प्राप्ति के लिये यज्ञ करना पड़ा था और सफलता के हेतु अभी यज्ञ किया ही जा रहा था कि (ऐसा लिखा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है) सब देवता एकत्रित हो ब्रह्मा के पास पहुँचे और कहने लगे कि रावण के दिव्यास्त्रं प्राप्त करने के कारण परास्त करने में इस भू-लोक पर कोई भी समर्थ नहीं।

उद्वेजयति लोकांस्त्रीनुच्छ्रितान् द्वेष्टि दुर्मतिः।
शक्रं त्रिदशराजानं प्रधर्षयितुमिच्छति॥
ऋषीन् यक्षान् सगन्धर्वान् ब्राह्मणानसुरांस्तदा।
अतिक्रामति दुर्धर्षो वरदानेन मोहितः॥
तन्महन्नो भयं तस्माद् राक्षसाद् घोरदर्शनात्।
वधार्थं तस्य भगवन्नुपायं कर्तुमर्हसि॥

वा० रा० बाल० १५–८, ९, १०

उसने तीनों लोकों के प्राणियों का नाकों दम कर रखा है। वह दुष्टात्मा जिनको उन्नति करता देखता है, उन्हीं के साथ द्वेष रखने लगता है। वह इन्द्र को भी पराजित करने की अभिलाषा रखता है। आपसे आशीर्वाद प्राप्त कर वह ऋषियों, यक्षों, गन्धर्वों, असुरों तथा ब्राह्मणों को भी पीड़ा देता है और उनका अपमान करता है। वह राक्षस देखने में भी अति भयंकर है। उससे हमें महान् भय प्राप्त हो रहा है। अतः भगवन्! उसके वध के लिये कोई उपाय करना चाहिये।

यह भी लिखा है कि जहाँ उस सभा में यह विचार किया गया कि भगवान विष्णु दशरथ के घर जन्म लें, वहाँ यह भी उचित समझा गया :

सत्यसंधस्य वीरस्य सर्वेषां नो हितैषिणः।
विष्णोः सहायान् बलिनः सृजध्वं कामरूपिणः॥
मायाविदश्च शूरांश्च वायुवेगसमान् जवे।
नयज्ञान् बुद्धिसम्पन्नान् विष्णुतुल्यपराक्रमान्॥
असंहार्यानुपायज्ञान् दिव्यसंहननान्वितान्।
सर्वास्त्रगुणसम्पन्नानमृतप्राशनानिव॥

वा० रामा० बाल० १७–२,३,४

अर्थात्—ब्रह्मा ने सब देवताओं से कहा कि विष्णु सत्यप्रतिज्ञ, वीर और हमारा हित चाहने वाले हैं। इस कारण तुम सबको उनकी सहायता के लिये ऐसे पुत्रों की सृष्टि करनी चाहिये, जो बलवान्, इच्छानुसार रूप धारण करने वाले, माया जानने वाले, शूरवीर, वायु के समान वेगशाली, नीतिज्ञ, बुद्धिमान, विष्णु-तुल्य पराक्रमी, किसी से परास्त न होने वाले, विभिन्न प्रकार के उपायों के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जानकार, दिव्य शरीरधारी, अमृतभोगी, देवताओं के समान सब प्रकार की अस्त्र-विद्या के गुणों से सम्पन्न हों।

कहने का अभिप्राय यह है कि देवताओं ने रावण को मारकर सृष्टि को भार-मुक्त करने का आयोजन किया था। ऐसा वाल्मीकि ऋषि ने वाल्मीकि रामायण में लिखा है।

राम के तीन भाई और थे—लक्ष्मण, भरत एवं शत्रुघ्न। राम और लक्ष्मण में घनिष्ठता सबसे अधिक थी। भरत और शत्रुघ्न में परस्पर अधिक सामीप्य था।

जब विश्वामित्र ताडका और मारीच से पीड़ित किसी नवयुवक क्षत्रिय की सहायता के इच्छुक हुए तो वे राजा दशरथ के पास गये और उसके दो पुत्रों को माँगकर ले गये। विश्वामित्र ने उन दोनों भाइयों को भाँति-भाँति के दिव्यास्त्र दिये और उनके प्रयोग का ढंग सिखाया तथा उनसे ताडका का हनन करवाया। मारीच भी मारा जाता, यदि वह वहाँ से भाग न जाता।

राम के विवाह के बाद राम को युवराज पद पर सुशोभित करने का निश्चय हुआ तो राजा की सबसे छोटी रानी कैकेयी के मन में ईर्ष्या उत्पन्न हो गयी। राम बड़ी रानी कौशल्या का पुत्र था। कैकेयी के लड़के का नाम भरत था। वह चाहती थी कि राज्य उसके लड़के को मिलना चाहिये। इस समय उसको एक बहुत पुरानी बात याद आ गयी। उस समय महाराज दशरथ एक युद्ध में घायल हो गए थे। तब रानी कैकेयी ने उनकी बहुत सेवा-शुश्रूषा की थी। राजा ने प्रसन्न होकर उसको दो वर देने का वचन दिया था। रानी ने वे वर उस समय नहीं माँगे थे।

अब उसको वे वर स्मरण हो आये। उन दो वरों में से उसने एक से अपने पुत्र भरत के लिये राज्य और दूसरे से राम को चौदह वर्ष के लिये वनवास माँगा। राजा राज्य तो भरत को देने के लिये तैयार था, परन्तु राम को वनवास देने के लिये तैयार नहीं होता था। इस पर दोनों में विवाद हुआ। इस विवाद का समाचार राम को मिला तो वह पिता के सामने आकर अपना वन जाने का निश्चय बता, वन को चला गया।

राम गया तो राम की पत्नी सीता भी साथ चल पड़ी। लक्ष्मण राम से अति स्नेह रखता था। वह भी राम के साथ वन को चला गया।

वन में घूमते हुए राम, सीता और लक्ष्मण दण्डकारण्य में पहुँच गये। यहाँ पर रहने वाले मुनियों ने अपने कष्ट का वर्णन किया तो राम वहीं ठहर गये। संघर्ष अवश्यम्भावी था। वह हो गया। रावण की छोटी विधवा बहिन शूर्पणखा की दृष्टि उन पर पड़ी तो वह दोनों भाइयों पर मोहित हो गयी और उनमें से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक से विवाह करने का विचार करने लगी। दोनों ने उसको अस्वीकार कर दिया तो शूर्पणखा ने समझा कि दोनों सीता के स्वामी हैं और उसके रहते वे उसको स्वीकार नहीं करेंगे। अतः वह सीता को मारकर खा जाने के लिये दौड़ी। लक्ष्मण ने उसको रोककर उसके नाक, कान काट उसे कुरूप कर दिया। यों तो वह मारे जाने के योग्य थी, उसने सीता को मार डालने का यत्न किया था, परन्तु स्त्री समझ लक्ष्मण ने उसको कुरूप कर देना ही पर्याप्त समझा।

इस पर शूर्पणखा खर के पास रोती-चिल्लाती पहुँची और खर ने दूषण को इन दोनों वनवासियों को मार डालने की आज्ञा देकर भेज दिया। दूषण मारा गया तो खर अपने चौदह सहस्र सैनिकों को लेकर इनको पकड़ने के लिये आया। राम ने सीता को लक्ष्मण सहित दूर वन में भेज दिया और स्वयं खर और उसके सिपाहियों से लड़ने लगा।

राम के पास वे सब दिव्यास्त्र थे, जो विश्वामित्र ने उसको दिये थे। अगस्त्य मुनि ने भी उसको कई दिव्यास्त्र दिये थे। अतः राम को राक्षसराज तथा उसके सैनिकों को मार डालने में कुछ विशेष कठिनाई नहीं हुई।

परन्तु इससे तो शूर्पणखा को और भी क्रोध चढ़ आया। वह अपने बड़े भाई रावण के पास गयी और अपनी दुर्दशा का बदला लेने के लिये कहने लगी।

रावण राम के पराक्रम की बात सुन विस्मय करने लगा। तदनन्तर एक योजना बना, वह सीता को हर लाया। वह सीता को अपनी रानी बनाना चाहता था, परन्तु सीता नहीं मानी।

राम और लक्ष्मण सीता को ढूँढते हुए किष्किन्धा पहुँचे। वहाँ उनकी भेंट सुग्रीव से हो गई। सुग्रीव बाली का भाई था और बाली ने उसकी पत्नी तारा को बलपूर्वक अपनी पत्नी बना रखा था तथा सुग्रीव को मारने के लिये उद्यत हो गया था। सुग्रीव उस समय अपने कुछ मित्रों के साथ वन में जा छिपा था।

राम को सुग्रीव ने यह सूचना दी कि सीता-हरण रावण ने किया है और वह उसको लेकर दक्षिण की ओर गया है। इस पर सुग्रीव और राम में समझौता हो गया। राम ने उसको उसका राज्य एवं उसकी पत्नी को वापिस दिलाया और सुग्रीव ने राम की रावण के विपरीत युद्ध में सहायता की।

वानर सेना के साथ राम और लक्ष्मण लंका पर चढ़ गये। लंका में घोर युद्ध हुआ और रावण अपने सब सम्बन्धियों तथा सहस्रों राक्षसों सहित मारा गया।

चौदह वर्ष की अवधि समाप्त होने पर राम, लक्ष्मण और सीता, वानराधिपति सुग्रीव तथा लंकाधिपति विभीषण के साथ अयोध्या पहुँच गये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐसा कहा जाता है कि राक्षसों का राज्य विभीषण के हाथ में आ जाने से वह असुर-राज्य न रहकर धर्म राज्य हो गया था।[1]

१. राम-रावण युद्ध और उससे पहले माल्यवान इत्यादि से विष्णु का युद्ध, वही पुरानी कहानी है जो आदि काल से चली आती है। मुख्य रूप में दैवी और आसुरी सम्पदा, दो ही प्रकार के मनुष्य उत्पन्न होते हैं। इन दो चरम सीमावर्ती (extremes) स्वभावों के बीच में ही मानव मिलते हैं। एक प्रकार का स्वभाव कुछ कम अथवा दूसरे प्रकार का स्वभाव कुछ अधिक होने से मानव-मानव के आचरण में अन्तर पड़ता जाता है। वास्तव में हैं दो प्रकार के ही स्वभाव और इनमें संघर्ष होता है। जब आसुरी स्वभाव वालों के अत्याचार से दुःखी होकर प्रजा दैवी स्वभाव वालों से सहायता माँगती है तब ऐसे युद्ध होते हैं।

यों तो ऐसे संघर्षों का एक ही परिणाम होता है। वह है दैवी प्रवृत्तियों की विजय। परन्तु इस विजय में कष्ट और हानि दैवी पक्ष वालों की भी उसी अनुपात में होती है, जितनी आसुरी प्रवृत्ति वालों में शक्ति होती है और आसुरी प्रवृत्ति का, वे जिस त्याग और तपस्या के साथ विरोध करते हैं।

इस पर भी भारतीय परम्परा के अनुसार इतिहास की इस घटना का वर्णन इस कारण किया है कि इस युग में युग-प्रवर्तक परिस्थितियाँ उत्पन्न हुई थीं।

राम-रावण युद्ध से राक्षस समाज और दैवी समाज में सम्पर्क बढ़ा था। यह ठीक था कि रावण का भाई विभीषण धर्मपरायण और वेदानुसार आचरण करने वाला था, परन्तु जब दो जातियों में सम्पर्क बढ़ा तो न तो राक्षस समाज में सबके सब विभीषण थे और न ही मानव-समाज में सबके सब राम। इसके पूर्व मानव, देवता और राक्षस, दोनों से दुर्बल माने जाते थे। राम-विजय ने दोनों को ह्रासोन्मुख कर दिया। राक्षस जाति के लोग समाप्त हो गये। वास्तव में वे मानव-समाज में हिल-मिल गये। परिणामस्वरूप जहाँ मानव-समाज में अनेक राक्षस समुदाय की बातें स्वीकार की गयीं, वहाँ राक्षसों ने भी आर्यों के अनेक चलन स्वीकार कर लिये।

दूसरी ओर देवताओं की समझ में आया कि वे ह्रासोन्मुख हैं। राम-रावण युद्ध के पश्चात् वे दूसरे देशों की राजनीति में हस्तक्षेप करते रहे, परन्तु एक तटस्थ राज्य के रूप में। ऐसा प्रतीत होता है कि विष्णु, कुबेर, शिव इत्यादि की सन्तानों में वह ओज और बल नहीं रहा था जिससे वे देवताओं को लेकर युद्ध-भूमि में उतर सकें। केवल इन्द्र की कूटनीतिक चालें ही चलती रहीं। परन्तु उन चालों के पीछे बल न रह जाने से, वे प्रायः निष्प्रभाव-सी हो गयीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनको अपनी रक्षा के लिये भी अब मानवों से सहायता लेनी पड़ती थी। इस पर भी अभी उनकी प्रतिष्ठा बनी थी।

यहाँ यह बात पुनः दोहरा देने की आवश्यकता है कि देवता मनु की सन्तान नहीं थे। ऐसा होने का कहीं उल्लेख नहीं मिलता। इसी प्रकार राक्षस, दानव इत्यादि भी मनु की सन्तान में से नहीं थे। इसका भी कहीं स्पष्ट प्रमाण नहीं मिलता। मनु की सन्तान में दो वंश, सूर्यवंश और चन्द्रवंश के लोग ही लिखे मिलते हैं। इसी आधार पर हमने देवताओं और राक्षसों को प्लावन-पूर्व की सृष्टि का जीव माना है। वे कैसे बच गये? और कहाँ पर बचे? यह स्पष्ट नहीं। इतना कुछ तो पता चलता है कि देवता मेरु पर्वत से घिरे हुए हिमालय पार प्रदेश में रहते थे। यह स्थान सम्भवतः तिब्बत ही था। इस बात के प्रमाण द्वापर युग में भी मिलते हैं।

राम-रावण युद्ध के पहले से ही देवताओं और राक्षसों में मेल-जोल था। यह मेल-जोल बनता और बिगड़ता रहता था। बिगड़ता तब था, जब राक्षसों में आसुरी प्रवृत्तियाँ बढ़ जाती थीं। दोनों ही मानवों को अपने से दुर्बल मानते थे। प्रथम बार मानवों ने उस देवासुर-संग्राम में भाग लिया था जो अमृत-मंथन के पश्चात् हुआ था। उसमें नर (मानवों का नरेश) अपना दिव्यास्त्र एवं धनुष लेकर युद्ध में सम्मिलित हुआ था। इस पर भी विजय मुख्य रूप में सुदर्शन चक्र के आश्रय से हुई थी।

राम-रावण युद्ध में यद्यपि दिव्यास्त्रों का प्रयोग हुआ था, परन्तु वे दिव्यास्त्र राम को देवताओं से प्राप्त नहीं हुए थे। वे राम को ब्रह्मर्षि विश्वामित्र और अगस्त्य ऋषि से मिले थे। इसके विपरीत रावण और मेघनाथ के पास दिव्यास्त्र देवताओं के दिये हुए थे। देवता इस बात को अनुभव करते थे। जिसने इन्द्र को बन्दी बना लिया था, उस इन्द्रजीत को लक्ष्मण ने मार डाला था। जिसने वरुणादि देवताओं को पराजित कर उनकी कन्याओं का हरण कर लिया था, उस रावण को राम के बाणों ने धराशायी कर दिया था।

उक्त ऐतिहासिक वृत्तान्त पढ़ते समय यह भी स्मरण रखना चाहिए कि विष्णु, इन्द्र इत्यादि सौर जगत् की दिव्य-शक्तियों का यहाँ उल्लेख नहीं है। यहाँ भूतल पर रहने वाले प्राणियों का ही उल्लेख है। ब्रह्मा ने ब्रह्माण्ड के नक्षत्रों तथा अपने काल की बहुत-सी सृष्टि के प्राणियों के नाम वेद मन्त्रों में उल्लिखित शब्दों से ही रखे थे। इस कारण नामों में समानता दिखायी देती है।

यह भी निश्चित है कि बहुत से नाम प्लावन-पूर्व के प्राणियों के रख लिये गए थे; उदाहरण के रूप में इन्द्र, वरुण, विष्णु, पुलस्त्य इत्यादि। भारत में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वापर युग

शकुन्तला तथा भरत

इस ऐतिहासिक खोज में यह मत स्थिर हुआ है कि चन्द्रवंशियों में नैतिकता का वह मूल्य नहीं था जो सूर्यवंशियों में था। इला के पुत्र पुरुरवा के विषय में दो शब्द लिखने से चन्द्रवंशियों के परिवार के प्रथम पुरुष तथा उसके परिवार में होने वाले व्यक्तियों के चरित्र की एक झलक मिल जायेगी।

पुरुरवा के विषय में महाभारत में लिखा है—

त्रयोदश समुद्रस्य द्वीपानश्नन् पुरूरवाः ॥
अमानुषैर्वृतः सत्त्वैर्मानुषः सन् महायशाः ।
विप्रैः स विग्रहं चक्रे वीर्योन्मत्तः पुरूरवाः ॥

महा भा० आदि० ७५-१६, २०

अर्थात्—पुरुरवा समुद्र के चौदह द्वीपों का शासन और उपभोग करता था। वह मनुष्य होकर भी मानवेतर प्राणियों से घिरा रहता था। वह अपने बल-पराक्रम से उन्मत्त हो ब्राह्मणों से झगड़ा करता था। ब्राह्मण बेचारे चीखते-चिल्लाते रहते थे, तो भी वह उनका सारा धन छीन लेता था।

वे प्राणी कौन थे जिनसे पुरुरवा की संगति थी ? हमारा इसमें यह मत है कि ये दानव और राक्षस लोग ही थे, जो मनु की सन्तान नहीं थे। प्लावन के समय वे भी बच गये थे। यहाँ मानवेतर से मच्छ, कच्छ का अभिप्राय नहीं हो सकता। इस मत की इस बात से पुष्टि होती है कि पुरुरवा समुद्र-द्वीपों में राज्य करता था और पुलस्त्य सन्तान को भी समुद्र-द्वीपों में रहने का अवसर मिला था। मानवेतर से अभिप्राय मनु की सन्तान के अतिरिक्त लोगों से ही है।

पुरुरवा का अपने वंश वालों से दूर और राक्षसों की संगति में रहने का ही प्रभाव मानना चाहिये कि वह अपने में उन सात्त्विक गुणों को धारण नहीं रख सका, जिनको इक्ष्वाकु तथा उसके कुल वालों ने धारण किया था।

इतिहास लिखने का ढंग अपना था तथा वंशावलियाँ लिखने का ढंग भी अपना था। साथ ही वंश चलाने में सन्तान के मुख्य व्यक्ति का नाम पिता के नाम पर रखने की परम्परा भी थी। देवलोक के राजा इन्द्र कहलाते थे और देवलोक के राज्य-पुरोहित ब्रह्मा कहलाते थे। देवलोक की रक्षा के लिये इन्द्र, विष्णु, कुबेर और वरुण चार सेनानायक और लोकपाल (राजा) थे।

सुदर्शन चक्र और दिव्यास्त्रों के विषय में हम पहले ही लिख चुके हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुलों में प्रायः परम्पराएँ चल पड़ती हैं, जिनका आधार किसी परिवार में किसी प्रभावशाली व्यक्ति का आचरण होता है। यही बात चन्द्रवंशियों में हुई प्रतीत होती है। नहुष, ययाति, दुष्यन्त, शान्तनु, धृतराष्ट्र, दुर्योधन इत्यादि हमारे कथन के उदाहरण हैं।

एक बात और है, जो धर्म और शास्त्र के ज्ञाता थे, उनके आचरण में भी वह दृढ़ता नहीं पायी जाती जो अन्यत्र मिलती है। यों तो मानवों में गुण-दोष सदा और सर्वत्र देखे गये हैं। तदपि जब किसी बात का उल्लेख इतिहास में आ जाये तो यह समझना चाहिये कि वे उस गुण अथवा दोष में ऐसे स्तर तक पहुँच गये हैं कि उनको बिना लिखे छोड़ा नहीं जा सकता। जब किसी परिवार के इतिहास में दोषों का उल्लेख अधिक हो तो यह मानना ही पड़ेगा कि दोष सत्य ही भारी मात्रा में रहे होंगे।

दुष्यन्त चन्द्र वंश में द्वापर के मध्य हुआ प्रतीत होता है। इसके पिता का नाम ईलिन था। पाँच भाइयों में दुष्यन्त सबसे बड़ा था। एक बार महाबाहु राजा दुष्यन्त बहुत से सैनिकों और साथियों को साथ लिये हुए सैकड़ों हाथी-घोड़ों से घिरे हुए, चतुरङ्गिणी सेना के साथ एक घने वन में आखेट के लिये गये हुए थे। वन में पड़ाव था। राजा इधर-उधर वन-पशुओं का आखेट करता हुआ भ्रमण कर रहा था। इन्हीं भ्रमणों में एक दिन दुष्यन्त सेना से दूर निकल गया और महर्षि कण्व के आश्रम में जा पहुँचा। महर्षि फल बटोरने आश्रम से बाहर गये हुए थे। आश्रम में उनकी पालित कन्या शकुन्तला थी। राजा दुष्यन्त शकुन्तला की रूप-राशि देख उस पर मोहित हो गया। उसने उससे गन्धर्व विवाह का प्रस्ताव किया और उचित वचनों के पश्चात् दोनों का समागम हो गया।

समागम के पूर्व शकुन्तला ने राजा से महर्षि की प्रतीक्षा के लिये आग्रह किया था। उसने कहा था—

मुहूर्तं सम्प्रतीक्षस्व स मां तुभ्यं प्रदास्यति।

महा भा० आदि० ७३-५

(दो घड़ी प्रतीक्षा करिये। वे ही मुझे आपकी सेवा में समर्पित करेंगे।)

दुष्यन्त ने प्रतीक्षा करने के स्थान पर कह दिया—

गान्धर्वं राक्षसो क्षत्रे धर्म्यौ तौ मावि शङ्किथाः॥

महा भा० आदि० ७३-१३

(गन्धर्व और राक्षस विवाह दोनों क्षत्रिय जाति के लिये धर्मानुकूल हैं। अतः किसी प्रकार की शंका नहीं करनी चाहिए।)

तनिक ध्यान से पढ़ने और उस परिस्थिति पर विचार करने पर, जब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह वाक्य कहा गया, तो यह एक निर्जन वन में अकेली लड़की को एक राजा की धमकी ही प्रतीत होगी। गन्धर्व विवाह करो अथवा राक्षसी, विवाह तो किया ही जायेगा। अब गन्धर्व विवाह और राक्षसी विवाह के अर्थ भी समझ लेने चाहियें। मनुस्मृति में लिखा है—

इच्छयान्योन्यसंयोगः कन्यायाश्च वरस्य च।
गांधर्वः स तु विज्ञेयो मैथुन्यः कामसंभवः॥
हत्वा छित्त्वा च भित्त्वा च क्रोशन्तीं रुदतीं गृहात्।
प्रसह्य कन्याहरणं राक्षसो विधिरुच्यते॥ (३-३२, ३३)

अर्थात्—अपनी इच्छा से कन्या और वर का समागम हो तो वह कामियों का मैथुन्य विवाह गान्धर्व विवाह जानना चाहिये।

छीना-झपटी, मार-कुटाई, हत्या करके, गाली देती अथवा रोती हुई कन्या का बलपूर्वक हरण कर लेना, राक्षसी विवाह कहलाता है।

दुष्यन्त ने शकुन्तला को अकेला जान और उसके आग्रह—दो घड़ी भर ठहर जाइये, उसका पिता आता होगा, वे ही उसको विवाह में दे सकते हैं—को न मानकर उसका कहना कि गान्धर्व विवाह और राक्षसी विवाह दोनों क्षत्रियों के लिये उचित हैं; यह एक स्पष्ट रूप में धमकी थी कि वह उसकी काम-तृप्ति के लिये मान जाये अन्यथा वह उसको उठाकर ले जायेगा।

इस अवस्था में शकुन्तला ने वचनबद्ध कर राजा को समागम की स्वीकृति दी। और फिर राजा दुष्यन्त कण्व महर्षि के आने से पहले वहाँ से चल दिया और उसने फिर आश्रम में मुख नहीं दिखाया।

जब बारह वर्ष बाद शकुन्तला अपने पुत्र को लेकर राजधानी में पहुँची और राजा को उक्त घटना का स्मरण कराया तो यह महानुभाव कहने लगे—

अब्रवीन्न स्मरामीति कस्य त्वं दुष्टतापसि॥
धर्मकामार्थसम्बन्धं न स्मरामि त्वया सह।
गच्छ वा तिष्ठ वा कामं यद् वापीच्छसि तत् कुरु॥
न पुत्रमभिजानामि त्वयि जातं शकुन्तले।
असत्यवचना नार्यः कस्ते श्रद्धास्यते वचः॥
सर्वमेतत् परोक्षं मे यत् त्वं वदसि तापसि।
नाहं त्वामभिजानामि यथेष्टं गम्यतां त्वया॥

महा भा० आदि० ७४-१९, २०, ७३, ८१

राजा दुष्यन्त ने कहा, 'दुष्ट तपस्विनी! मुझको कुछ भी मालूम नहीं है। तुम किसकी स्त्री हो? तुम्हारे साथ मेरा धर्म, काम अथवा अर्थ को लेकर वैवाहिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्बन्ध कब स्थापित हुआ है ? इस बात का मुझे तनिक भी स्मरण नहीं। तुम इच्छानुसार जाओ, रहो अथवा जैसी तुम्हारी रुचि हो, वैसा करो।

शकुन्तला के समझाने पर राजा ने अन्तिम बात कह दी—

शकुन्तला ! तुम्हारे गर्भ से उत्पन्न इस पुत्र को मैं नहीं जानता। स्त्रियाँ प्रायः झूठ बोलने वाली होती हैं। कौन तुम्हारी बात पर विश्वास करेगा ?

तुम जो कुछ कहती हो, वह मेरी आँखों के सामने नहीं हुआ। तापसि ! मैं तुमको नहीं पहचानता। तुम्हारी जहाँ इच्छा हो, वहीं चली जाओ।

शकुन्तला चली जाने के लिये तैयार हो गयी थी, परन्तु देवताओं ने साक्षी भरी कि वह उसका ही पुत्र है। इस कारण उसको उसे स्वीकार कर लेना चाहिये।

ऐसा प्रतीत होता है कि देवताओं (इन्द्रादि) ने दुष्यन्त को विवश किया था और फिर दुष्यन्त ने अपने पुत्र को स्वीकार करते हुए अपने व्यवहार के विषय में कहा—

अहं चाप्येवमेवैनं जानामि स्वयमात्मजम्।
यद्यहं वचनादस्या गृह्णीयामि ममात्मजम्॥
भवेद्धि शंक्यो लोकस्य नैव शुद्धो भवेदयम्॥

महा भा० आदि० ७४-११७, ११८

महाभारत के उसी अध्याय में उक्त श्लोक हैं। इनका अर्थ कुछ ऐसा जान पड़ता है, जैसे अंग्रेज़, अंग्रेज़ी काल में, राजा-महाराजाओं को उत्तराधिकारी स्वीकार कराते रहते थे। राजा-महाराजाओं की इच्छा के विपरीत भी जब किसी को उत्तराधिकारी घोषित किया जाता था, तो राजा-महाराजा उसको स्वीकार कर लेते थे।

जो कुछ भी हो, दुष्यन्त की कथा चन्द्रवंशियों की एक महान् कथा है।

राजा दुष्यन्त के लिए महर्षि व्यासजी बहुत-कुछ लिखते हैं। वे बलशाली, सुप्रबन्धक, चारों वर्णों के घटकों से उनके धर्म का पालन कराने वाले थे। उनके राज्य में झूठ, छल, कपट का अभाव, रोगों का अभाव, अन्नादि की प्रचुरता थी। परन्तु राजा के अपने स्वचरित्र के विषय में कुछ नहीं लिखा।

भूयो धर्मपरैर्भावैर्मुदितं जनमादिशत्॥

आदि० ६८-१५

जनता धर्मयुक्त भावना से सदा प्रसन्न रहती थी। परन्तु राजा स्वयं भी धर्म पालन करते थे अथवा नहीं, इस विषय में एक शब्द नहीं लिखा।

यह महर्षि व्यास का गुण था कि वे सदा उतना ही लिखते थे, जितना सत्य था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अतः हमारा निष्कर्ष है कि चन्द्रवंशियों में धर्म तथा नैतिकता का स्तर वह नहीं था, जो भारतीय राजाओं के लिये उपयुक्त माना जाता था।[1]

महाराज शान्तनु

चन्द्रवंश में महाराज प्रतीप एक यशस्वी राजा हुए हैं। उनके तीन पुत्र थे। उनके नाम थे देवापि, शान्तनु और वह्लीक। देवापि सबसे बड़ा था, परन्तु उसकी राज्यकार्य में अरुचि थी। इस कारण वह मोक्ष-मार्ग पर चल पड़ा और शान्तनु राज्य-कार्य देखने लगा।

एक दिन राजा शान्तनु गंगा-तट पर अकेले भ्रमण कर रहे थे कि उनको एक परम सुन्दरी कन्या दृष्टिगोचर हुई। वह अकेली थी। राजा ने उसका परिचय तक नहीं पूछा और उसको वरने की इच्छा प्रकट कर दी। उस स्त्री ने राजा की इच्छा इस शर्त पर स्वीकार की कि अपनी सन्तान से वह स्वेच्छा से व्यवहार

१. यह साहित्यिक कथा है अथवा कोई ऐतिहासिक घटना ? हमारा मत है कि यह दोनों ही है। जहाँ इस कथा में मानवीय गुण-दोष और त्रुटियों का वर्णन है, वहाँ उस काल के धर्म और सामाजिक आचार-व्यवहार का वर्णन भी है।

हमने इस कथा को इतिहास की दृष्टि से ही लिखा है। चन्द्रवंशियों के प्रभुत्व काल में जब राजा-महाराजाओं का व्यवहार ऐसा था तो जनता का क्या होगा, इसका अनुमान लगाया जा सकता है। उसके धर्मपरायण होने के अर्थ क्या हो सकते हैं, अनुमान का विषय है।

यदि इस बात को मान भी लिया जाये कि राजा दुष्यन्त शकुन्तला को जनता की दृष्टि में शुद्ध, पवित्र सिद्ध करने के लिये ही वह सब नाटक कर रहा था, तो भी उसका शकुन्तला को यह कहना कि एक क्षत्रिय के लिये गान्धर्व विवाह और राक्षसी विवाह दोनों क्षम्य हैं, उस काल की पतितावस्था का दर्शन कराते हैं। यह कथन वन में एक राजा किसी अकेली कन्या को कहे और वह भी उससे गान्धर्व विवाह का प्रस्ताव करते समय, यह लड़की को धमकाकर अपनी वासना-तृप्ति के लिये मनाने से कम नहीं हो सकता।

समागम के बाद यह जानते हुए कि लड़की का पिता एक-दो घड़ी में आने वाला है, राजा का वहाँ पिता की प्रतीक्षा के लिये न ठहरना और फिर बारह वर्ष तक पत्नी की सुध न लेना, एक ही बात प्रकट करता है कि देववाणी कोई प्रेरणा नहीं, प्रत्युत राजदण्ड था। दुष्यन्त ने विवश होकर ही इसको माना था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करने के लिये स्वतन्त्र होगी। यदि उसने आपत्ति की तो वह उसको छोड़ आयेगी।

राजा इसका अर्थ नहीं समझा। न ही उसने पूछा। वह कामान्ध राजा उसको अपने प्रासाद में ले गया तथा उसने उसको पत्नी बनाकर रखा।

यह गंगा थी। इसके जब भी कोई सन्तान होती वह उसको लेकर गंगा तट पर जाती तथा उसको जीवित ही उसमें बहा देती। इस प्रकार जब वह सात सन्तानों के साथ ऐसा कर चुकी तो राजा विक्षुब्ध हो उठा। आठवीं सन्तान के साथ भी उसने ऐसा करना चाहा तो राजा ने उसका हाथ पकड़ लिया।

इस पर गंगा ने कहा, मैं इस सन्तान को आपके कहे अनुसार नष्ट नहीं करूँगी, परन्तु अब मैं आपके पास अपनी विवाह की शर्त के अनुसार नहीं रहूँगी।

यह पुत्र देवव्रत था, जो कालान्तर भीष्म के नाम से विख्यात हुआ।

समय पा महाराज शान्तनु वृद्ध हो गये। उन्होंने पुनः विवाह नहीं किया। इस पर भी वह एक दिन गंगा के तट पर भ्रमण करते हुए अति भली सुगन्ध से चकित हुए। वे उस सुगन्ध के कारण की खोज करते हुए एक निषाद के झोंपड़े पर जा पहुँचे। उस निषाद से पूछने पर पता चला कि सुगन्ध उसकी लड़की के शरीर में से सदा निकलती रहती है। यह उसको महर्षि पराशरजी की कृपा से प्राप्त हुई है।

इस पर शान्तनु ने उससे विवाह की याचना की तो निषाद ने यह शर्त रखी कि जब तक महाराज यह वचन नहीं देते कि उसकी लड़की सत्यवती का पुत्र ही राजगद्दी पर बैठेगा, तब तक उसकी लड़की उससे विवाह नहीं करेगी।

उस समय तक देवव्रत सज्ञान हो चुका था तथा वह प्रजागणों का प्रिय हो चुका था और राजा उसको नाराज नहीं करना चाहता था।

इस कारण राजा निराश नगरी को लौट आया। देवव्रत ने यह देख लिया और जब उसने पिता से कारण पूछा तो पिता ने बताया—

अपत्यं नस्त्वमेवैकः कुले महति भारत॥
शस्त्रनित्यश्च सततं पौरुषे पर्यवस्थितः।
अनित्यतां च लोकानामनुशोचामि पुत्रक॥
कथंचित् तवगाङ्गेय विपत्तौ नास्ति नः कुलम्।
असंशयं त्वमेवैकः शतादपि वरः सुतः॥
न चाप्यहं वृथा भूयो दारान् कर्तुमिहोत्सहे।
संतनस्यात्विनाशाय कामये भद्रमस्तु ते॥

म० भा० आदि० १००-६३, ६४, ६५, ६६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शान्तनु ने कहा, 'भारत ! तुम इस विशाल वंश में मेरे एक ही पुत्र हो। तुम भी सदा अस्त्र-शस्त्रों के अभ्यास में लगे रहते हो और पुरुषार्थ के लिये सदा उद्यत रहते हो। मैं इस जगत् की अनित्यता को लेकर निरन्तर शोकग्रस्त एवं चिन्तित रहता हूँ।

गंगानन्दन ! यदि तुम पर किसी प्रकार की विपत्ति आयी तो उस दिन हमारा यह वंश समाप्त हो जायेगा। इसमें सन्देह नहीं कि तुम अकेले ही मेरे लिये सौ पुत्रों से बढ़कर हो।

मैं पुनः व्यर्थ विवाह करना नहीं चाहता, किन्तु वंश-परम्परा का लोप न हो, इसी के लिये मुझे पुनः पत्नी की कामना हुई है। तुम्हारा कल्याण हो।

यह वक्तव्य महर्षि व्यासजी ने शान्तनु के मुख से कहलवाये हैं, परन्तु इतिहास अंश को उज्ज्वल रखने के लिये वे पहले ही बता चुके थे—

स चिन्तयन्नेव तदा दाशकन्यां महीपतिः।
प्रत्ययाद्धास्तिनपुरं कामोपहतचेतनः॥

म० भा० आदि० १००-५८

(राजा का चित्त काम की वेदना से चंचल था और वे निषादकन्या का चिन्तन करते हुए हस्तिनापुर को लौट आये।)

देवव्रत पिता का हित करने के लिये उस निषाद के पास गया और उससे उसकी कन्या की माँगने लगा। निषाद ने अपनी शर्त बतायी और साथ यह भी कह दिया कि इस बात का विश्वास करने के लिये कि मेरी कन्या की सन्तान राजगद्दी पर बैठ सकेगी, तुम भी वचन दो कि तुम सन्तान उत्पन्न नहीं करोगे।

देवव्रत ने ये दोनों वचन दिये और पिता के लिये पत्नी ले आया। देवव्रत ने अपने वचन का जीवन-भर पालन किया।

इस अस्वाभाविक कर्म का फल अति भयंकर हुआ। महाराज शान्तनु ने इस नवीन पत्नी सत्यवती से दो पुत्र उत्पन्न किये। एक चित्रांगद और दूसरा विचित्रवीर्य। बच्चे अभी अल्पायु ही थे कि शान्तनु का देहान्त हो गया। चित्रांगद भी बाल्यकाल में ही एक गन्धर्व से लड़ता हुआ मारा गया। विचित्रवीर्य अभी सत्रह-अठारह वर्ष का ही था कि महाराज काशिराज की तीन पुत्रियों का स्वयंवर हो रहा था और भीष्म (देवव्रत) वहाँ जा पहुँचा। उन तीनों लड़कियों को वह बलपूर्वक उठा लाया। उसने उनको अपने छोटे भाई विचित्रवीर्य को विवाह के लिये सौंप दिया।

यहाँ पर पुनः आठ प्रकार के विवाहों की विवेचना भीष्म के मुख से ग्रंथकार ने करायी है और इस प्रकार के अपहरण को क्षम्य बताया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वयंवरं तु राजन्याः प्रशंसन्त्युपयान्ति च ।
प्रमथ्य तु हृतात्माहुर्ज्यायसीं धर्मवादिनः ।।

महा भा० आदि० १०२-१६

(क्षत्रिय स्वयंवर की प्रशंसा करते हैं और उसमें जाते हैं, परन्तु विद्वान लोग समस्त राजाओं को परास्त करके कन्या का अपहरण करना क्षत्रिय के लिए सबसे श्रेष्ठ मानते हैं ।)

यह बर्बर प्रथा उस समय प्रचलित रही प्रतीत होती है । वैसे इसे स्मृति में श्रेष्ठ नहीं माना गया । स्मृति का कथन है—

ब्राह्मादिषु विवाहेषु चतुर्ष्वेवानुपूर्वशः ।
ब्रह्मवर्चस्विनः पुत्रा जायन्ते शिष्टसम्मताः ।।
रूपसत्त्वगुणोपेता धनवन्तो यशस्विनः ।
पर्याप्तभोगा धर्मिष्टा जीवन्ति च शतं समाः ।।
इतरेषु तु शिष्टेषु नृशंसानृतवादिनः ।
जायन्ते दुर्विवाहेषु ब्रह्मधर्मद्विषः सुताः ।।

मनु० ३-३९, ४०, ४१

आठ प्रकार के विवाह (ब्रह्म, देव, आर्ष, प्राजापत्य, आसुर, गान्धर्व, राक्षस और पैशाच) लिखे हैं । इनमें प्रथम चार विवाहों में ही क्रम से ब्रह्म-तेजस्वी श्रेष्ठ मनुष्यों में प्रिय, रूपवान, पराक्रमी, गुणवान, धनवान, यश वाली, पुष्कल भाग वाली, धर्मात्मा और १०० वर्ष की आयु वाली सन्तान होती है ।

शेष (पीछे के चार प्रकार के) दुष्ट विवाह की सन्तान निर्लज्ज, झूठ बोलने वाली, ब्रह्म (सत्य) धर्म द्वेषी उत्पन्न होती है—इस कारण निन्दित विवाहों का त्याग करे ।

काशिराज की तीन कन्याओं में सबसे बड़ी कन्या ने तो विचित्रवीर्य से विवाह से पहले ही कह दिया कि वह अपने मन से शाल्वराज को वर चुकी है, इस कारण इस नये पति की भार्या नहीं बन सकेगी । इस पर भीष्म ने उसे जाने की स्वीकृति दे दी, परन्तु वह कन्या जब शाल्वराज के पास पहुँची तो उसने लड़की को अशुद्ध मान अस्वीकार कर दिया । इस पर वह पुनः भीष्म के पास लौट आयी और बोली कि वह स्वयं उससे विवाह कर ले । भीष्म वचनबद्ध था, अतः ऐसा कर नहीं सका । इससे वह परशुराम के पास गयी और परशुराम इसे भीष्म की दुष्टता समझ उससे लड़ने चले आये । परशुराम बूढ़ा हो गया था । भीष्म पूरे यौवन पर था । वह उसको परास्त नहीं कर सका । इस पर काशिराज की यह कन्या चिता में जलकर भस्म हो गई । विचित्रवीर्य के साथ अन्य दोनों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लड़कियों का विवाह कर दिया गया। दोनों का नाम अम्बिका, अम्बालिका था।

विचित्रवीर्य की इनसे सन्तान नहीं हुई। वह अति दुर्बल होने से और दोनों पत्नियों के सुन्दर, यौवन-सम्पन्न होने के कारण बीमार हो गया तथा मर गया।

विचित्रवीर्य के मर जाने पर भी भीष्म ने विवाह नहीं किया। उसने सत्यवती को, अपना वंश चलाने के लिये, अपनी दोनों पतोहुओं को नियोग से सन्तान उत्पन्न करने के लिये कह दिया।[1]

वासुदेव कृष्ण

यदु वंश एवं पुरु वंश इस प्रकार चन्द्र वंश की दो शाखायें थीं। ययाति-पत्नी देवयानी के पुत्र यदु ने जब ययाति को अपना यौवन देना पसन्द नहीं किया तो ययाति ने उसको तथा उसकी माता को राज्य से निकाल दिया। यदु अपनी माता तथा भाइयों के साथ सौराष्ट्र में जाकर बस गया और उसने वहीं अपना राज्य जमा लिया। यदु के नाम से यदु वंश चला और पुरु, जिसने अपने पिता को अपना यौवन उधार दिया था, ययाति का उत्तराधिकारी बना। उसके नाम से पुरुवंश चला। पुरुवंश में ही एक तेजस्वी राजा कुरु हुआ है। उससे यह वंश कौरव वंश हो गया।

दूसरी ओर यदु से यदु वंश चला। इस वंश की भी कई उपशाखायें हो गयी थीं। इसमें वृष्णि, भोज और अन्धक मुख्य थीं। वृष्णिवंश के राजकुमार वसुदेव की सगाई मथुरा के देवक नाम के क्षत्रिय की लड़की देवकी से हो गयी थी।

---

१. यदि इतिहास का कुछ भी अर्थ है तो यह उक्त दोनों कथाओं (दुष्यन्त तथा महाराज शान्तनु की) से अधिक कोई वृत्त पूर्ण नहीं कहा जा सकता। इन वृत्तान्तों से जहाँ तत्कालीन आचार-विचार का ज्ञान होता है, वहाँ उसके साथ ही चन्द्रवंश की तथा उस काल के समाज की पतितावस्था का कारण भी स्पष्ट हो जाता है।

दुष्यन्त ने घोर पाप किया था। इस पाप का निराकरण कुछ सीमा तक भरत की श्रेष्ठ शिक्षा ने किया। भरत बहुत ही योग्य और वीर सम्राट् सिद्ध हुआ। इस पर भी तब की पतितावस्था की परछाईं भरत के परिवार पर पड़ी रही। भरत की तीन रानियों से नौ पुत्र हुए। वे राजा के आचार-विचार के नहीं हुए। राजा ने उनका तिरस्कार किया और रानियों ने उनको मरवा डाला।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देवक उग्रसेन का छोटा भाई था। उग्रसेन मथुरा का राजा था, परन्तु उग्रसेन का लड़का कंस बहुत ही बलशाली एवं दुष्ट प्रकृति का था। वह पिता के काल में ही स्वयं राजा बन बैठा। कंस को किसी ने भविष्यवाणी कर बताया कि उसकी चचेरी बहिन देवकी का पुत्र उसको मारेगा। इससे कंस ने देवकी एवं उसके पति वसुदेव को पकड़कर बन्दी बना लिया, जिससे वह उसकी सन्तानों पर अधिकार रख सके और यथासम्भव उनकी बाल्यकाल में ही हत्या करा सके।

देवकी के घर एक-एक कर आठ सन्तानें हुईं और कंस ने उन सबकी जन्म होते ही हत्या कर डाली। आठवीं सन्तान के समय एक घटना घट गयी। जिस समय यह सन्तान उत्पन्न हुई, तब मध्य रात्रि थी। इस सन्तान को कुछ लोगों के षड्यन्त्र से बचाने का प्रबन्ध हो चुका था। बालक होने के समय बन्दी-गृह का द्वारपाल सो गया और वसुदेव बालक को लेकर बन्दीगृह से बाहर निकल गया। प्रबन्ध के अनुसार बालक को नन्दग्राम में पहुँचा दिया गया और नन्द की नवजात कन्या को लाकर देवकी के पास लिटा दिया गया।

अगले दिन कंस को पता चला तो वह आया और उस लड़की को देवकी की सन्तान समझ मारकर चला गया।

परन्तु शान्तनु की बात तो अत्यन्त ही विलक्षण हुई। पहले गंगा का पुत्रों की, एक के बाद दूसरे की हत्या करते जाना, शन्तनु का आँखें मूंदे चुप रहना, उसके पश्चात् वृद्धावस्था में कामाग्नि से पीड़ित हो पुत्र को झूठ कहने लगना कि उसको वंश की चिन्ता लग रही है, ये कुछ उदाहरण हैं उस काल की पतित अवस्था के। फिर भीष्म का अपने छोटे भाई के लिये राक्षस विवाह को ही सर्व-श्रेष्ठ मानना, यह सब प्रकट करता है कि उस काल में धर्म, स्मृति इत्यादि के अर्थ ही बदल दिये गये थे। अधर्म आचरण को ही धर्म माना जाने लगा था।

स्मृति का कथन सत्य हुआ कि इस प्रकार के विवाह से, जैसा कि विचित्र-वीर्य का हुआ था, धर्मनिष्ठ, ओजस्वी और शूरवीर सन्तान नहीं हो सकती।

शान्तनु का सत्यवती से विवाह तो प्राजापत्य विवाह था, जो प्रायः वैश्यों में होता था और विचित्रवीर्य का विवाह राक्षसी था और इसकी सन्तान निर्लज्ज, झूठ बोलने वाली और धर्मविहीन हुई। इस पर एक बात और भी हुई कि अम्बिका का मन नियोग के समय नियोग के साथी से घृणा से भरा हुआ था।

परिणामस्वरूप धृतराष्ट्र उत्पन्न हुआ जो पूर्ण महाभारत के युद्ध का कारण हुआ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देवकी का यह पुत्र कृष्ण था। नन्द ने इसका पालन-पोषण किया। कृष्ण अभी शिशु-मात्र ही था कि उसके तेज एवं बल की प्रशंसा कंस तक पहुँचने लगी।

एक दिन यशोदा शिशु कृष्ण को, धूप से बचाने के लिये उसे एक छकड़े के नीचे सुला, नदी पर स्वयं जल लेने गयी हुई थी। शिशु की नींद खुली तो वह प्रसन्नता में हाथ-पाँव मारने लगा। इस उछल-कूद में पाँव के अँगूठे से छकड़े को धक्का लगा तो वह उलट गया। जब गाँव के लोगों ने यह देखा तो बालक के बल का अनुमान लगा वे चकित रह गये।

कंस ने यह कथा सुनी तो उसने इस बालक को मार डालने का यत्न किया, परन्तु वह सफल न हो सका।

वसुदेव की एक अन्य पत्नी थी, जिसका नाम रोहिणी था। उसके भी एक पुत्र था, जिसका नाम बलराम था। जब कृष्ण चार-पाँच वर्ष की आयु का था तो बलराम को भी वहाँ भेज दिया गया। इससे कंस का सन्देह और सुदृढ़ हो गया कि नन्द का लड़का भी वसुदेव से सम्बन्ध रखता है। इस पर उसने कृष्ण को मारने का कई बार यत्न किया, परन्तु किसी-न-किसी प्रकार सब प्रयत्न असफल रहे। कृष्ण का एक कार्य तो कंस को अत्यन्त भयभीत करने वाला सिद्ध हुआ। वृन्दावन के एक तालाब के किनारे एक कालिय नाग रहता था। यह अतिं भयंकर जीव था और अकेले-दुकेले मानव को देखता तो मारकर खा जाता था। सब लोग उससे डरते थे। एक दिन कृष्ण वहाँ पहुँचा तो वह कृष्ण को पकड़ने के लिये लपका। कृष्ण कूदकर उसकी पीठ पर चढ़ गया और उसको लगा नचाने। जब यह नृत्य बार-बार होने लगा तो नाग दुःखी हो उठा। इस पर कृष्ण ने उसको कह दिया, 'तुम यहाँ से चले जाओ, नहीं तो मैं तुमको मार डालूंगा।' महाभारत में इस विषय में लिखा है--

ह्रदे नीपवने तत्र क्रीडितं नागमूर्धनि।
कालियं शासयित्वा तु सर्वलोकस्य पश्यतः।
विजहार ततः कृष्णो बलदेवसहायवान्।

महा भा० सभा० ३८ दाक्षिणात्य पाठ

अर्थात्--वृन्दावन में कदम्ब वन में एक ताल था। वहाँ वह कालिय नाग के सिर पर चढ़कर नृत्य करने लगा। तदनन्तर उसने सबके सामने उसको आदेश दिया कि वह अन्यत्र चला जाये।

बलराम के साथ मिलकर कृष्ण अनेक शौर्य के कार्य करने लगा तो कंस ने इन दोनों को मरवा डालने का एक षड्यन्त्र रचा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मथुरा में पहलवानों का एक दंगल बुलाया। उसमें कृष्ण एवं बलराम को भी चुनौती भेज दी। यद्यपि नन्द एवं यशोदा उनके वहाँ जाने को पसन्द नहीं करते थे, परन्तु दोनों भाई चुनौती को शुभ अवसर मान वहाँ जा पहुँचे।

मल्ल भूमि के द्वार पर कंस ने एक महान् आकार वाला हाथी खड़ा कर रखा था। हाथी के महावत को आज्ञा थी कि कृष्ण, बलराम आयें तो हाथी उन पर छोड़ दे। कृष्ण इस चाल को समझ गये और वह लपककर हाथी की पूंछ पकड़ उसकी पीठ पर चढ़ गये तथा महावत को मार हाथी को भी मार डाला। इससे तो कंस विचलित हो उठा।

कंस ने कई पहलवान इन दोनों पर एक साथ छोड़ दिये, परन्तु इन्होंने न केवल उनको पछाड़ दिया, प्रत्युत एक चाणूर नाम के पहलवान को एक ही घूंसे से मार डाला। यह देख सब पहलवान भाग खड़े हुए। अब कृष्ण ने कंस को ललकारा। कंस स्वयं लड़ना नहीं चाहता था और उठकर मल्ल-भूमि से भाग जाना चाहता था, परन्तु कृष्ण ने लपककर उसको पकड़कर भूमि पर चित पटक दिया तथा घूंसों एवं लातों से ही उसकी हत्या कर दी।

इससे पहले कृष्ण केशी नाम के दैत्य को मार चुका था। कंस के मारे जाने के पश्चात् उग्रसेन को मथुरा का राज्य सौंप दिया गया। उग्रसेन एक दुर्बल प्राणी था। वह मथुरा का राज्य कर नहीं सका।

कंस का श्वसुर था जरासंध। उसकी दो लड़कियाँ कंस से विवाही हुई थीं। अतः उनके विधवा हो जाने पर जरासंध ने मथुरा पर आक्रमण कर दिया। कृष्ण और बलराम मथुरा की रक्षा करते रहे। सोलह बार आक्रमण हुआ तथा हर बार कृष्ण एवं बलराम ने मथुरा की रक्षा की। जरासंध बार-बार आक्रमण करता था। अन्त में कृष्ण मथुरा की रक्षा कर सकना असम्भव मान उग्रसेन को भी सपने साथ द्वारिका ले गया।

कृष्ण और बलराम ने उज्जयिनी के एक अति विद्वान् ब्राह्मण संदीपनि से शिक्षा प्राप्त की और फिर द्वारिका में रहने लगे।

अनेकानेक युद्धों में कृष्ण की योग्यता की प्रसिद्धि होने लगी तो भारत के नरेश उसका आदर करने लगे। द्वारिका उन्नति की ओर अग्रसर हुई। कृष्ण द्वारिका के सुप्रबन्ध में हाथ बँटाने लगा था।

इन दिनों भारत के उत्तर में हिमालय के पार्श्व में एक दैत्य भौमासुर ने बलशाली राज्य स्थापित कर लिया था। भौमासुर का दूसरा नाम नरकासुर था। यह एक ओर तो मानवों तथा दूसरी ओर देवताओं को कष्ट पहुँचाने लगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनकी धन-सम्पदा और सुन्दर स्त्रियों को लूट-लूटकर वह अपने यहाँ जमा करने लगा। एक वृहत् सेना को एकत्रित कर वह अपनी रक्षा कर रहा था। देवलोक की समस्त अप्सराओं, गन्धर्वों की कन्याओं और मानवों की सुन्दर कन्याओं का हरण कर वह अपने प्राग्ज्योतिषपुर के प्रासाद में रखे हुए था। सब ओर त्राहि-त्राहि मच गयी। इससे देवता सबसे अधिक कष्ट में थे। इस पर भी वे युद्ध करने की या तो क्षमता नहीं रखते थे अथवा युद्ध करना नहीं चाहते थे।

एक दिन भौमासुर ने इन्द्र को उत्तेजित करने के लिये उसकी माँ अदिति के कुण्डल चुरा लिये। अदिति ने इन्द्र को कहा। इन्द्र ने इस असुर को मारने की एक योजना विचार की। उसका विचार था कि कृष्ण नव-युवक है और वह भौमासुर को द्वन्द्व-युद्ध में ललकारकर मार डालेगा। अतः इन्द्र अपने विमान में कृष्ण से सहायता माँगने द्वारिका जा पहुँचा। इन्द्र को आया देख उसका भारी स्वागत किया गया और उसके आने का कारण पूछा गया। जब इन्द्र ने अपने आने का प्रयोजन बताया तो कृष्ण ने स्थान के ऊबड़-खाबड़ होने की कठिनाई का वर्णन किया और इस कठिनाई को पार करने के लिए दो वस्तुएँ माँग लीं—एक गरुड़-विमान और दूसरे सुदर्शन चक्र।

यद्यपि इन्द्र इन वस्तुओं को देना नहीं चाहता था, परन्तु जब कृष्ण ने बताया कि इनके बिना उस पहाड़ी देश में युद्ध चल नहीं सकेगा तो इन्द्र को विवश होकर दोनों पदार्थ लाकर देने पड़े।

कृष्ण गरुड़ पर सवार हो और सुदर्शन चक्र लेकर भौमासुर से लड़ा। कृष्ण ने भौमासुर की पूर्ण नगरी का ध्वंस कर डाला तथा भौमासुर को मौत के घाट उतार दिया। जब प्राग्ज्योतिषपुर पर कृष्ण का अधिकार हुआ तो उसके दुर्ग में से कई प्रकार के रत्न, अपार स्वर्ण, रजत और संसार भर की सुन्दर स्त्रियाँ निकलीं। कृष्ण स्त्रियों और पूर्ण धन-सम्पदा तथा रत्न भी द्वारिका ले गया।

पहले वह द्वारिका गया। वहाँ से वह रुक्मिणी को भी अपने साथ गरुड़-विमान पर बैठा, देवलोक जा पहुँचा। इन्द्र की माँ के कुण्डल पहुँचाने थे। इन्द्र भौमासुर की मृत्यु का समाचार पा अति प्रसन्न हुआ और कृष्ण तथा रुक्मिणी को माता अदिति के पास ले गया। अदिति ने दोनों का बहुत आदर-सत्कार किया।

कृष्ण रुक्मिणी को लेकर मेरु पर्वत के शिखर पर चढ़ गया और वहाँ से उसने देवलोक के दर्शन किये। उसने देखा कि ब्रह्मा का स्थान कहाँ है तथा कुबेर की अलकापुरी किधर है? अन्य सब देव-स्थान भी देखे।

कृष्णा ने अपने यौवन काल में—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूदिता मौरवाः पाशा निशुम्भनरकौ हतौ
कृतक्षेमः पुनः पन्थाः पुरं प्राग्ज्योतिषं प्रति ।
शौरिणा पृथिवीपालास्त्रासिता भरतर्षभ
धनुषश्च प्रणादेन पाञ्चजन्यस्वनेन च ॥

महा भा० सभा० ३८ दाक्षिणात्यपाठ

पुरा दैत्य के पाश काट दिये, निशुम्भ और नरकासुर को मार डाला तथा प्राग्-ज्योतिष का मार्ग निष्कण्टक कर दिया। इसने अपने धनुष की टंकार और पाञ्चजन्य शंख की हुंकार से समस्त भूपालों को आतंकित कर दिया।

रुक्मिणी के विवाह में रुक्मिणी का भाई रुक्म बाधक था। कृष्ण ने रुक्म को हराकर रुक्मिणी से विवाह किया और उसको अपनी पटरानी बनाया।

इस प्रकार एक शौर्यवान योद्धा की ख्याति प्राप्त करने के उपरान्त ही कृष्ण का घनिष्ठ सम्पर्क कुरुवंशियों से हुआ।

कौरव-पाण्डव युद्ध

विचित्रवीर्य की अकाल मृत्यु के कारण परम्परा चलाने वाला कोई नहीं रहा था। भीष्म अपने पिता के दूसरे विवाह के हेतु वचन दे चुका था कि वह आजन्म विवाह नहीं करेगा।

विचित्रवीर्य के विवाह के लिये भीष्म ने काशिराज की कन्याओं का अपहरण किया था। यह विवाह शास्त्रानुसार आसुरी था और इसका सम्भावित प्रभाव होने वाली सन्तान पर हम लिख चुके हैं। आसुरी विवाह की सन्तान निर्लज्ज, झूठ बोलने वाली, सत्य (ब्रह्म) धर्म की विरोधी होती है। विवाह का यह प्रभाव सन्तान पर क्यों होता है ? इसका सम्भवतया कारण माँ के मन पर अपहरण के दूषित संस्कार ही होते हैं।

यह प्रभाव अम्बिका एवं अम्बालिका के मन पर हुआ होगा अथवा नहीं, एक औपकाल्पनिक (hypothetical) प्रश्न है। इसका उत्तर आगे घटने वाली घटना ही दे सकती है।

इन दोनों कन्याओं के घर में विचित्रवीर्य से तो सन्तान नहीं हुई, परन्तु विचित्रवीर्य से विवाह के पश्चात् एक अनिच्छित व्यक्ति के साथ इनका नियोग कराया गया। वह व्यक्ति स्वयं अपने विषय में लिखता है—

यदि पुत्रः प्रदातव्यो मया भ्रातुरकालिकः ।
विरूपतां मे सहतां तयोरेतत् परं व्रतम् ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यदि मे सहते गन्धं रूपं वेषं तथा वपुः।
अद्यैव गर्भं कौसल्या विशिष्टं प्रतिपद्यताम् ॥

महा भा० आदि० १०४—४६, ४७

महर्षि द्वैपायन व्यास जी को अम्बिका से नियोग के लिये कहा गया। तब व्यासजी ने कहा कि यदि मुझसे यह कार्य कराना है तो उस देवी को मेरे असुन्दर रूप को देखकर भय नहीं करना चाहिये। यदि अम्बिका मेरे गन्ध, रूप और शरीर को सहन कर ले तो एक उत्तम बालक को जन्म देगी।

व्यासजी के शरीर का रंग काला, जटायें पिंगल, आँखें चमकीली, दाढ़ी-मूँछ भूरे रंग की थीं। जब यह ऋषि अम्बिका के पास गये तो उसने भयभीत हो आँखें मूँद लीं।

इस समागम का फल हुआ धृतराष्ट्र। यह चक्षुविहीन, निर्लज्ज, झूठा और धर्म-विरोधी स्वभाव वाला व्यक्ति था। इससे सत्यवती सन्तुष्ट नहीं हुई। उसने विचित्रवीर्य की दूसरी पत्नी अम्बालिका को नियोग के लिये कहा। उसको बहुत समझाया गया कि उसे भय नहीं करना चाहिये। किसी प्रकार की मन में चिन्ता अथवा निराशा अनुभव नहीं करनी चाहिये। इस पर भी जब व्यासजी उसके पास गये तो वह इतनी त्रसित हुई कि पीत-मुख हो निश्चल पड़ी रही।

अम्बालिका के भी एक पुत्र हुआ। वह पाण्डु वर्ण हुआ। सत्यवती को इस पुत्र पर भी सन्तोष नहीं हुआ। उसने अपनी पतोहू को एक अन्य बालक प्राप्त करने के लिये आग्रह किया। वह मान गयी, परन्तु अन्तिम समय में उसका मन नहीं माना और उसने अपनी दासी को महर्षि के पास भेज दिया। इस दासी के भी एक पुत्र हुआ। इस प्रकार इस नियोग कार्य से तीन बालक हुए—धृतराष्ट्र, पाण्डु एवं विदुर। राज्य के विषय में उत्तराधिकारी धृतराष्ट्र और पाण्डु ही थे। सत्यवती और भीष्म जी के विचार से यह निर्णय हुआ कि धृतराष्ट्र राजा होगा, परन्तु उसके स्थान पर पाण्डु राज्य करेगा और इन दोनों में से जिसका पुत्र पहले होगा, वही युवराज पद पायेगा।

यद्यपि विवाह धृतराष्ट्र का पहले हुआ था तो भी पाण्डु के पुत्र पहले हुआ। पाण्डु रुग्ण होने के कारण स्वयं सन्तान उत्पन्न करने में असमर्थ था। अतः उसकी दोनों पत्नियों ने नियोग से पाँच पुत्र प्राप्त किये। इनमें युधिष्ठिर सबसे बड़ा था। यह धृतराष्ट्र के पुत्र दुर्योधन से भी बड़ा था।

पाण्डु के पाँचों पुत्र वन में ही उत्पन्न हुए तथा वहीं पले। जब पाण्डु का देहान्त हो गया तो वे अपनी माता कुन्ती के साथ अपनी दादी एवं परदादी के पास आ गये। इनके आने से भीष्म ने अपने वचन के अनुसार युधिष्ठिर को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

युवराज बनाना चाहा, परन्तु तब तक धृतराष्ट्र के भी पुत्र उत्पन्न हो चुके थे। अतः धृतराष्ट्र की पत्नी तथा साले शकुनि ने इस निर्णय का विरोध किया। कलह उत्पन्न हो गयी।

यह कलह दिन-प्रतिदिन बढ़ती गयी। यहाँ तक कि दुर्योधन और उसके भाई (धृतराष्ट्र के पुत्र) पाण्डु-पुत्रों (युधिष्ठिर इत्यादि) के जान के शत्रु हो गये।

पाण्डुपुत्रों में भीम बहुत बलशाली था। उसके रहते दुर्योधन अपने चचेरे भाइयों का किसी प्रकार से भी अहित नहीं कर सकता था। अतः भीम को विष देकर मार डालने का यत्न किया गया। भीम शरीर से अति सुदृढ़ होने के कारण बच गया। विष से केवल वह अचेत ही हुआ। यह विष की घटना भीष्म तथा धृतराष्ट्र इत्यादि को पता चल गयी थी, परन्तु पुत्र मोह के वश वे दुर्योधन को दण्ड न दे सके। इससे दुर्योधन और उसके सम्मतिदाताओं एवं उसके मामा शकुनि का साहस बढ़ गया।

जब युधिष्ठिर को युवराज घोषित करने का विचार परिपक्व होने लगा तो दुर्योधन ने युधिष्ठिर को पृथक् राज्य देने का आग्रह करना आरम्भ कर दिया। धृतराष्ट्र और भीष्म ने भी सदा के कलह-क्लेश को मिटाने के लिये यही उचित समझा और पाण्डवों को वारणावत का राज्य देकर हस्तिनापुर से विदा कर दिया। परन्तु दुर्योधन ने, जो भवन उनके रहने के लिये वहाँ निर्माण कराया, वह लाख और अन्य तुरन्त जल उठने वाले पदार्थों का बना हुआ था। यह प्रासाद बहुत ही सुन्दर बना और ऐसा प्रतीत होता था कि ईंट, चूना, मिट्टी का बना हुआ है। वास्तव में दुर्योधन ने वह पाँचों पाण्डवों को उनकी माता सहित जीवित जला देने के लिये बनवाया था।

भवन का यह रहस्य युधिष्ठिर को मालूम हुआ तो उन्होंने भवन के भीतर से एक सुरंग बना ली, जो दूर गंगा तट पर जाकर निकलती थी। जब मकान को आग लगी तो पाँचों भाई अपनी माता सहित बचकर निकल गये।

उनका विचार था कि उनको बच गया देख दुर्योधन इत्यादि कौरव उनकी हत्या करवा डालेंगे और घोषित कर देंगे कि वे भवन में ही जल मरे हैं। इस कारण उन्होंने कुछ काल तक गुप्तवास करना ही उचित समझा। वे ब्राह्मण के वेश में गुप्त रूप से भ्रमण करते रहे।

वे अभी गुप्तवास में ही थे कि उनको महाराज द्रुपद की लड़की द्रौपदी के स्वयंवर की सूचना मिली। उस स्वयंवर में द्रौपदी से विवाह करने की एक अति कठिन शर्त रखी गयी थी। एक ऊँचे खम्भे के साथ एक कृत्रिम मछली लटकती हुई घूम रही थी। उसके नीचे एक चक्र घूम रहा था और भूमि पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक जल-कुण्ड था। जल-कुण्ड की ओर देखते हुए बाण द्वारा चक्र में से मछली की आँख को बींधना था।

इस स्वयंवर में देश-देशान्तर के अनेक राजा-महाराजा आये थे परन्तु सभी द्रौपदी को विवाह में प्राप्त करने की शर्त पूरी करने का यत्न कर विफल हो गये। पाँचों पाण्डव भी ब्राह्मण के वेश में इस उत्सव में उपस्थित थे। जब उन्होंने देखा कि स्वयंवर की शर्त को कोई पूर्ण नहीं कर रहा तो अर्जुन, जो इन पाँचों में सबसे योग्य धनुर्धर था, आगे बढ़ा और उसने इस शर्त को सहज ही पूर्ण कर दिया।

इस पर द्रौपदी ने जयमाला अर्जुन के गले में डाल दी, परन्तु द्रौपदी के भाई व अन्य क्षत्रियों ने द्रौपदी का विवाह एक निर्धन ब्राह्मण के साथ होते देख आपत्ति की। उन लोगों ने द्रौपदी को अर्जुन के साथ जाने में बाधा डाली। इस पर भीम और अर्जुन उन राजा-महाजाओं से भिड़ गये। परन्तु सब राजा-महाराजा मिलकर भी इन दोनों को, द्रौपदी को ले जाने से रोक नहीं सके। द्रौपदी का भाई प्रद्युम्न तो अपनी पूर्ण सेना को बुलाने वाला था, परन्तु कृष्ण और बलराम, जो स्वयंवर में आये हुए थे, प्रद्युम्न को रोककर कहने लगे, तुम्हारी बहिन स्वेच्छा से उनके साथ जा रही है। अतः तुमको बहिन की इच्छा का विरोध नहीं करना चाहिए। वे क्षत्रिय न सही, पर ब्राह्मण तो हैं। ब्राह्मण क्षत्रियों से अधिक श्रेष्ठ हैं।

बाद में कृष्ण वहाँ गया, जहाँ पाण्डु गुप्त रूप से ठहरे हुए थे और उसको पता चल गया कि ये पाण्डव हैं, जो वारणावत की अग्नि से बच गये हैं। पाण्डु की पत्नी कुन्ती कृष्ण की सगी बुआ थी। वह वसुदेव की बहिन थी जिसको महाराज कुन्तिभोज ने गोद लिया हुआ था। अतः कृष्ण उनको पहचान कर बहुत प्रसन्न हुआ और अपनी बुआ के चरण-स्पर्श कर, नमस्कार कर उनको प्रकट हो जाने की सम्मति देने लगा।

महाराजा द्रुपद भी इस समाचार से अति प्रसन्न हुए। द्रौपदी का विवाह पाँचों भाइयों से कर दिया गया। इसके पश्चात् पाण्डवों को पुनः हस्तिनापुर में मानयुक्त स्थान दिलवाया गया। इस बार धृतराष्ट्र पर कृष्ण, द्रुपद और अन्य सम्बन्धियों ने दबाव डालकर युधिष्ठिर इत्यादि को खाण्डवप्रस्थ का राज्य दिला दिया। उनको अपने राज्य की राजधानी इन्द्रप्रस्थ बनाने के लिये कहा गया।

पाण्डवों ने अपने सु-प्रबन्ध और धर्मयुक्त व्यवहार से अपने राज्य की बहुत उन्नति की और इसको सेना तथा धन-धान्य से परिपूर्ण कर दिया। इस काल में कृष्ण और अर्जुन में घनिष्ठ मैत्री का व्यवहार बन गया और फिर कृष्ण की बहिन सुभद्रा का विवाह अर्जुन से हो गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस प्रकार उन्नतावस्था में पहुँच कर युधिष्ठिर ने राजसूय यज्ञ करने का विचार किया। कृष्ण को बुलाया गया और उसकी सम्मति ली गयी। कृष्ण अनेक समर जीत चुका था और उसकी, एक राजनीतिज्ञ के रूप में ख्याति भारत-खण्ड में विस्तार पा चुकी थी।

कृष्ण ने युधिष्ठिर के विचार का समर्थन किया, परन्तु उसकी सम्मति थी कि उसके यज्ञ के निर्विघ्न समाप्त होने में तीन व्यक्ति बाधक होंगे—एक दुर्योधन, दूसरा शिशुपाल एवं तीसरा जरासंध। इस कारण पहले इनको पृथक्-पृथक् पराजित कर लिया जाये, तदुपरान्त इस यज्ञ की घोषणा करनी चाहिये। इस सम्बन्ध में विचार किया गया और सबसे पहले जरासंध को निःशेष करने के लिये भीम को लेकर कृष्ण और अर्जुन जरासंध के राज्य की राजधानी में जा पहुँचे। जरासंध मगध देश में राज्य करता था। उसका निवास गिरिव्रज नगर में था। ये तीनों भेष बदल कर वहाँ जा पहुँचे और जरासंध को मल्ल-युद्ध की चुनौती देने लगे।

जरासंध और भीम में मल्ल-युद्ध हुआ और चौदह दिन के निरन्तर मल्ल-युद्ध के पश्चात् भीम ने जरासंध को मार डाला।

जरासंध की मृत्यु के पश्चात् दुर्योधन को अपने पक्ष में करने के लिये महर्षि व्यास को धृतराष्ट्र के पास भेजा गया। महर्षि व्यास ने धृतराष्ट्र को समझाया, परन्तु दुर्योधन ने युधिष्ठिर के यज्ञ में बाधा डालने की घोषणा कर दी। इस पर द्रोणाचार्य और भीष्म ने युधिष्ठिर के पक्ष में से लड़ने की धमकी दे दी। विवश दुर्योधन को मानना पड़ा।

युधिष्ठिर ने तब पूर्ण ज्ञात पृथिवी के राजा-महाराजाओं को अपने अनुकूल कर लिया और राजसूय यज्ञ सम्पन्न किया। शिशुपाल ने यज्ञ में विघ्न डालने का प्रयत्न किया, परन्तु कृष्ण ने उसको मार डाला।

यज्ञ की सफलता और पृथिवी-भर के नरेशों को युधिष्ठिर की अधीनता स्वीकार करते देख दुर्योधन की छाती पर साँप लोटने लगे। वह यज्ञ से चिन्ता और शोक से भरा हुआ हस्तिनापुर लौटा।

दुर्योधन का मामा एक सिद्धहस्त जुआरी था। अतः उसने दुर्योधन के साथ मिलकर षड्यन्त्र रचा और युधिष्ठिर को हस्तिनापुर बुला लिया। वहाँ उसको जुआ खिलाकर उसका सब राजपाट, भाई और द्रौपदी को भी जीत लिया। इस जीत में एक अन्यायपूर्ण बात हो गयी थी। युधिष्ठिर पहले स्वयं को हारा, बाद में अपने भाइयों को तथा अन्त में द्रौपदी को। युक्ति से यह बात अशुद्ध थी, इस कारण यह खेल निरर्थक समझ लिया गया। परन्तु एक-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक बाज़ी और लगाने की शर्त हो गयी। उसमें यह निश्चय हुआ कि जो जीते, वह पूर्ण राज्य का भागी बने और हारने वाला बारह वर्ष तक वन में रहे तथा तेरहवें वर्ष में गुप्तवास करे। यदि गुप्तवास में न पकड़ा जाये तो राज्य पा जायेगा, अन्यथा वह पुनः तेरह वर्ष तक उसी प्रकार वन में विहार करे। युधिष्ठिर इस बार फिर हार गया।

युधिष्ठिर को द्रौपदी और भाई समझाते रहे कि वह जुआ खेलना बन्द कर दे, परन्तु युधिष्ठिर नहीं माना और परिणामस्वरूप राज्य-सम्पदा सब-कुछ हार गया। तत्पश्चात् पाण्डव द्रौपदी सहित वन को चले गये। वन में भी दुर्योधन उनको कष्ट पहुँचाता रहा, परन्तु पाण्डवों ने ज्यों-त्यों कर वनवास की शर्त पूर्ण कर दी।

जब वे अपना राज्य वापस माँगने लगे तो दुर्योधन ने राज्य वापस नहीं किया। इन तेरह वर्षों में दुर्योधन ने युधिष्ठिर की बहुत निन्दा की थी। युधिष्ठिर के जुए में सब-कुछ हारने पर देश के नरेशों के मन में युधिष्ठिर की महिमा बहुत-कुछ कम हो चुकी थी। इस पर भी जब युद्ध होना अनिवार्य हो गया तो पाण्डवों के सब सम्बन्धी पाण्डवों की सहायता के लिये आ गये।

यद्यपि पाण्डवों ने जुआ खेला था, परन्तु उन्होंने किसी दूसरे का अधिकार नहीं छीना था। कौरवों ने तो पाण्डवों के साथ आरम्भ से ही दुर्व्यवहार किया था और जुए में भी कपट का खेल खेला था। जुए की अन्तिम बाज़ी में जो शर्त हुई थी, उसको पूर्ण करने पर भी दुर्योधन की ओर से वचन भंग हुआ। यह सब बात कृष्ण, व्यास, नारद तथा अन्य विद्वानों ने समझायी थी, परन्तु दुर्योधन नहीं माना। उसको अभिमान हो गया था कि उसका पक्ष प्रबल है।

पाण्डवों की ओर से सात अक्षौहिणी सेना एकत्रित हुई तथा कौरवों की ओर से ग्यारह अक्षौहिणी सेना। कुरुक्षेत्र में युद्ध हुआ। सब बड़े-बड़े राजा-महाराजाओं और दोनों ओर की पूर्ण सेना का विनाश हो गया।

इस युद्ध में सब प्रकार के अस्त्र-शस्त्र और नीति तथा छल-कपट का भी व्यवहार हुआ। दुर्योधन की हत्या के पश्चात् अश्वत्थामा ने रात के समय पाण्डवों के शिविर को आग लगा दी और वहाँ पर सोये हुए सब प्राणियों की हत्या कर दी। घटनावश पाण्डव उस रात पूजन के लिये कहीं गये हुए थे, इस कारण बच गये। शेष सब मारे गये।

भारत के इतिहास में यह एक अति महान् भयंकर घटना घटी थी।*

* भगवान् कृष्ण ने गीता में आसुरी सम्पत्ति वालों के लक्षण इस प्रकार लिखे हैं—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च जना न विदुरासुराः ।
न शौचं नापि चाचारो न सत्यं तेषु विद्यते ।।
असत्यमप्रतिष्ठं ते जगदाहुरनीश्वरम् ।
अपरस्परसंभूतं किमन्यत्कामहैतुकम् ।।
एतां दृष्टिमवष्टभ्य नष्टात्मानोऽल्पबुद्धयः ।
प्रभवन्त्युग्रकर्माणः क्षयाय जगतोऽहिताः ।।
काममाश्रित्य दुष्पूरं दम्भमानमदान्विताः ।
मोहाद्गृहीत्वासद्ग्राहान्प्रवर्तन्तेऽशुचिव्रताः ।।
चिन्तामपरिमेयां च प्रलयान्तामुपाश्रिताः ।
कामोपभोगपरमा एतावदिति निश्चिताः ।।
आशापाशशतैर्बद्धाः कामक्रोधपरायणाः ।
ईहन्ते कामभोगार्थमन्यायेनार्थसञ्चयान् ।।
इदमद्य मया लब्धमिमं प्राप्स्ये मनोरथम् ।
इदमस्तीदमपि मे भविष्यति पुनर्धनम् ।।
असौ मया हतः शत्रुर्हनिष्ये चापरानपि ।
ईश्वरोऽहमहं भोगी सिद्धोऽहं बलवान्सुखी ।।
आढ्योऽभिजनवानस्मि कोऽन्योऽस्ति सदृशो मया ।
यक्ष्ये दास्यामि मोदिष्य इत्यज्ञानविमोहिताः ।।
आत्मसंभाविताः स्तब्धा धनमानमदान्विताः ।
यजन्ते नामयज्ञैस्ते दम्भेनाविधिपूर्वकम् ।।
अहंकारं बलं दर्पं कामं क्रोधं च संश्रिताः ।
मामात्मपरदेहेषु प्रद्विषयन्तोऽभ्यसूयकाः ।।

भ० गी० १६—७ से १५,१७,१८

अर्थात्—असुर लोग नहीं जानते कि क्या करना चाहिये और क्या नहीं करना चाहिये। उनमें शुद्धता नहीं रहती, न आधार रहता है और न सत्य।

वे लोग समझते हैं कि सारा जगत् ही असत्य है। अप्रतिष्ठित और निराधार है। बिना परमेश्वर के है। यह जगत् भोग-विलास के अतिरिक्त कुछ नहीं। किसी का आश्रय इसमें नहीं (अर्थात् कोई किसी को नहीं बनाता)। ऐसी बुद्धि वाले, अल्प मति, नष्ट होने वाले दुष्ट कार्य करते हुए जगत् का क्षय करने में कारण होते हैं।

काम-क्रोध, जो कभी भी पूर्ण नहीं होते, की पूर्ति के लिये दम्भ, मान,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मद से भरे रहते हैं। झूठा विश्वास और कल्पना करके बुरे कर्म करते हैं।

आमरणान्त सुख भोगने की चिन्ता में फँसे हुए कामोपभोग में डूबे हुए सैकड़ों आशा-पाशों से जकड़े हुए, काम-क्रोध परायण, सुख लूटने के लिये अन्याय से बहुत-सा अर्थ संचय करने की तृष्णा करते हैं।

मैंने आज यह पा लिया है, कल वह पा लूंगा, यह मेरा है और वह भी मेरा होगा; इसको मैंने मार लिया तथा उसको भी परास्त कर लूंगा।

मैं ईश्वर हूँ। मैं भोग करने वाला हूँ, मैं सिद्ध हूँ, बलवान हूँ, सुखी हूँ, सम्पन्न हूँ, कुलीन हूँ तथा मेरे समान और कोई नहीं।

आत्म-प्रशंसा करने वाले, ऐंठ से बर्ताव करने वाले, धन और मान के मद से संयुक्त, दम्भ से कल्याण (यज्ञ) कार्य का दिखावा करते हैं। अहंकार के बल से, दर्प से, काम और क्रोध से फूल कर द्वेष करने वाले असुर होते हैं।

भगवान् कृष्ण कहते हैं कि परमात्मा ऐसे लोगों को घोर नरक में डालकर जन्म-जन्मान्तर तक इतर योनियों में डालता रहता है।

असुर लक्षणों के प्रकाश में कौरव-पाण्डवों की जीवन-कथा पढ़ने से भारत युद्ध एक अति भयंकर युद्ध प्रतीत होगा। इसमें अठारह अक्षौहिणी सेना का नाश हुआ था। एक अक्षौहिणी सेना में २१,८७० रथ, ११,८७० हाथी, १,०९,३५० सैनिक और ६५,६१० घुड़सवार होते थे।

यदि रथ में एक योद्धा और एक सारथी माना जाये और हाथी पर भी एक महावत और एक योद्धा समझा जाये तो एक अक्षौहिणी सेना में ४३,७४० + ४३,७४० + १,०९,३५० + ६५,६१० = २,६२,४४० मनुष्य लड़ने वाले रहे होंगे अर्थात् अठारह अक्षौहिणी सेना में २६२४४० × १८ = ४७,२३,९२० पैदल मनुष्य रहे होंगे, जो सबके सब मारे गये। यह कम-से-कम संख्या रही होगी।

इस भयंकर युद्ध में इतना बड़ा हत्याकाण्ड और केवल १८ दिन में होने के कारण, इतिहास ने इसका बहुत स्पष्ट रूप में वर्णन किया है।

इस युद्ध में दुर्योधन का व्यवहार ठीक आसुरी प्रवृत्ति वालों का-सा रहा है। यदि दुर्योधन के व्यवहार का विश्लेषण किया जाये तो निम्न घटनाएँ उसके उक्त स्वभाव को प्रकट करती हैं—

(१) परिवार के पुरखाओं के निर्णय अनुसार युधिष्ठिर सबसे बड़ा होने के कारण राज्य का अधिकारी था। धृतराष्ट्र और दुर्योधन ने यह निर्णय उलट दिया;

(२) दुर्योधन ने भीम को मार डालने का षड्यन्त्र किया;

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(३) पाँचों भाइयों को उनकी माता सहित लाख-गृह में जला देने का यत्न किया;

(४) कपट पूर्ण जुआ खेला;

(५) वन में उनको मार डालने का यत्न किया;

(६) विराट नगर में सेना भेज उनको पकड़वाने का यत्न किया;

(७) जुए की शर्त के अनुसार वन से लौटने पर उनको राज्य वापिस नहीं किया;

(८) जुए के उपरान्त द्रौपदी को भरी सभा में नग्न करने का यत्न किया और पाँचों भाइयों के सम्मुख उसका भारी अपमान किया;

(९) धृतराष्ट्र, गांधारी, भीष्म इत्यादि घर के पुरखाओं के वचन को न मानकर अनादर किया। कृष्ण, व्यास, द्वैपायन, नारद, विदुर इत्यादि विद्वानों की सम्मति भी नहीं मानी।

इस पर युद्ध हुआ और कृष्ण की सम्मति से युद्ध जीतने के लिए युद्ध के कुछ एक नियमों का भंग भी हुआ। मृत्यु के समय दुर्योधन का उन नियम भंग करने को महापाप मानना, उसकी बुद्धि के विकृत होने को ही प्रकट करता है।

मरने से पूर्व दुर्योधन संजय को, जो उसका भीम से युद्ध देख रहा था, कहने लगा—

आख्यातव्यं मदीयानां येऽस्मिञ्जीवन्ति संयुगे ॥
यथाहं भीमसेनेन व्युत्क्रम्य समयं हतः।
बहूनि सुनृशंसानि कृतानि खलु पाण्डवैः ॥
भूरिश्रवसि कर्णे च भीष्मे द्रोणे च श्रीमति।
इदं चाकीर्तिजं कर्म नृशंसैः पाण्डवैः कृतम् ॥
येन ते सत्सु निर्वेदं गमिष्यन्ति हि मे मतिः ॥
अधर्मेण जयं लब्ध्वा को नु हृष्येत पण्डितः ॥
यथा संहृष्यते पापः पाण्डुपुत्रो वृकोदरः ॥

गदा पर्व ६४-१०,११,१२,१३,१४

इन श्लोकों के अर्थ हैं—

मृत्यु शय्या पर लेटे हुए भी दुर्योधन ऐसा कहता गया—मेरे पक्ष के वीरों में से जो लोग इस युद्ध में जीवित बच गये हों, उनको यह बताना कि भीम ने गदा-युद्ध में नियमों का उल्लंघन कर मुझे मारा है।

पाण्डवों ने भूरिश्रवा, कर्ण, भीष्म तथा श्रीमान् द्रोणाचार्य को मार कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नृशंसतापूर्ण कर्म किये हैं। इन महानुभावों को अधर्म से मारकर पाण्डवों ने अकीर्ति-जन्य कार्य किया है। ये उसके लिये पश्चात्ताप करेंगे।

अधर्म से विजय प्राप्त कर किस बुद्धिमान पुरुष को हर्ष होगा, जैसा कि पाण्डुपुत्र भीमसेन को हो रहा है, इत्यादि।

गदा-युद्ध के समय कृष्ण के भाई बलराम भी वहाँ उपस्थित थे। उनके मनोद्गारों का संकेत हम नीचे देते हैं—

कुर्वन्नार्तस्वरं घोरं धिग्-धिग् भीमेत्युवाच ह ॥
अहो धिग् यद्धो नाभेः प्रहृतं धर्मविग्रहे।
नैतद् दृष्टं गदायुद्धे कृतवान् यद् वृकोदरः ॥
न चैष पतितः कृष्ण केवलं मत्समोऽसमः ॥
आश्रितस्य तु दौर्बल्यादाश्रयः परिभत्स्यते।
ततो लाङ्गलमुद्यम्य भीममभ्यद्रवद् बली ॥
तस्योर्ध्वबाहोः सदृशं रूपमासीन्महात्मनः।
बहुधातुविचित्रस्य श्वेतस्येव महागिरेः ॥
भ्रातृभिः सहितो भीमः सार्जुनैरस्त्रकोविदैः।
न विव्यथे महाराज दृष्ट्वा हलधरं बली ॥ (दाक्षिणात्यपाठ)
तमुत्पतन्तं जग्राह केशवो विनयान्वितः।
बाहुभ्यां पीनवृत्ताभ्यां प्रयत्नाद् बलवद्बली ॥

महा भा० गदा० ६०-४,५,८,९,११

दोनों भुजाओं को ऊपर उठाकर भयंकर आर्तनाद करते हुए बलराम ने भीमसेन से कहा, 'तुमको धिक्कार है! तुमने इस धर्म-युद्ध में नाभि से नीचे प्रहार किया है। यह गदा-युद्ध में कभी नहीं देखा गया। इस युद्ध के ये नियम हैं कि नाभि से नीचे आघात नहीं करना चाहिये। यह तुमने स्वेच्छाचार किया है।

इतना कहते-कहते बलराम जी को क्रोध चढ़ आया और उनकी आँखें लाल हो गयीं।

इस समय बलराम ने कृष्ण से कहा कि दुर्योधन बली था, वह मेरे समान बलशाली था। उसको भीमसेन ने, जो दुर्बल था, अन्याय से मारा है। इससे भीमसेन ने न केवल दुर्योधन को मारा है, प्रत्युत हम सब देखने वालों का भी अपमान किया है।

इतना कहते-कहते उसने अपना हलायुध उठाया और भीम की हत्या करने के लिये लपका।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परन्तु बलराम को इस प्रकार अपनी ओर आते देख भीम भयभीत नहीं हुआ, न ही उसने अपनी भूल स्वीकार की। कृष्ण ने भाई को दोनों बाँहों से पकड़ लिया और आगे नहीं बढ़ने दिया।

तत्पश्चात् कृष्ण ने भाई का समाधान करने के लिये कहा, यह ठीक है कि भीम ने अधर्म किया है, परन्तु यह अधर्म एक अधर्मी को मारने के लिये ही किया है।

इस दुर्योधन ने वीर अभिमन्यु को, जो कुरु और वृष्णि दोनों वंशों का रत्न था, वंचना से मारने के लिए कहा था। इसी की आज्ञा से कर्ण ने उसके धनुष को पीछे से आकर काट दिया और फिर शस्त्र-विहीन कर मार डाला।

कृष्ण ने यह भी समझाया कि दुर्योधन, कर्ण इत्यादि सब कौरव भीम को विष देकर मार डालने के प्रयत्न के अपराधी हैं। भीम की आँखों के सामने उसकी प्रिय भाभी का अपमान करने के अपराधी हैं। उसको अपने भाइयों और माता सहित जीवित जला देने के प्रयत्न के अपराधी हैं।

अधर्मी को मार कर भीम ने धर्म किया है, अधर्म नहीं। यदि युधिष्ठिर कपट से खेले जाने वाले जुए में सम्मिलित न होता तो महाभारत का युद्ध न होता। युधिष्ठिर दुर्योधन के कपटपूर्ण व्यवहार से अवगत था। इस कारण उस कपटी पर विश्वास कर उससे जुआ खेलने के लिये तैयार हो जाना, फिर जुआ खेलते-खेलते अपनी बुद्धि को खोकर राजपाट, भाइयों एवं पत्नी को दाव पर लगाना सब-के-सब युधिष्ठिर के पाप थे। इसका भी फल उसको मिला। पूर्ण परिवार इस युद्ध में स्वाहा हो गया।

भीष्म पितामह और द्रोणाचार्य का व्यवहार भी धर्म की कसौटी पर ठीक नहीं उतरेगा।

सबसे बड़ी बात यह हुई कि पूर्ण देश में क्षत्रिय वंश का विनाश हुआ। इससे देश में धर्म और मर्यादा का लोप हुआ। राम-रावण युद्ध में तो राक्षस एक भिन्न जाति थी और वे राक्षस भी आसुरी व्यवहार करने वाले बने तो युद्ध हुआ और आसुरी संस्कृति का समूलोच्छेदन किया गया। इस पर भी आर्य व्यवहार में भी परिवर्तन आया।

परन्तु कौरव-पाण्डव युद्ध में तो एक ही जाति और एक ही वंश के लोग परस्पर लड़ पड़े थे। दोनों पक्ष धर्म और नैतिक स्तर से गिरे हुए थे। केवल मात्रा का अन्तर था, प्रकार का नहीं। यही कारण था कि दोनों पक्षों का विनाश हुआ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कलियुग

भारत युद्ध के समय कलियुग का आरम्भ माना जाता है। कुछ विद्वान् भारत युद्ध को ५,१०० वर्ष पूर्व हुआ मानते हैं। उनके कथनानुसार भारत युद्ध के सैंतीस वर्ष पश्चात् कलियुग का आरम्भ हुआ। इस गणना के अन्तर को इस प्रकार समझा जा सकता है। कहते हैं कि कलियुग नक्षत्रों के विचार से तो युधिष्ठिर के राज्यारोहण के समय से ही आरम्भ हो गया था, परन्तु कलियुग का दुष्प्रभाव कृष्ण और युधिष्ठिर की उपस्थिति के कारण आरम्भ नहीं हुआ। अतः कलियुग इन दोनों महानुभावों के मरने की प्रतीक्षा करता रहा। नक्षत्रों के आधार पर कलियुग भारत युद्ध समाप्त होने पर आरम्भ हो गया था।

हमने पितृ-तर्पण इत्यादि के समय पढ़े जाने वाले संकल्प के आधार पर लिखा था कि कलियुग को ५०६९ वर्ष व्यतीत हो चुके हैं।

यहाँ एक अन्य प्रकार से गणना करके बताते हैं—

चालुक्य कुल के महाराज सत्याश्रम पुलकेशी द्वितीय का रविकीर्ति द्वारा संस्कृत में रचित एक शिलालेख दक्षिण का कालग्दी अर्थात् बीजापुर विषयान्तर्गत ऐहोली स्थान के मैगुटी नामक एक जैन मन्दिर में मिला है। उस पर लिखा है

एक बात और है। महाभारत के युद्ध में धर्म-अधर्म शब्द का बहुत प्रयोग हुआ है। वहाँ धर्म के अर्थ किसी व्यापक अथवा नैतिक धर्म से नहीं। नैतिक धर्म उस कर्म को कहते हैं, जो मनुष्य लोक-कल्याण के लिये और उसमें अपने कल्याण को सम्मिलित कर करता है। इसी दृष्टि से युद्ध के यत्र-तत्र नियम भंग करने का मूल्यांकन करना चाहिये। एक कपटी और नैतिक धर्म का उल्लंघन करने वाला अपने विरोधी के युद्ध-काल के किसी नियम भंग करने को अधर्म कह दे तो उस अधर्म की किसी नैतिक अधर्म के सम्मुख कुछ भी गणना नहीं।

कृष्ण युद्ध-कालीन नियमों के भंग को वह महत्ता नहीं देता था, जो साधारण जीवन में नैतिक अधर्म को देता था।

यह बात विवादास्पद है कि भारत युद्ध से देश को लाभ हुआ था अथवा हानि ? हमने बताया कि राम-रावण युद्ध के पश्चात् कई राक्षसी व्यवहार आर्य-समुदाय में घुस आये थे। इस युद्ध से भी भारी हानि हुई थी।

परन्तु हमारा दृढ़ मत है कि यदि चन्द्रवंशियों में, विद्वानों की महिमा युद्ध से पहले कम न होती और सत्य ज्ञान के ज्ञाताओं की महिमा देश में रहती तो युद्ध से हुई हानि की पूर्ति शीघ्र हो जाती।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्रिंशस्तु त्रिसहस्रेषु भारतादाहवादितः। सप्ताब्दशतयुक्तेषु शतेष्वब्देषु पञ्चसु। पञ्चाशत्सु कलौ काले षट्सु पञ्चशतासु च। समासु समतीतासु शकानामपि भुजाम्॥

इन श्लोकों के अर्थ करने में कुछ मतभेद हो गया है। एक मत से अर्थ यह है कि ३७३५ वर्ष कलि व्यतीत होने पर जब भूभृज सम्वत् ५५६ था, यह शिलालेख लिखा गया।

इससे (३७३५—५५६) = ३१७९+१८९० (वर्तमान शक सम्वत्) = ५०६९ वर्ष बनते हैं। यही हमने पिछले अध्यायों में लिखा है।

एक दूसरे मत से इस श्लोक का अर्थ यह है—

३०+३०००+१०७+५००+५०=३६८७ वर्ष कलि के व्यतीत होने पर भूभृज शक के ५०६ सम्वत् में यह शिलालेख रखा गया है। इससे ३६८७—५०६=३१८१+१८९०=५०७१ वर्ष कलि सम्वत् निकलता है।

एक तीसरा मत है : ३०+३०००+१०७+५०० कलि के व्यतीत होने पर भूभृज शक के सम्वत् में यह शिला लेख रखा गया।

इससे ३६३७—५५६=३०८१+१८९०=४९७१ वर्ष कलि सम्वत् है।

कुछ भी हो, यह बात निर्विवाद है कि कलि सम्वत् अर्थात् भारत युद्ध हुए आज ५०६९–७० वर्ष हुए हैं।

इस काल का इतिहास भी पुराणों में अधिक स्पष्ट रूप में मिलता है। यद्यपि इसमें भी उसी प्राचीन शैली का ही अवलम्बन किया गया है अर्थात् विस्तृत वृत्तान्त केवल युग-प्रवर्तक राजाओं का ही आया है। तथापि वंशावली अधिक नियमबद्ध और राज्यकाल के साथ मिलती है।

हम मगध राजवंशों का यहाँ उल्लेख करते हैं। युधिष्ठिर के वंश में से मगध में निम्न वंश चले—

(१)	वृहद्रथ वंश	२२ राजा हुए	१००१ वर्ष	पूर्ण राज्य काल	सम्वत् १-१००१
(२)	प्रद्योत वंश	५ ,, ,,	१३९	,, ,,	१००१-११३९
(३)	शिशुनाक वंश	१० ,, ,,	३६२	,, ,,	११३९-१५०१
(४)	महापद्मानन्दवंश	२+८	१००	,, ,,	१५०१-१६०१
(५)	मौर्य वंश	१० ,, ,,	१३७	,, ,,	१६०१-१७३८
(६)	शुंग वंश	११ ,, ,,	११२	,, ,,	१७३८-१८५०
(७)	कण्व वंश	४ ,, ,,	४५	,, ,,	१८५०-१८९५
(८)	आन्ध्र वंश	३० ,, ,,	४५६	,, ,,	१८९५-२३५१
(९)	अभीर वंश	७ ,, ,,	——	,, ,,	——

अर्थात् आन्ध्र वंश की समाप्ति तक १०२ राजा हुए। कुल राजस्व काल २३५१ वर्ष हुआ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यहाँ यह स्मरण रखना चाहिये कि भिन्न-भिन्न पुराणों में थोड़ा-थोड़ा वर्षों का अन्तर रहता है, परन्तु पाठों के ठीक रूप में पढ़ने से निष्कर्ष यह निकलता है कि महापद्मानन्द का अभिषेक काल १५०० कलि सम्वत् है। इससे चन्द्रगुप्त मौर्य के अभिषेक का समय १६०१ कलि सम्वत् बनता है। अतः यह अनुमान लगाया जा सकता है कि चन्द्रगुप्त का राज्याभिषेक ईसा पूर्व १५०१ वर्ष के आसपास हुआ था।

महाराज परीक्षित तथा सर्प-यज्ञ

परीक्षित अर्जुन का पौत्र और अभिमन्यु का पुत्र था। अभिमन्यु भारत युद्ध में मारा गया था। उस समय परीक्षित माँ के गर्भ में था। इसका जन्म युधिष्ठिर के राज्यारोहण के कुछ मास पश्चात् हुआ था।

कुछ लोग युधिष्ठिर के राज्यारोहण काल को कलि सम्वत् का आरम्भ समझते हैं। युधिष्ठिर ने ३६ वर्ष राज्य किया था। कृष्ण के देहावसान का समाचार पा युधिष्ठिर परीक्षित को राज्य सौंप अपने भाइयों और द्रौपदी सहित देवलोक में निवास के लिये चल पड़ा। महाभारत के रचयिता महर्षि व्यास का कथन है कि वे मार्ग में ही रह गये, देवलोक नहीं पहुँच सके।

परीक्षित ने २४ वर्ष राज्य किया। राजा परीक्षित की मृत्यु इस काल के लोगों के चलन पर प्रकाश डालती है।

महाराज वन में आखेट करते हुए, थके और प्यासे जल ढूंढते हुए, शमिक मुनि के आश्रम में पहुँचे। मुनि मौन व्रत लिये हुए थे। राजा ने आते ही व्याकुलता में कहा, 'मुनिश्रेष्ठ! मैं अभिमन्यु का पुत्र परीक्षित हूँ। आपने कोई घायल मृग इधर से जाते देखा है?' मुनि मौन रहे तो राजा ने समझा कि जान-बूझकर वह उत्तर नहीं दे रहा। अतः समीप एक मरा सर्प देख उसको धनुष पर उठा मुनि के गले में डाल वह चला। मुनि ने भला-बुरा कुछ भी नहीं कहा।

मुनि के शृंगी नाम का पुत्र था। वह युवक महान् तेजस्वी था। उसने अपने पिता से उक्त घटना का वृत्तान्त सुना तो उसने राजा को मार डालने का षड्यन्त्र किया। उसके मन में आया कि ऐसे अभिमानी मूर्ख राजा के जीवित रहने से हित नहीं हो सकता।

शमिक मुनि नागों का गुरु था। शृंगी ने नागों से कहा और यह निश्चय हो गया कि राजा की हत्या कर दी जाये। तक्षक नाम के नाग ने यह कार्य अपने सिर ले लिया। यह षडयन्त्र राजा परीक्षित को मालूम हो गया। अतः इससे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बचने के लिये राजा ने अपने चारों ओर सैनिक एवं सेवक रखने आरम्भ कर दिये।

एक दिन कुछ नाग ऋषियों का वेष धारण कर, महाराज को फल-फूल भेंट करने के लिये पहुँच गये। ऋषियों का अनादर न करने के लिये तथा उनका आशीर्वाद पाने के लिये राजा ने उनको भीतर बुला लिया। ऋषियों ने फल-पुष्प भेंट किये। आशीर्वाद दिया और ठीक उसी समय जब महाराज परीक्षित भेंट ले रहे थे, तक्षक ने, जो उन ऋषियों में एक था, अपना खड्ग निकाल महाराज की हत्या कर दी।

इस कथा में एक वृत्तान्त यह भी मिलता है कि जब तक्षक ऋषि के वेश में परीक्षित की हत्या करने जा रहा था, तब एक कश्यप नाम का ब्राह्मण महाराज को जिलाने के लिये चल पड़ा। उसने भी सुन रखा था कि तक्षक नाग ने महाराज को मारने का षड्यन्त्र बना रखा है। वह संजीवनी विद्या का ज्ञाता था। वह पुनः महाराज को जीवित कर देने के विचार से चल पड़ा। नागराज तक्षक ने उस ब्राह्मण से पूछा कि वह ऐसा करने क्यों जा रहा है? ऐसे अभिमानी राजा का नाश होना ही चाहिये। ब्राह्मण देवता बोले, 'मैं बहुत भारी पुरस्कार प्राप्त करने की आशा से जा रहा हूँ।'

तक्षक ने कह दिया, 'तुम उससे भी अधिक पुरस्कार मुझसे ले सकते हो।'

ब्राह्मण वह धन पा, सन्तुष्ट हो, घर लौट गया। धन के लोभ में उस कश्यप ने राजा को मरने दिया।

परीक्षित के पश्चात् उसका पुत्र जनमेजय राजगद्दी पर बैठा। जब उसने राज्य-कार्य संभाल लिया तो अपने पिता की मृत्यु का बदला लेने की मन में ठान ली। उसी युग में उपाध्याय वेद के एक शिष्य उतङ्क से गुरु-दक्षिणा के रूप में उपाध्याय की पत्नी ने पौष्य की स्त्री के कुण्डल माँग लिये। जब वह कुण्डल माँगकर ला रहा था, तब तक्षक नागराज ने उन कुण्डलों को छीन लेना चाहा। उतङ्क उन कुण्डलों को लाने में सफल तो हो गया, परन्तु तक्षक को मरवाने का संकल्प लेकर वह जनमेमय के पास पहुँचा और महाराज को अपने पिता की मृत्यु का बदला लेने के लिये तैयार कर लिया। राजा ने अपने सैनिकों को भेज नागों को पकड़ना और उनको जीवित अग्नि में दग्ध करना आरम्भ कर दिया।

इस प्रकार एक महान् हत्या-काण्ड आरम्भ हो गया। जनमेजय का यह निश्चय था कि वह नागों से अपने राज्य को रिक्त कर देगा। यह हत्याकाण्ड

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्प-यज्ञ के नाम से विख्यात है। जब लाखों नाग मारे गये तो आस्तीक मुनि ने यज्ञ में पहुँच यज्ञ बन्द करने का आग्रह करना आरम्भ कर दिया। राजा नहीं माना तो उसने भूखे रहकर जीवन त्याग देने की धमकी दी।

इस यज्ञ के करने की सम्मति देने वालों में और आस्तीक में विवाद हुआ। न्याय की दृष्टि से वे आस्तीक के कथन का उत्तर नहीं दे सके। निर्दोषों की हत्या हो रही थी। अन्त में ऋषियों ने भी राजा को यज्ञ बन्द करने की सम्मति दी और यज्ञ समाप्त हो गया। तक्षक नागराज बच गया।

यह घटना लगभग कलि सम्वत् ७०-८० की है।*

---

*महाभारत युद्ध के पश्चात् तो ब्राह्मणों का प्रभाव और भी कम हुआ प्रतीत होता है। ब्राह्मण भी प्रायः पतनावस्था की ओर अग्रसर हुए थे। यही कारण है कि राजा परीक्षित को यह साहस हुआ कि वह एक ऋषि के गले में मरा साँप डालकर चल दे।

क्षत्रियों में अभिमान की मात्रा भी अधिक हो गई थी। अन्यथा एक क्षत्रिय ऋषि की कुटिया में यह अभिमान-युक्त वचन न कहता, "मैं अभिमन्यु का लड़का महाराज परीक्षित हूँ।"

फिर ऋषि का पुत्र राजा को मरवाने का षड्यन्त्र न करता। साथ ही तक्षक नागों का राजा छल-कपट से राजा को मारने न आता। वह राजा को द्वन्द्व-युद्ध में ललकार सकता था। सबसे बुरी बात यह हुई थी कि एक ब्राह्मण धन लेकर कल्याण के कार्य से पीछे हट गया। यह भारतीय ब्राह्मण-परम्परा नहीं है।

जनमेजय ने तो पिता की मृत्यु पर सन्तोष किया हुआ था, परन्तु एक ब्राह्मण की प्रेरणा से ही इस विराट हत्याकाण्ड का आयोजन होना भी एक महान् पाप था।

यूरोप के द्वितीय युद्ध से पहले और युद्ध काल में हिटलर का यहूदियों को मरवाने का आयोजन भी इस सर्प-यज्ञ की तुलना रखता है। दोनों एक समान पाप थे। किसी भी देश अथवा जाति में ब्राह्मण वर्ग के पतन से ही देश और राष्ट्र के पतन का सूत्रपात होता है। भारत में भी यही हुआ। ब्राह्मणों का पतन तो महाभारत के युद्ध से पहले ही आरम्भ हो चुका था। यदि उस समय देश में सच्चे ब्राह्मण होते तो कदाचित् वह युद्ध होता ही न। कदाचित् युधिष्ठिर वह भयंकर भूलें करता ही न, जो उसने जुआ खेलकर तथा उसमें राज्य, भाइयों और पत्नी को हारने से की थी। कदाचित् युधिष्ठिर जुए में हारी वस्तुओं को हारा हुआ मानता ही न, कदाचित् वह दुर्योधन और धृतराष्ट्र के अपने साथ पूर्व के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महात्मा बुद्ध

पौराणिक प्रमाणों से यह बात सिद्ध की जा सकती है कि महात्मा बुद्ध कलि सम्वत् १३०० के लगभग प्रचार कर रहे थे। इसका प्रमाण बहुत सरल है। महात्मा बुद्ध के शिष्यों के कथनों से यह पता चलता है कि बुद्ध मगध की राजधानी राजगृह में गये, जब वहाँ विम्बसार राजा राज्य करता था।

विम्बसार का संस्कृत नाम विधिसार है। उन दिनों जनता की भाषा संस्कृत से दूर हो चुकी थी और संस्कृत भाषा की अपभ्रंश पाली के शब्दों का ही बौद्ध शिष्यों ने प्रयोग किया। महात्मा बुद्ध के शिष्यों का संस्कृत के विद्वानों से मेल-जोल नहीं था। उन्होंने महात्मा बुद्ध के जीवन की घटनायें भी पाली भाषा में लिखी हैं।

अतः विधिसार को विम्बसार लिखा गया। इसका दूसरा नाम विन्ध्यसेन भी था। यह राजा शिशुनाकवंश की पाँचवीं पीढ़ी में था। यह हम ऊपर लिख चुके हैं कि मगध में वृहद्रथवंश ने कलि सम्वत् १००१ तक राज्य किया। उसके पश्चात् प्रद्योतवंश ने १३९ वर्ष राज्य किया तथा प्रद्योतवंश के पश्चात् शिशुनाक ने ४० वर्ष राज्य किया। शिशुनाक के पुत्र काकवर्ण ने ३९ वर्ष। इसके उपरान्त क्षेमधर्या ने ३० वर्ष। क्षत्रोज ने ४० वर्ष और विधिसार (विम्बसार) ने ३८ वर्ष।

इस प्रकार विंम्बसार का राजत्व कलि सम्वत् १२८५–१३२३ है अर्थात् महात्मा बुद्ध ने कलि सम्वत् १३०० के लगभग प्रचार किया था। यह बनता है, ईसा पूर्व १८०० के लगभग।

योरोपियन लेखकों ने महात्मा बुद्ध का काल ईसा पूर्व ५०७ वर्ष कहा है। दोनों में बहुत बड़ा अन्तर है। इसमें कारण यह है कि योरोपियन लेखक भारतीय ग्रन्थों को प्रमाण न मानकर विदेशी यात्रियों को प्रमाण मानते रहे हैं। हम पहले लिख चुके हैं कि उनके कथन अधूरे ज्ञान के सूचक हैं। इस विषय में ह्वेन सांग के ज्ञान की अप्रामाणिकता तो स्पष्ट ही है। इस लेखक के यात्रा-विवरण में एक पाठ का अंग्रेज़ी अनुवाद इस प्रकार है—

इतिहास को स्मरण कर उसका विश्वास करता ही न। वह वारणावत की घटना के पश्चात् उनके प्रासाद में पग ही न धरता।

परन्तु यह सब-कुछ हुआ। युधिष्ठिर के पास कोई नीतिमान ब्राह्मण था ही नहीं। यदि कृष्ण युधिष्ठिर इत्यादि पाण्डवों को सम्मति देने वाला न होता तो विजय दुर्योधन की होती और जो कुछ भारत का धर्म, संस्कृति और परम्परायें बच सकीं, वे भी न बचतीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

According to the general traditions, Tathagata, was eighty years old when, on the 15th day of the second half of the month of Vaisakha he entered Nirvana. This corresponds to the 15th day of the 3rd month with us. But Sarvastivadins (सर्वास्तिवादी) say that he died on the 8th day of the second half of the month of Kartika which is the same as the 8th day of 9th month with us. The different schools calculate variously from the death of Buddha. Some say it is 1200 years and more since then. Others say 1300 and more. Others say 1500 and more. Others say 900 years have passed but not 1000 years since Nirvana.

अर्थात्—साधारण परम्परा के अनुसार तथागत निर्वाण प्राप्ति के समय ८० वर्ष की आयु के थे और उनका देहान्त वैशाख पूर्णिमा के दिन हुआ था। यह हमारे वर्ष के अनुसार अमावस तीसरे मास में है, परन्तु सर्वस्तिवादिनों के कथनानुसार उनका देहान्त कार्तिक की शुक्ल पक्ष की अष्टमी को हुआ है। यह हमारे वर्ष के ९वें मास की शुक्ल पक्ष आठवीं होती है। महात्मा बुद्ध का मृत्यु-वर्ष भिन्न-भिन्न विचार के लोग भिन्न-भिन्न बताते हैं। कोई कहते हैं कि आज से १२०० वर्ष पहले था। कुछ का कथन है कि १३०० वर्ष था। फिर कई कहते हैं कि १५०० वर्ष है। कुछ यह भी कहते हैं कि यह ९०० वर्ष से अधिक नहीं।

हमारा प्रश्न है कि ऐसे लेखकों की बातों पर, जो कि देश के अनपढ़ लोगों से इधर-उधर की बातें सुनकर लिख गये हैं, कितना विश्वास किया जा सकता है! योरोपियन लेखकों ने यही किया है। उन्होंने भारतीय इतिहास के स्रोतों को देखा ही नहीं और कह दिया कि यहाँ के लोग इतिहास लिखना जानते ही नहीं थे।

जितना सुदृढ़ प्रमाण पुराणों से बुद्ध के जन्म का मिलता है, इतना अच्छा कहीं अन्यत्र मिलता ही नहीं।

नेपाल की तराई में शाक्य-वंश के क्षत्रियों का राज्य था। वहाँ के एक राजा शुद्धोधन के घर राजकुमार सिद्धार्थ का जन्म हुआ। वह राजकुमार बाल्य-काल से ही बहुत सोच-विचार में लीन रहता था। उसकी निवृत्ति की ओर रुचि देख राजा ने १६ वर्ष की आयु में उसका यशोधरा नाम की सुन्दर लड़की से विवाह कर दिया। सिद्धार्थ संसार में जरा, रोग और मृत्यु को देखकर बहुत घबराया और एक दिन इनसे मुक्ति पाने का मार्ग ढूंढने के लिये वह घर से भाग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गया। उस समय उसकी अवस्था ३० वर्ष के लगभग थी।

सिद्धार्थ तत्कालीन ब्राह्मण विद्वानों से शिक्षा ग्रहण करता रहा और वहाँ शान्ति न पा, वह गया में जा कठोर तप करने लगा। ६ वर्ष की कठोर तपस्या के पश्चात् वह इस मार्ग को व्यर्थ मान, छोड़ कर एक पीपल के पेड़ के नीचे बैठ विचार करने लगा तो उसको बोध हुआ और वह अपने को बुद्ध कहने लगा। तत्पश्चात् वह अपने ज्ञान का प्रचार करने लगा। वह देश-भर में घूम-घूमकर ८० वर्ष की आयु तक प्रचार करता रहा और उत्तर प्रदेश के गोरखपुर ज़िला के कुशीनगर में उसका देहान्त हो गया।

बौद्ध मत की दो शाखायें हैं—हीनयान और महायान। हीनयान तो वैदिक धर्म का निवृत्ति मार्ग है। यह वही मार्ग है, जो सनत्कुमार, सनन्दन, कपिलादि ऋषि-मुनियों ने स्वीकार किया था। महात्मा बुद्ध उन ऋषियों के समान विद्वान् नहीं थे, इस पर भी वे तपस्वी जीव थे। महात्मा बुद्ध ने जनसाधारण में उनकी भाषा में ही अपने विचारों का प्रचार किया।

त्याग और तपस्या के मार्ग से शक्ति उत्पन्न होती है, परन्तु इससे ज्ञान प्राप्ति नहीं होती। ज्ञान के अभाव में शक्ति की कार्य-दिशा अशुद्ध हो जाती है। यही बौद्ध धर्म के हीनयान में हुआ।

इस धर्म का सबसे बड़ा शिष्य मौर्यवंशीय अशोक देवानाम्प्रिय हुआ है। अपने पूर्व जीवन काल में वह एक अति क्रूर तथा नृशंस राजा रहा था, परन्तु कालान्तर में उसने बौद्ध धर्म को स्वीकार कर अहिंसावाद को राज्य-कार्य में भी चलाया। इस नीति का अति भयंकर परिणाम हुआ। देश खण्ड-खण्ड हो गया। विदेशियों के आक्रमण होने आरम्भ हो गये और देश में उन आक्रमणों के विरोध की बुद्धि और सामर्थ्य नहीं रही।

बौद्ध धर्म आरम्भ में साधारण कोटि के पढ़े-लिखों में फैला। इसी कारण महात्मा बुद्ध और बौद्ध धर्म का उल्लेख भारतीय ग्रन्थों में बहुत कम मिलता है। जब अशोक ने इस धर्म को राज्य-धर्म बनाया, तब विद्वानों का ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ। इसके साथ ही विदेशी आक्रमणों तथा देश के विद्वानों ने इस धर्म का खण्डन आरम्भ किया। राजनीति में भी इसकी प्रतिक्रिया हुई। इस प्रतिक्रिया का परिणाम ही शुंग परिवार के पुष्यमित्र का राज्यारोहण है।

पीछे गुप्त परिवार के आ जाने पर तो बौद्ध धर्म के विरुद्ध घोर अभियान आरम्भ हुआ और वैदिक धर्म का पुनरुत्थान आरम्भ हुआ। यह हिन्दू वैष्णव मत है।

इस समय बौद्ध धर्म के कुछ अनुयायियों ने वेद-शास्त्र-ग्रन्थ पढ़े और बौद्ध

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धर्म को सांख्य सिद्धान्त पर आधारित करने का यत्न किया। साथ ही महात्मा बुद्ध को अवतार घोषित करने का यत्न किया। यह बौद्ध मत की महायान शाखा कहलाती है।

जब ह्वेन सांग भारत में आया तो महायान का आश्रय ले पुनः बौद्ध-धर्म का प्रचार आरम्भ हो चुका था, परन्तु यह अधिक काल तक चल नहीं सका। इस महायान का खण्डन अथवा दूसरे शब्दों में इस महायान को वैदिक-धर्म में विलय कर स्वामी शंकराचार्य ने नवीन वेदान्त मत को प्रतिपादित किया।

इसके कुछ ही पश्चात् देश पर मुसलमानों के आक्रमण आरम्भ हो गये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपसंहार

इस पुस्तक में हमने यह सिद्ध करने का यत्न किया है कि भारतवर्ष में इतिहास की परम्परा बहुत प्राचीन है। यदि उस पूर्ण प्रयास का, जो वर्तमान इतिहास लेखक भारतवर्ष और अन्य देशों के इतिहास की खोज करने वाले करते हैं, एक अंश मात्र भी भारतवर्ष में उपलब्ध ग्रन्थों में से खोज में लगाया जाता तो आज भारतवर्ष का इतिहास अन्य सब देशों के इतिहास से कहीं अधिक विदित हो चुका होता तथा उससे मानव-ज्ञान की विशेष वृद्धि हो चुकी होती।

भारतवर्ष पृथिवी की सब सभ्यताओं का जन्मदाता है। यहाँ की सभ्यता न केवल प्राचीनतम है, प्रत्युत वह सबकी जननी भी है। इस पर भी इतिहास लिखने वालों का उन स्रोतों की ओर ध्यान ही नहीं गया, जिनका संकेत हमने अपने पूर्व अध्यायों में किया है।

इस ओर ध्यान न जाने का कारण है। वह यह है कि अज्ञानी लोग समाघोषों के पीछे-पीछे चलते हैं। जो लोग जनसाधारण को अपने पीछे लगाना चाहते हैं, उनको समाघोष तैयार करने पड़ते हैं। ये समाघोष मन पर संस्कार जमाने का यत्न करते हैं। जहाँ ज्ञान की परख जनसाधारण की वाणी हो जाती है, वहाँ समाघोष अपना महान् प्रभाव दिखाते हैं।

सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दी में योरोपीय राज्यों ने पूर्वी देशों को विजय करने का विचार किया तो अपने ऐसा करने के अधिकार को सिद्ध करने के लिये उनको पूर्वी देशों के निवासियों को असभ्य, अशिक्षित और निम्न कोटि का प्रकट करना आवश्यक था। उन्होंने अपनी जनता के सम्मुख उन सब क्रूर कार्यों को उचित प्रकट करने के लिये, जो उन्होंने पूर्वी देशों में किये, कुछ समाघोष प्रचारित किये। दूसरी ओर पूर्वी देशों के रहने वालों को यह बताने के लिये भी कि वे शासक लोग इन पूर्वी देशों के रहने वालों से अधिक पढ़े-लिखे, सभ्य और ज्ञानवान् हैं, षड्यन्त्र किया और इसके लिये भी उन्होंने कुछ समाघोष प्रचलित किये। इन समाघोषों में कुछ इस प्रकार हैं—

(१) यह प्रागैतिहासिक है। इसका अर्थ है मनुष्यों में लिखने-पढ़ने की बुद्धि आने से पहले की वार्ता है जो कि प्रामाणिक नहीं हो सकती।

यह पद उन देशों में तो प्रयुक्त हो सकता था जहाँ के प्राचीन निवासी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किसी-न-किसी कारण से सर्वथा अनपढ़ एवं असभ्य थे। हमारा तो मत ऐसा है कि मानव-उत्पत्ति एक ही स्थान पर हुई और वहाँ से पूर्ण पृथिवी पर फैली। यदि आदि पुरुष विद्वान् था तो सब देशों के लोग भी परम्परागत ज्ञान के स्वामी होने चाहियें। परन्तु ऐसे कारण बन गये जिनसे ज्ञान का लोप हो गया। राजनीतिक उथल-पुथल, प्लावन, असुर-राज्य, भूकम्प अथवा मनुष्यों में प्रमाद, इन कारणों से भी ज्ञान का लोप होता देखा जाता है। हमारा मत है कि उक्त कारणों से कई देशों का सम्बन्ध अपने ज्ञान-स्रोत से टूटा और उन लोगों में प्रमाद आया तो वे ज्ञान-विहीन हो गये। ऐसे देशों के इतिहास को कालों में विभक्त किया जा सकता है, यथा प्रागैतिहासिक और ऐतिहासिक। सम्भव है कि कभी उन देशों में भी ऐतिहासिक परम्परा रही हो। तदनन्तर वह परम्परा उक्त कारणों से टूटी हो और एक काल अज्ञान का आया हो और अब पुनः ज्ञान का प्रकाश हुआ हो।

परन्तु भारतवर्ष में, जैसा कि हम पूर्व के परिच्छेदों में कह चुके हैं, कोई भी ऐसा काल नहीं आया जब यहाँ के ज्ञान-विज्ञान की परम्परा टूटी हो। हम अभी तक प्राचीनतम ग्रन्थ के उत्तराधिकारी हैं, प्राचीनतम भाषा के ज्ञाता हैं, प्राचीनतम धर्म एवं संस्कृति के पालनकर्ता हैं। सबसे पुराना धर्म शास्त्र हम रखते हैं और जैसा कि हम लिख चुके हैं कि हमारी इतिहास की परम्परा अक्षुण्ण है।

अतः भारतवर्ष में किसी भी काल को प्रागैतिहासिक काल कहना अपनी अल्पज्ञता को प्रकट करना है। हाँ, यहाँ इतिहास लिखने की शैली उससे भिन्न थी, जो आज प्रचलित है। कोई यह भले ही कह दे कि वह शैली वैसी नहीं थी जैसी आज की शैली है, अरन्तु यह कहना तो अनर्थ होगा कि भारतवर्ष में कोई ऐसा काल रहा है, जब इतिहास लिखा नहीं जाता था, पढ़ा नहीं जाता था अथवा लोग लिखने और पढ़ने के गुणों से अनभिज्ञ थे।

(२) यह 'माईथौलोजी' (काल्पनिक गाथा) है।

हम दूसरे देशों में इस प्रकार के कथानकों के विषय में कुछ नहीं कह सकते, परन्तु भारतवर्ष में जिन गाथाओं को काल्पनिक कहा जाता है, वे वास्तव में ऐतिहासिक तथ्ययुक्त हैं। केवल उन पर साहित्यिक अथवा आलंकारिक आवरण चढ़ा है। भारतवर्ष में इतिहास को एक अत्यावश्यक ज्ञान का विषय समझा जाता था जो जनसाधारण के जीवन से सीधा सम्बन्ध रखता था। प्रत्येक व्यक्ति को इतिहास की मुख्य-मुख्य घटनाओं का ज्ञान होना आवश्यक है। अतः उन घटनाओं को रोचक और समझने योग्य रूप में, बिना ऐतिहासिक तथ्य को विलुप्त किये,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिखना अत्यावश्यक माना गया था। यही बात इतिहास का परम लक्ष्य अथवा इसकी चरम उपयोगिता मानी गयी। इतिहास को जनसाधारण की वस्तु बनाने के लिये इसको वह रूप दिया गया है, जो पुराणादि में वर्णित है।

ये कहानियाँ असत्य नहीं, अतः वे 'मिथिकल' भी नहीं और इनको इतिहास के रूप में मानना उचित है। केवल इन कथाओं को सुनाने वालों तथा इन पर विवेचना लिखने वालों का यह काम है कि वे श्रोतागणों अथवा पाठकों के ज्ञान स्तर को देख कर इनके साहित्यिक अंश और ऐतिहासिक अंश का विश्लेषण करते रहे। भारतवर्ष में यह प्रथा प्रचलित थी। केवल मुसलमानों और बौद्धों के काल में यह परम्परा टूटी और आज पाश्चात्य विद्वानों को इनको 'माईथौलोजी कहने का साहस हुआ। इस स्वराज्य काल में तो पाश्चात्यों के कथन को पक्षपातपूर्ण बताने का अवसर आया था, परन्तु वर्तमान स्वराज्य सरकार उन 'महापुरुषों' के हाथों में चली गयी है जो शतशः पाश्चात्यों के शिष्य हैं और उनके अज्ञान, पक्षपात एवं उनकी मूर्खता के पूर्णतः उत्तराधिकारी हैं।

यदि इन अज्ञानियों के कुकृत्यों के कारण देश पुनः दासता के गर्त में न गया तो निःसन्देह भारत की उर्वरा भूमि में ऐसे विद्वान् उत्पन्न होंगे, जो सत्य-असत्य का निर्णय करके दिखा देंगे।

(३) यह विकासवाद के विरुद्ध है।

यह समाघोष मूर्खों का चलाया हुआ है अथवा मूर्ख बनाने के लिये चलाया गया है, कहना कठिन है। हमने विकासवाद के विषय में संक्षेप में अपना मत एक परिच्छेद में दिया है। विकासवाद एक सिद्ध सिद्धान्त नहीं है। इसके सिद्ध होने के विपरीत तो प्रमाण मिलते हैं। भाषा का ज्ञान इसके विरुद्ध एक प्रबल प्रमाण है। उत्तरोत्तर प्राचीन भाषाओं की विकसित और उन्नत अवस्था इस बात की सूचक है कि मनुष्य में विकास नहीं, प्रत्युत ह्रास हो रहा है। तथाकथित भौतिक-उन्नति मानव-उन्नति की प्रतीक नहीं, प्रत्युत यह तो केवल मात्र आवश्यकताओं की वृद्धि की सूचक है। आवश्यकताएँ की वृद्धि मानव-विकास के साथ सम्बन्ध नहीं रखती। आवश्यकताएँ शरीर और मन तथा आत्मा की उन्नतावस्था की द्योतक नहीं। इस विषय में भी हम लिख चुके हैं। अतः अमुक बात विकासवाद के विरुद्ध है, इसके अर्थ कुछ नहीं। अभी तो विकासवाद को ही अपना अस्तित्व स्थापित करने की आवश्यकता है।

(४) यह साम्प्रदायिकता है।

यह एक अन्य समाघोष आजकल चल रहा है। यदि कोई यह सिद्ध करने का यत्न करे कि वेद सत्य विद्याओं की पुस्तक है, तो तुरन्त उसको साम्प्रदायिकता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहकर अमान्य घोषित करने का यत्न किया जाता है। हमारा मत है कि साम्प्रदायिकता मनुष्य का स्वभाव है। साम्प्रदायिकता किसको कहते हैं? जब किसी एक बात को बहुत से लोग सत्य मानने वाले हो जायें तो वह साम्प्रदायिकता ही होगी।

उदाहरण के रूप में ईश्वर नहीं है। प्रकृति ही चेतना का रूप ग्रहण करती है जो प्राणी की मृत्यु के समय प्रकृति में विलुप्त हो जाती है। यह एक विचार है। जब इसके मानने वाले बहुत से लोग हो जायेंगे तो यह जन-समूह सम्प्रदाय कहलायेगा और इस विषय पर की गयी बात साम्प्रदायिक होगी।

जब तक मनुष्य में विचार-शक्ति रहेगी, ऐसे सम्प्रदाय बनते तथा बिगड़ते रहेंगे और उनकी (साम्प्रदायिक) बातें होती रहेंगी।

अतः सम्प्रदाय बनाना अथवा किसी सम्प्रदाय में रहना और उस साम्प्रदाय की बात करना, विचारशील मानवों का धर्म है। यह पाप नहीं है। यह वार्त्तालाप अमान्य नहीं हो सकता। साम्प्रदायिक कहकर किसी मत का कथन, उसका विवेचन अथवा उसका प्रचार किसी भी प्रकार अमान्य नहीं हो सकता। यह कोई बुरी बात नहीं है। जो बुरा है वह किसी भी विचार को बल-छल तथा लोभ से प्रचलित कराना है। यह तानाशाही और ठगी अमान्य है। साम्प्रदायिकता अमान्य नहीं। विचार, विचार करने से ही प्रसारित होते हैं और होने चाहियें।

(५) ऐसा दिखाई नहीं देता। इस कारण यह सत्य नहीं।

यह भ्रममूलक समाधोष भी दूसरों को धोखा देने के लिये लगाया जाता है। एक उदाहरण से बात स्पष्ट हो जायेगी। कोई विद्वान् रूस के विषय में वहाँ से आये लोगों के कथनानुसार लिखता है। उससे कोई यह नहीं कह सकता कि क्योंकि उसने रूस देखा नहीं, इससे उसकी बात अमान्य है। जिन्होंने देखा है उनके कथन को प्रमाण मानकर ही इस लेखक को सत्य मानना होगा। इसी प्रकार एक इतिहासकार स्वयं अशोक के काल में उपस्थित न होता हुआ भी उसका अशोक का वर्णन मानने योग्य हो सकता है। इसको प्रमाण अथवा शब्द प्रमाण कहते हैं।

इसी प्रकार अनुमान प्रमाण भी मान्य है। इतिहास में भी ऐसा माना जाता है। उदाहरण के रूप में चीन के किसी नगर में यदि संस्कृत भाषा में कोई पत्थर पर लेख मिल जाये, तो यह अनुमान लगाया जा सकता है कि भारत के विद्वानों का वहाँ आना-जाना था और जिनके लिये वह पत्थर लगवाया गया था वे संस्कृत भाषा को पढ़ सकते थे।

इसी प्रकार यदि बहुत प्राचीन काल में पुष्पक विमान की उपस्थिति लिखी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिलती है और अनेक ग्रन्थों में विमानों का उल्लेख मिलता है तो यह अनुमान लगाया जा सकता है कि उस काल में विमान-निर्माण की विद्या ज्ञात थी।

हमारा कथन है कि जो दिखायी नहीं देता, सत्य तो वह भी हो सकता है। यद्यपि उसके लिये अन्य समर्थक प्रमाण उपस्थित होने चाहियें।

हमारी इन्द्रियाँ नाक, कान, आँखें, स्पर्श, रसना एक अति सीमित क्षेत्र में ही काम कर सकती हैं। प्रकृति में भी एक विशाल क्षेत्र है जिसको ये नहीं देख सकतीं। इस पर भी उस क्षेत्र के अस्तित्व से इनकार नहीं किया जा सकता।

इसी प्रकार के कई अन्य समाधोष हैं, जो युक्ति के सामने टिक नहीं सकते, परन्तु उनको बार-बार कहकर जन-जन के मन पर ऐसा प्रभाव उत्पन्न कर दिया जाता है कि कुछ भी उन वाक्यों के प्रतिकूल होने पर बिना विचार किये, बिना प्रमाण देखे अस्वीकार कर दिया जाता है।

यह पुस्तक पूर्ण इतिहास नहीं है। उतना भी नहीं, जितना पुराणादि ग्रन्थों में मिलता है। इस पुस्तक को लिखने के दो उद्देश्य हैं। एक तो यह कि पाठकों को यह दर्शाया जा सके कि भारतवर्ष में इतिहास लिखने की एक परम्परा थी। दूसरे यह कि आदि युग से लेकर वर्तमान युग तक एक शृंखलाबद्ध इतिहास लिखा जा सकता है। इस शृंखला में कड़ियाँ सुगतमा से मिल सकती हैं, जिनसे इतिहास का प्रयोजन भली प्रकार सिद्ध हो सके।

हमने इन कड़ियों में से लगभग १६ कड़ियाँ अति संक्षेप में इस पुस्तक में दी हैं। उन घटनाओं के उन अंशों पर अधिक बल दिया है, जिनसे इतिहास लिखने का प्रयोजन सिद्ध हो सके।

महात्मा बुद्ध के पश्चात् हमने कुछ नहीं लिखा। इसका कारण यह है कि इस काल का कुछ इतिहास साधारण इतिहास के ग्रन्थों में लिखा मिलता है। यद्यपि उसमें भी पर्याप्त संशोधन की आवश्यकता है, परन्तु वे संशोधन, इतिहास में भारतीय परम्पराओं के साथ सीधा सम्बन्ध नहीं रखते। वह सर्वथा एक पृथक् ही विषय है। उदाहरण के रूप में अंग्रेजी राज्य भारत में अभिशाप सिद्ध हुआ है अथवा वरदान, इन दो दृष्टिकोणों से ऐतिहासिक घटनाओं का संकलन हो सकता है। इसी प्रकार औरंगज़ेब का राज्य हिन्दुओं के लिये हितकर सिद्ध हुआ अथवा अहितकर, इसमें भी घटनाओं का तारतम्य दो ढंग से लिखा जा सकता है।

कोई व्यक्ति यह सिद्ध कर सकता है कि मुगल साम्राज्य का विनाश औरंगज़ेब की नीति से हुआ अथवा शिवाजी के अनथक युद्ध अभियान से। इस प्रकार दृष्टिकोण बदलने से इतिहास की कुछ घटनायें आवश्यक हो जाती हैं और कुछ अनावश्यक। सिकन्दर के आक्रमण का कुछ भी उल्लेख पुराणों में नहीं मिलता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यद्यपि चन्द्रगुप्त मौर्य का वर्णन तो है। विदेशियों ने सिकन्दर के आक्रमण पर पुस्तकें लिख डाली हैं।

अभिप्राय यह है कि आधुनिक इतिहास पर भी लिखने के लिए बहुत-कुछ है, परन्तु हमने उसको अपनी पुस्तक के विषयान्तर्गत न समझ उस पर कुछ लिखा नहीं।

सारांश में हमने यह निश्चय किया है कि—

(१) मानव-इतिहास का आरम्भ तब से माना जाता है, जब से प्रथम मनुष्य इस सृष्टि पर बना। वर्तमान लेखकों से भिन्न, भारतीय परम्परा यह है कि पहला मनुष्य, जिसका इस पृथिवी पर प्रादुर्भाव हुआ वह अति विद्वान्, अति बुद्धिशील और कार्यकुशल था। सब भारतीय पुस्तकों में ऐसा ही माना जाता है।

(२) सृष्टि की अर्थात् मनुष्य की इस पृथिवी पर आयु नक्षत्रों की गति से जानी गयी है। भारतीय परम्परा से वह लगभग बारह करोड़ वर्ष है।

(३) आदि युग वर्तमान चतुर्युगी से पहले मानना चाहिये।

(४) चन्द्रवंशियों का नैतिक स्तर सूर्यवंशियों से सदा नीचा रहा है।

(५) दैवी और आसुरी प्रवृत्ति के मनुष्य आदि सृष्टि से चले आते हैं। वास्तविक इतिहास दैवी प्रकृति वालों की आसुरी प्रवृत्ति वालों पर विजयों ने निर्माण किया है।

(६) महाभारत युद्ध से पहले की सब वंशावलियाँ वास्तव में नामावलियाँ हैं। भारत युद्ध के पश्चात् की वंशावलियाँ प्रायः पूर्ण हैं अथवा दो-तीन पुराणों से मिलान करके ठीक की जा सकती हैं।

(७) भारत युद्ध के पश्चात् की पौराणिक गणना के अनुसार चन्द्रगुप्त मौर्य का काल ईसा पूर्व १४४५ वर्ष बनता है। योरोपियन ढंग से चन्द्रगुप्त का काल ईसा पूर्व ३७५ वर्ष है।

(८) भारत युद्ध से पहले, समय-समय पर भारतवर्ष में चक्रवर्ती महाराजा होते रहे हैं। इन चक्रवर्ती महाराजाओं का प्रभाव-क्षेत्र पूर्ण यूरेशिया, अफ्रीका तथा हिन्द सागर के द्वीप रहे हैं।

(९) भारत युद्ध के पश्चात् तो अश्वमेध यज्ञ बहुत कम हुए हैं। जो हुए भी उनका प्रभाव-क्षेत्र भारत के भी एक अंश मात्र में ही रहा है। राजसूय यज्ञ तो कोई भी महाराज कर नहीं पाया।

(१०) भारत युद्ध के पहले समय-समय पर ऋषि-महर्षि उत्पन्न होते रहे हैं। भारत युद्ध के पश्चात् ऋषियों की परम्परा लुप्त हो गयी। अर्थात् वेद में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपस्थित मार्मिक तत्त्वों को बताने वाले नहीं रहे।

(११) बौद्ध धर्म का प्रचार अशोक काल तक जनसाधारण तक ही रहा था। सम्राट अशोक का बौद्ध धर्म को राज्य-धर्म बनाने से ब्राह्मणों का घोर पतन हुआ। ऐसा प्रतीत होता है कि इसी के परिणामस्वरूप अनेक मत-मतान्तर उत्पन्न हो गये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संकेत परिचय

अथर्व	अथर्व वेद
ऋ०	ऋग्वेद
गोपथ	गोपथ ब्राह्मण
जै० ब्रा०	जैमिनीय ब्राह्मण
तै० सं०	तैत्तिरीय संहिता
नि०	निरुक्त
भ० गी०	भगवद्गीता
भा० पु०	भागवत् पुराण
मनु०	मनुस्मृति
महा० भा०	महाभारत
श्वे० उप० अथवा श्वेताश्वतर	श्वेताश्वतर उपनिषद्
यजु०	यजुर्वेद
यो०	योग दर्शन
बा० रा०	बाल्मीकीय रामायण
वायु०	वायु पुराण
वृ० उ०	वृहदारण्यक उपनिषद्
श० (शत०) ब्रा०	शतपथ ब्राह्मण
सां०	सांख्य दर्शन
सुश्रुत	सुश्रुत
सू० सि०	सूर्य सिद्धान्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रमाणानाम् अनुक्रमणिका

अ

प्रमाण	ग्रन्थ	पुस्तक पृष्ठ
अगस्यागमनं चैव राजेन्द्र	महा भा० शा० ५६-२०	१४४
अग्निवायुरविभ्यस्तु	मनु० १-२३	१४३
अचिराद् भगवन्	महा भा० वन० १८७-२८	१२६
अजामेकां लोहित शुक्लकृष्णां	श्वे० ४५	६६
अतिष्ठन्तीनाम्	ऋ० १-३२-१०	७८
अथ वै तर्हि अल्पा	तै० सं० २-१-२	१०१
अथाभिध्यायतः सर्ग	भा० पु० ३-१२-२१	११७
अदण्ड्या मे द्विजाश्चेति	महा भा० शा० ५६-१०८	१७०
अदृश्यन्तर्षयः सप्त	महा भा० वन० १८७-४६	१२६
अधर्मेण जयं लब्ध्वा	गदा पर्व ६४-१४	२२६
अन्योन्यमेदात् ते सर्वे	महा भा० आ० ७५-१८	१२८, १७२
अपत्यं नस्त्वमेवैकः	महा भा० आ० १००-६३	२१०
अप्राप्तस्याभिमर्शं तु	महा भा० शा० ५६-१८	१४४
अब्रवीन्न स्मरामीति	महा भा० आ० ७४-१६	२०७
अमानुषैर्वृतः	महा भा० आ० ७५-२०	२०५
अयं मित्राय	ऋ० १-१३६-४	७७
अयं सहस्रमा नो दृशे	अथर्व ७-२२-१	१४३
अराजके हि लोकेऽस्मिन्	मनु० ७-३	१६८
अष्टौ पुत्रासोअदितेर्ये	ऋ० १०-७२-८	११५
असंहार्यानुपायज्ञान्	वा० रा० बाल० १७-४	२००
असत्यमप्रतिष्ठं ते	भ० गी० १६-८	२२४
असि यमो	ऋग्वेद १-१६३-३	७४
असौ मया हतः	भ० गी० १६-१४	२२४
अस्मिन् कृतयुगस्यान्ते	सूर्य सि० १-५७	६१
अस्मिन्नर्थश्च धर्मश्च	महा भा० आदि० ६२-१७	११६
अहं ऋतुरहं यज्ञः	भ० गी० ६-१६	६८

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रमाण	ग्रन्थ	पुस्तक पृष्ठ
अहंकार इति ख्यातः	महा भा० शा० १८२-१६	११६
अहंकारं बलं दर्पं	भ० गी० १६-१८	२२४
अहं चाप्येवमेवैनं	महा भा० आ० ७४-११७	२०८
अहं विष्णुरहं रुद्रो	वा० रा० उत्तर० ६-६	१६२
अहो धिग् यदधो	महा भा० गदा० ६०-५	२२७
अहोरात्रे विभजते	मनु० १-६५	८२
अत्र निःश्रेयसंयन्नस्तद्	महा भा० शा० ५६-२७	१२२
आ		
आढ्योऽभिजनवानस्मि	भ० गी० २-१५	२२४
आख्यातव्यं मदीयानां	महा भा० गदा पर्व ६४-१०	२२६
आत्मसंभाविताः स्तब्धा	भ० गी० २-१७	२२४
आत्मानं ते	ऋ० १-१६३-३	७६
आदित्ये सवितुर्ज्येष्ठे	महा भा० शा० (पूना संस्करण) ३३६-४६	१०६, १२५
आनीदवातं	ऋग्वेद १०-१२६-१	७२
आपो नारा इति प्रोक्ता	मनु० १-१०	६६
आयता दश च द्वे च	वा० रा० बाल० ५-७	१४६
आ यातं नहुषः	ऋ० ८-८-३	१५३
आयुर्वेदशास्त्रेष्व सवर्गताः	सुश्रुत शरीर०	११४
आरोगाः सर्वसिद्धार्थाश्च	मनु १-८३	१३७
आशापाशशतैर्बद्धाः	भ० गी० १६-१२	२२४
आश्रितस्य तु दौर्बल्यान्	महा भा० गदा० ६०-६	२२७
आसीदिदं तमोभूतम्	मनु० १-५	६६
इ		
इच्छयान्योन्यसंयोगः	मनु० ३-३२	२०७
इतरेषु तु शिष्टेषु	मनु० ३-४१	२१२
इतरेषु ससन्ध्येषु	मनु० १-७०	८३
इति तासां स्वशक्तीनाम्	भा० पु० ३-६-१	१०२
इदं च सप्तमं जन्म	महा भा० शा० ३४७-४३	६८, ११५
इदं शास्त्रं तु कृत्वासौ	मनु० १-५८	१४५
इदमद्य मया लब्धमिमम्	भ० गी० १६-१३	२२४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रमाण	ग्रन्थ	पुस्तक पृष्ठ
इन्द्र मन्दिनश्चमूषदः	अथर्व २०-१७-४	१५५
इयं शुष्मेभिर्बिसखा	ऋ० ६-६१-२	४५
इयं शुष्मैः शोषणैः	निरुक्त २-२४	४६
इह ब्रवीतु	ऋ० १-१६४-७	८०
ई		
ईश्वरोऽहमहं भोगी	म० गी० १६-१४	१६४
उ		
उच्चाट्टालघ्वजवर्ती	वा० रा० बाल० ५-११	१४६
उतेव मे वरुणः	ऋ० १-१३६-४	७७
उदायी भविता तस्मात्	वायु० ६६-३१८	४१
उद्वेजयति लोकांस्त्री नुच्छितान्···	वा० रा० बाल० १५-८	२००
ऋ		
ऋतं च सत्यं	ऋग्वेद १०-१६०-१	७१
ऋतम्भरा तत्र प्रज्ञा	योग० १-४८	१२
ऋषीन् यक्षान् सगन्धर्वान्	वा० रा० बाल० १५-६	२००
ऋक्षा ह वा	मैत्रेय संहिता १-६-६-२	१११
ए		
एकं वा एतद्देवानामहः	तै० ब्रा० ३-६-२२	६५
एतज्ज्ञेयं नित्यमेवात्मसंस्थम्	श्वे० १-१२	१४६
एतत् सहस्रपर्यन्तं	वायु० पु० २४-२	११०
एतां दृष्टिमवष्टभ्य	भ० गी० १६-६	२२४
एते चान्ये च राजानः	महा भा० आदि० १-२३६	१३६
एते देवाः कलाविष्णे	भा० पु० ३-५-३७	१०२
एवं चतुर्विंशति	सुश्रुत शरीर (भावमिश्र)	११४
एवं वयं न	वा० रा० अरण्य० ६-१८	१६७
एहि पश्य शरीराणि	वा० रा० अरण्य० ६-१६	१६७
ऐ		
ऐक्ष्वाकी जनयामास	महा भा० आदि० ६४-३०	१३३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रमाण	ग्रन्थ	पुस्तक पृष्ठ
	ओ	
ओ३म् नमस्ते ब्रह्महृदय	महा भा० शा० ३४७-३८	९५
ओजसा तेजसा लक्ष्म्या	महा भा० वन० १८७-३	१२६
	क	
कथंचित् तवगाङ्क्षेय	महा भा० आ० १००-६५	२१०
कपाटतोरणवतीं	वा० रा० बाल० ५-११	१४९
कर्णिका तस्य पद्मस्य	महा भा० शा० १८२-३८	९९
काममाश्रित्य दुष्पूरं	भ० गी० १६-१०	२२४
कामी वा न कदर्यो वा	वा० रा० बाल० ६-८	१५०
कारूषमथ शर्यातिं	महा० भा० आदि ७५-१६	१२८
कालसंज्ञां तदा देवीं	भा० पु० ३-६-२	१०२
कियता स्कम्भः प्र विवेश	अथर्व० १०-७-९	९०
कुर्वन्नार्तस्वरं घोरं धिग्	महा भा० गदा० ६०-४	२२७
कुर्वन्नेवेह कर्माणि	यजु० ४०-२	१३७
कृतायादिनवदर्षं	यजु० ३०-१८	९०
केचित् पुरवराकाराः	महा भा० वन० १८८-७७	१०७
केचिद्धारिद्रसंकाशाः	महा भा० वन० १८८-७६	१०७
केचिन्नीलोत्पलश्यामाः	महा भा० वन० १८८-७५	१०७
क्रोधाद्भवति संमोहः	भ० गी० २-६३	१३०
	ग	
गंगाया दक्षिणे कूले	वायु पुराण ८९-३१९	३६
गतिर्भर्ता प्रभुः साक्षी	भ० गी० ९-१८	६८
गान्धर्वं राक्षसौ क्षत्रे	महा भा० आदि० ७३-१३	२०६
	च	
चकर्षातन्द्रितो राजं	महा भा० वन० १८७-४७	१२७
चत्वारि भारते वर्षे	वायु पु० २४-१	११०
चत्वार्याहु सहस्राण	मनु० १-६९	८३
चाक्षुषस्यान्तरेतीतं	वायु ६३-१९	१२४
चिन्तामपरिमेयां च	भ० गी० १६-११	२२४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रमाण	ग्रन्थ	पुस्तक पृष्ठ
	ज	
जन्मादिव्यवस्थातः	सां० १-११४	६८
	त	
तं कदाचित् तपस्यन्तम्	महा० भा० वन० १८७-६	१२६
ततः संवर्तको बह्निः	महा भा० वन० १८८-६६	१०७
ततः स पृथिवीं भित्वा	महा भा० वन० १८८-७०	१०७
ततः समभवद् ब्रह्मा	वा० रा० अयोध्या० ११०-३	११२
ततस्तान्यल्पसाराणि	महा भा० वन० १८८-६६	१०६
ततस्ते जलदा घोरा	महा भा० वन० १८८-८०	१०७
ततस्तेजोमयं दिव्यं	महा भा० शा० १८२-१५	११२, ११६
ततस्त्वां शरणार्थं	वा० रा० अरण्य० ६-१६	१६७
ततः स्वयम्भूर्भगवान्	मनु० १-६	६६
ततोऽध्यायसहस्राणां	महा भा० शा० ५६-२६	१२३, १४५
ततो गजकुल प्रख्याः	महा भा० वन० १८८-७४	१०७
ततो दिनकरैर्दीप्तैः	महा भा० वन० १८८-६७	६१, १०७
ततो दिविरथो नाम	महा भा० आदि० ६४-२४	१३३
ततो द्वादशवर्षाणि	महा भा० वन० १८८-८२	१०८
ततो योजनविंशानां	महा भा० वन० १८८-७२	१०७
तदण्डमभवद्धैमं	मनु० १-६	६६
तदागर्तं ज्वलितहुता	महा भा० आ० १६-२२	१७६
तन्महन्नो भयं	वा० रा० बाल० १५-१०	२००
तम आसीत्तमसा	ऋग्वेद १०-१२६-३	७२
तमुत्यतन्तम् जग्राह	महा भा० गदा० ६०-११	२२७
तस्मिन् पुरवरेहृष्टा	वा० रा० बाल० ६-६	१५०
तस्मिन् युगसहस्रान्ते	महा भा० वन० १८८-६५	१०६
तस्योर्ध्वबाहोः	महा भा० गदा० ६०-१०	२२७
तत्र सर्वं एवाचेतन	सुश्रुत शरीर०	११३
तानहं समतिक्रान्त	वा० रा० उत्तर० ६-२१	१६३
तानुवाच सुरान् सर्वान्	महा भा० शा० ५६-२८	१२३
ताभ्यां स शकलाभ्यां च	मनु० १-१३	६५
तिस्रो मातृस्त्रीन्पितॄ	ऋ० १-१६४-१०	८०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रमाण	ग्रन्थ	पुस्तक पृष्ठ
ते मोहवशमापन्ना	महा भा० शा० ५९-१६	१४४
तैरियं पृथिवी सर्वा	महा भा० वन० १८८-७९	१०७
त्वत्प्रसादात् तु मे जन्म	महा भा० शा० ३४७-४१	९८
त्वत्तो मे मानसं जन्म	महा भा० शा० ३४७-४०	९८
द		
ददौ धर्मेण हिमवान्	वा० रा० बाल० ३५-१८	१५९
दैविकानां युगानां तु	मनु० १-७२	८३
दैवे राज्यहनीवर्षं	मनु १-६७	८२
दृष्ट्वा पापीयसीं सृष्टिं	भा० पु० ३-१२-३	११७
द्यौर्मे पिता जनिता	ऋ० १-१६४-३३	१५६
ध		
धर्मकामार्थसम्बन्धं	महा भा० आ० ७४-२०	२०७
धर्मात्मा स मनुर्धीमान्	महा भा० आदि० ७५-१३	१२७
न		
न चाप्यहं वृथा भूयो	महा भा० आ० १००-६६	२१०
न चायुर्वेदशास्त्रेषू	सुश्रुत शरीर०	११४
न चैष पतितः कृष्ण	महा भा० गदा० ६०-८	२२७
न जरा न च दुर्भिक्षं	महा भा० शा० ५९-१२१	१७१
नदीनामान्युत्तराणि	निरुक्त २-२४	४६
न नित्यशुद्धबुद्धमुक्त स्वभास्य	सां० १-१९	६८
न वै राज्यं न राजा	महा भा० शा० ५९-१४	१०५
नष्टायां प्रतिपत्तौ च	महा भा० शा० ५९-१७	१४४
न सस्यानि न गोरक्षा	वायु० ६२-१७२	९९
न त्रिमभिजानामि	महा भा० आ० ७४-७३	२०७
नाकुण्डली नामुकुटी	वा० रा० बाल० ६-१०	१५०
नाभागारिष्टदशमान्	महा भा० आदि० ७५-१७	१२८
नामृष्टभोजी नादाता	वा० रा० बाल० ६-११	१५०
नाल्पसंनिचयः कश्चित्	वा० रा० बाल० ६-७	१५०
नासदासीन्नो सदासीत्	ऋग्वेद १०-१२९-१	७२
नासिक्यं चापि मे जन्म	महा भा० शा० ३४७-४२	९८

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रमाण	ग्रन्थ	पुस्तक पृष्ठ
निमेषा दश चाष्टौ	मनु० १-६४	८५
नियतस्त्वं नरव्याघ्र	महा भा० शा० ५६-१३	१०५
नियतो यत्र धर्मो वै	महा भा० शा० ५६-१०३	१७०
निर्दहन् नागलोकं च	महा भा० वन० १८८-७१	१०७
नृत्यमानमिवोर्मीभिः	महा भा० वन० १८७-४३	१२६
नौश्च कारयितत्वा ते	महा भा० वन० १८७-३१	१२६
प		
पञ्चाशत् तु मनोः पुत्राः	महा भा० आ० ७५-१७	१७२
पम्पानदीनिवासा	वा० रा० अरण्य० ६-१७	१६७
पिताहमस्य जगतो माता	भ० गी० ६-१७	६८
पित्र्ये राज्यहीनमासः	मनु० १-६६	८२
पुष्करिण्यामृचीकश्च	महा भा० आदि० ६४-२५	१३३
प्रजा रक्षयिता साधुः	महा भा० शा० ५६-६१	१२३
प्रतिज्ञां चाधिरोहस्व	महा भा० शा० ५६-१०६	१७०
प्रबुद्धकर्मा दैवेन	भा० पु० ३-६-४	१०३
प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च	भ० गी० १६-७	२२४
प्रासादे रत्नविकृतैः	वा० रा० बाल० ५-१५	१५०
प्रियाप्रिये परित्यज्य	महा भा० शा० ५६-१०४	१७०
ब		
बहवो दुर्लभाश्चैव	वा० रा० बाल० १-७	१६६
बीजानि चैव सर्वाणि	महा भा० वन० १८७-३२	१२६
बीजान्यादाय सर्वाणि	महा भा० वन० १८७-३७	१२६
ब्रह्मणश्च प्रणाशेन	महा भा० शा० ५६-२५	१२२
ब्रह्मणो मानसाः पुत्रा	महा भा० आदि० ६५-१०	१०८,११८
ब्रह्मक्षत्रादयस्तस्मान्	महा भा० आदि० ७५-१४	१२७
ब्राह्मणा मानवास्तेषां	महा भा० आदि० ७५-१५	१२७
ब्राह्मादिषु विवाहेषु	मनु० ३-३६	२१२
बृहस्पतिरनुभृश्या	अथर्व० २०-१६-५	१५५
भ		
भगवान् नरलोकस्थं	महा भा० शा० ५६-२४	१२२
भगवान् हि कृता रक्षा	महा भा० वन० १८७-२७	१२६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रमाण	ग्रन्थ	पुस्तक पृष्ठ
भवेद्वि शंक्यो लोकस्य	महा भा० आ० ७४-११८	२०८
भूमिरोऽनलो वायुः	भ० गी० ७-४	११५
भूयो धर्मपरैर्भा वैर्मुदितम्	महा भा० आ० ६८-१५	२०८
भूरिश्रवसि कर्णे च	गदा पर्व ६४-१२	२२६
भ्रातृभिः सहितो भीम	महा भा० गदा० ६०-१० (दाक्षिणात्य पाठ)	२२७
म		
मरीचिरत्र्यंगिरसौ	भा० पु० ३-१२-२२	११७
मरीचेः कश्यपः पुत्रः	महा भा० आदि० ६५-११	१०८
माता पितरमृत आ	ऋ० १-१६४-८	७६
मानसस्येह या मूर्तिः	महा भा० शा० १८२-३७	६६
मायाविदश्च शूरांश्च	वा० रा० बाल० १७-३	२००
मार्तण्डस्य मनुर्धीमान्	महा भा० आदि० ७५-१२	१२७
मुक्तपुष्पावकीर्णेन	वा० रा० बाल० ५-८	१४६
मुहूर्तं सम्प्रतीक्षस्व	महा भा० आ० ७३-५	२०६
मेनका च सहजन्या च	यजु० १५-१६	१५३
य		
यच्च काष्ठं तृष्णं	महा भा० वन० १८८-६८	१०७
यथाहं भीमसेनेन	गदा पर्व ६४-११	२२६
यथा संहृष्यते पापः	गदा पर्व ६४-१५	२२६
यदक्रन्दः प्रथमं	ऋग्वेद १-१६३-१	७३
यदि पुत्रः प्रदातव्यो	महा भा० आ० १०४-४६	२१८
यदि मे सहते गन्धं	महा भा० आ० १०४-४७	२१८
यदेतत्परिसंख्यात्	मनु० १-१७	८३
यन्मूर्त्यवयवाः सूक्ष्माः	मनु १-१७	११२
यमेनं दत्तं	ऋ० १-१६३-२	७४
यश्च धर्मात् प्रविचलेल्लोके	महा भा० शा० ५६-१०५	१७०
यश्चात्र धर्मो नित्योक्तो	महा भा० शा० ५६-१०७	१७०
यस्मादृचो अपातक्षन्	अथर्व० १०-७-२०	१४३
युगे सूर्यज्ञशुक्राणां	सूर्य सि० १-१	६४
युञ्जन्त्यस्य काम्या	ऋ० १-६-२	७४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रमाण	ग्रन्थ	पुस्तक पृष्ठ
युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषं	ऋग्वेद १-६-१	७३
येन ते सत्सु निर्वेदम्	गदा पर्व ६४-१३	२२६
यो ब्रह्माणं विदधाति	श्वेता० ६-१८	१४३
र		
रघोस्त्र पुत्रस्तेजस्वी		१६०
रपद् गन्धर्वीरप्या च	अथर्व० १८-१-१६	१४३
राजो विश्वजनीनस्य	अथर्व० २०-१२७-७	१५५
रूपसत्त्वगुणोपेता	मनु० ३-४०	२१२
ल		
लोभान्वितो बलमदात्	महा भा० आ० ७५-२३	१३५
व		
वधूनाटकसंघैश्च	वा० रा० बाल० ५-१२	१५०
वराहो मेघो	नि० ५-४	११३
वर्षमाणा महत् तोयं	महा भा० वन० १८८-८१	१०७
वाङ्नामान्युत्तराणि	निरुक्त २-२३	४५
विद्युन्मालापिनद्धाङ्गाः	महा भा० वन० १८८-७८	१०७
विप्लुते नवलोके वै	महा भा० शा० ५६-२१	१४४
विवस्वतः सुतो राजन्	महा भा० वन० १८७-२	१२६
विहाय कामान्यः य	भ० गी० २-७१	१३
वेदाविनाशिनं नित्यंय	भ० गी० २-२१	१३
व्यक्ताव्यक्तकारचिन्त्य	महा भा० शा० ३४७-३६	६८
श		
शतं तेऽयुतं हायनान्	अथर्व० ८-२-२१	१६०
शस्त्रनित्यश्च सततं	महा भा० आ० १००-६४	२१०
शौरिणा पृथिवीपालास्त्रासिता	महा भा० सभा० ३८ (दाक्षिणात्य पाठ)	२१८
श्रुतानुमानप्रज्ञाभ्याम्	योग० १-४६	१२
श्रेयोऽहं ये चिन्तयिष्यामि	महा भा० शा० ५६-२८	१४४
स		
सङ्गात्संजायते कामः	भ० गी० २-६२	१३०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रमाण	ग्रन्थ	पुस्तक पृष्ठ
संवत्सरो वै परिक्षित्	गोपथ २-६-१२	१५६,१५७
स एष भगवान्	महा भा० शा० १८२-२०	११२
स चिन्तयन्नेव तदा	महा भा० आ० १००-५८	२११
सत्यसंधस्य वीरस्य	वा० रा० बाल० १७-२	२००
सत्त्वरजस्तमसां	सां० १-६१	७०
सदेवासुरगन्धर्व	महा भा० वन० १८८-७३	१०७
सनकं च सनन्दं च	भा० पु० ३-१२-४	११७
सम्प्रक्षालनकालोऽयं	महा भा० वन० १८७-२९	१२६
सरस्वत्यभि नो नेषि	ऋ० ६-६१-१४	४६
स राजा पुरुषो	मनु ७-१७	१६८
सरीसृपेभ्यः स्तेनेभ्योन	महा भा० शा० ५९-१२२	१७१
सर्वमाम्भसमेवासीत्	महा भा० वन० १८७-४५	१२६
सर्वमेतत् परोक्षं मे	महा भा० आ० ७४-८१	२०७
सर्वरत्नसमाकीर्णां	वा० रा० बाल० ५-१६	१५०
स वराहस्ततो भूत्वा	वा० रा० अयोध्या० ११०-४	१४४
स श्रान्तस्तेपानः	श० ब्रा० ६-१-११-१३, १४	१००
ससर्जाग्रेऽन्धता मिस्र	भा० पु० ३-१२-२	११७
सुहोत्रः खल्विक्ष्वाकु···	महा भा० आदि० ९५-३४	१३३
सुकेशं राक्षसं	वा० रा० उत्तर० ६-२०	१९२
सूर्यो गन्धर्वस्तस्य	यजु० १८-३९	१५६
सूदिता मौरवाः पाशा	महा भा० सभा० ३८ (दाक्षिणात्य पाठ)	२१८
सोऽनुप्रविष्टो भगवान्	भा० पु० ३-६-३	१०२
सोऽभिध्याय शरीरात्···	मनु० १-८	९५
सोऽयं ब्राह्मणभूयिष्ठो	वा० रा० अरण्य० ६-१५	१९७
सोमं वै राजनं	जै० ब्रा० १-३५५	१०१
सोम ओषधीभिरुदक्रामत्	अथर्व० १९-१९-५	१०१
स्तृणीत बर्हिरानुषग्	ऋ० १-१३-५	५
स्वयंवरं तु राजन्याः	महा भा० आ० १०२-१६	२१२
स्वायम्भुवस्यास्यमनोः	मनु० १-६१	९९
स्वारोचिषश्चोत्तमश्च	मनु० १-६२	८७,९९

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रमाण	ग्रन्थ	पुस्तक पृष्ठ
	ह	
हत्वा छित्त्वा च भित्त्वा	मनु० ३-३३	२०७
हित्वा सुविपुलान् भोगान्	महा भा० आदि० १-२४०	१३४
हृदे नीपवने तत्र	महा भा० सभा० ३८ (दाक्षिणात्य पाठ)	२१५
	त्र	
त्रयोदश समुद्रस्य	महा भा० आ० ७५-१६	२०५
त्रिंशत् कृत्यो युगे	सूर्य सि० ३-६	६२
त्रिवर्ग इति विख्यातो	महा भा० शा० ५६-३०	१२३, १४५
त्रीणिच्छन्दांसि कवयो	अथर्व० १८-१-१७	१४३
त्रेतायुगादौ च पुनः	महा भा० शा० (पूना संस्करण) ३३६-४७	१२५
	ज्ञ	
ज्ञाज्ञौ द्वावजावीशनीशावजा	श्वेता० १-६	६६

□

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

GURUKUL KANGRI LIBRARY

	Signature	Date
Access No.		
Class No.		
Cat No.		
Tag etc.		
B.A.R.		
Recomm. by.		
Data Ent. by		
Checked		

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

पुस्तकालय
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

वर्ग संख्या R 089:9143 GUR-P आगत संख्या 167890.

पुस्तक विवरण की तिथि नीचे अंकित है। इस तिथि सहित 30वें दिन यह पुस्तक पुस्तकालय में वापस आ जानी चाहिए। अन्यथा 50 पैसे प्रतिदिन के हिसाब से विलम्ब शुल्क लगेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

GURUKUL KANGRI LIBRARY

	Signature	Date
Access No.		
Class No.		
Cat No.		
Bkg etc.		
E.A.R.		
Recomm. by.		
Data Ent. by		
Checked		

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

श्री गुरुदत्त की वेद, उपनिषद, दर्शन एवं वैदिक विज्ञान पर प्रमुख रचनाएं

हिन्दी साहित्य सदन

2 बी.डी. चैम्बर्स, 10/54 देश बंधु गुप्ता रोड,
करोल बाग, नई दिल्ली-110 005. फोन : 23553624, 23551344
ई-मेल : indiabooks@rediffmail.com, hindisahityasadan@gmail.com

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar